महादेवी वर्मा

काव्य-कला और जीवन-दर्शन

सम्पादिका

शचीरानी गुर्टू, एम० ए०

१९५१

आत्माराम एण्ड सन्स

पुस्तक-प्रकाशक तथा विक्रेता

काश्मीरी गेट

दिल्ली

प्रकाशक
रामलाल पुरी
आत्माराम एण्ड सन्स
प्रकाशक तथा पुस्तक विक्रेता
दिल्ली

मूल्य ६)

मुद्र
श्यामकुमार ग
हिन्दी प्रिंटिंग प्रे
क्वीन्स रो
दि

अपने दृष्टिकोण से

साहित्य और कलानुरागियों को महादेवी जी से प्राय: शिकायत रही है कि उनके कृतित्त्व में सामाजिक-संघर्ष, हलचल एवं वैषम्य के घात-प्रतिघातों की सीधी और निर्वाध अभिव्यक्ति न होकर उनके अपने ऐकान्तिक जीवन की पूर्णता के उत्प्रेरक चित्र हैं जो एक ख़ास क्षितिज पर हल्की, धूमिल रेखाओं में रूपायित होकर ढले हैं। जहाँ तक महादेवी जी की कविता का प्रश्न है, बात कुछ हद तक सही कही जा सकती है। जीवन के वाह्य विरोधी वैविध्य में भीतर ही भीतर कुंठित रह कर और पीड़ा को आत्मसात् करके वे जिस अवचेतन स्थिति में अप्रत्यक्ष रूप से व्यक्त होती रहीं वह स्पष्ट और वहिर्गत न होकर बहुत कुछ कल्पनामय और मनोमय हो उठा। स्वच्छन्द विचारधारा और नैतिक आतंक से सहम कर ज्यों-ज्यों उनकी प्रकृत भावनाओं का संयम और गोपन होता गया, त्यों-त्यों स्थूल के प्रति उनका आग्रह कम होकर एक अस्पष्ट कौतूहल में परिणत होता गया और वे छायावाद की झिलमिल छाया में जैसे आँखमिचौनी सी खेलती रहीं।

'उसमें हँसदी मेरी छाया,
मुझमें रो दी ममता माया,
अश्रु-हास ने विश्व सजाया,
रहे खेलते आँखमिचौनी।'

वस्तुत: कविता में महादेवी के अंतः-स्वर प्रकृत रूप में कम ही झंकृत हुए हैं। कवयित्री की तरल, सूक्ष्म, कोमल अनुभूतियाँ जीवन के जिस सत्य को लेकर प्रकट हुईं, वे चिंतन तक ही सिमट कर रह गईं, कर्म की प्रत्यक्ष प्रेरणा न दे सकीं। जिस सीमा-रेखा के भीतर जीवन अनेक बाधाओं से घिरा है उसे लाँघकर भीतर आने में कवयित्री को जैसे भय लगता है। जीवन की चाह जगते ही वह सहमकर ठिठक जाती है और स्थूल से उठकर सूक्ष्म सौन्दर्यानुभूति में प्रश्रय पाती है।

'कौन मेरी कसक में नित
मधुरता भरता अलक्षित ?
कौन प्यासे लोचनों में
घुमड़ घिर झरता अपरिचित ?
स्वर्ण-स्वप्नों का चितेरा
नींद के सूने निलय में
कौन तुम मेरे हृदय में ?'

महादेवी जी को जीवन में पीड़ा की बड़ी ही तीव्र अनुभूति हुई है, किन्तु इस पीड़ा में भी वे एक प्रकार का आनन्द अनुभव करती हैं। उनकी कविता की अनेक पंक्तियाँ बतलाती हैं कि वे पीड़ा से छुटकारा नहीं चाहतीं, वरन् अन्य किसी भी वस्तु से वह उन्हें अधिक प्रिय है।

प्रश्न है, यह पीड़ा की अनुभूति कैसी—जिससे छुटकारे की कांक्षा न की जाय। उनका अभाव भरा सा लगता है और रोने की इच्छा रखते हुए भी उनके प्राणों में पुलक है। इस जिज्ञासा के समाधान में हम कहेंगे कि उनकी पीड़ा भावना की तरलता में डूबी अंतस्थ ऊहापोह की सहज तृप्ति अथवा रागात्मक द्रवण है जिसमें उतनी मार्मिकता और विह्वलता नहीं है जितनी पीड़ा के मूल में अपेक्षित है। पीड़ा कवयित्री के मन की वह मधुर स्निग्धता है, जो गीतों में उभर कर किन्हीं अस्पष्ट उमंगों और धुँधले आवेगों की धूमिलता में फैल जाती है, जिसे ठीक-ठीक पकड़ा नहीं जा सकता, आँका नहीं जा सकता। शब्दों के माध्यम से इतनी सूक्ष्म मनः-स्थिति को व्यक्त कर पाना संभव ही कैसे है, अतएव उनकी अभिव्यक्ति में वह दंशन और दाह नहीं है जो अपने अस्तित्व से घबरा कर मध्याह्न की प्रखरता को ज्योत्स्ना की शीतलता और भीतर के कोलाहल को शान्ति में परिणत कर देने की ख्वाहिश करे। वे तो अपनी पीड़ा, छटपटाहट और बेचैनी को ज्यों का त्यों अक्षुण्ण बनाए रखना चाहती हैं।

'मैं पुलकाकुल,
पल-पल जाती रस-गागर ढुल,
प्रस्तर के जाते बन्धन खुल,
लुट रहीं व्यथा निधियाँ नव-नव।'

पीड़ा महादेवी के जीवन की सक्रिय पूरक है। उसमें वह व्यापक रसात्मक आवेग है (कचोट नहीं) जो एक छोर से दूसरे छोर तक संव्याप्त होने की क्षमता रखती है। इस स्थिति में कवयित्री कभी-कभी इतनी ऊँची

सतह पर उठ जाती है कि पीड़ा, वेदना और विवशता में उसकी भावनाओं का तादात्म्य सा हो जाता है ।

प्रेम-तत्त्व का प्राधान्य होने से महादेवी के काव्य में विकास की एक स्पष्ट अंतर्धारा दीख पड़ती है । दृश्यमान पदार्थों के वास्तव और वाह्य रूपों की अवहेलना कर वे अपने भीतर के सौंदर्य को उपलब्ध करने में सदैव सचेष्ट हैं । भौतिक-जगत् की कदर्यता जैसे उनकी दृष्टि, मन और प्राणों को स्पर्श तक नहीं करती । उषा की आलोकभरी आभा में कभी उनके प्राण गा उठते हैं और कभी संध्या की अवसादमयी घनता में सिहर उठते हैं । उनके छन्दोमय अन्तर में शिशु का सा निरीह सारल्य है जो इन्द्रधनुष की रंजित शोभा के असंख्य बुलबुले आसमान में बनते-मिटते देखता है और जिसके मन की विचित्र उमंग, कौतुक की रंगीनी और आनंद की पुलक कभी श्रांत होना नहीं जानती। दूर—बहुत दूर—असीम शून्य का मूक मौन जब कवयित्री के मन के क्षितिज पर उद्भासित हो उठता है और किसी भी तरह स्पष्ट-अस्पष्ट रूप में वे उसे अपनी कल्पना और सूझ के भाव-डोरों से बाँध रखना चाहती हैं तो उनके अन्तस्थ के किसी सुदूर, भीतरी कोने में उदासी उभर आती है और एक हल्का सा, अजीब सा बोझ छा जाता है । नीरव, एकान्त वातावरण में सृष्टि के विराट् और चरम सुन्दर रूप को निरखने की अदम्य चेष्टा में वे खोयी सी अवाक् बैठी रह जाती हैं और घनी गहरी वेदना में उन्हें एक चुटीली मिठास का अनुभव होता है । कभी उनका मन किसी अज्ञात वस्तु के साक्षात्कार की लालसा में तड़प उठता है, कभी जीवन की बृहत्तम शून्यता उन्हें अखरने लगती है और कभी अन्तर-पट पर किसी निर्मम की चाह मचल उठती है, अधरों पर अनुराग बिखर जाता है और नयनों में विरह की छाया छटपटा उठती है ।

'अपनी लघु निःश्वासों में
अपनी साधों की कम्पन,
अपने सीमित मानस में
अपने सपनों का स्पन्दन ।
मेरा अपार वैभव ही
मुझसे है आज अपरिचित,
होगया उदधि जीवन का
सिकता-कण में निर्वासित ।'

किन्तु कवयित्री की सृजन-शक्ति का यह अपरिचित अपार वैभव कभी

चुक नहीं पाता, उसकी अभिव्यंजना का आवेग कभी थकना नहीं जानता। उसके भीतर कला-साधना की ज्योति उत्तरोतर दीप्त होती रही है और इसी आलोक ने उसे बाहर के अँधेरे की उपेक्षा करने की सामर्थ्य दी है।

महादेवी के काव्य में एक स्वप्निल मानसिक वातावरण और व्यथा का सम्मोहन है। प्रणयोन्माद और अंतः-सौन्दर्य की अभिव्यक्ति में उनके भाव जितने ही अंतगूंढ़ होते गए हैं, उनकी भावाभिव्यंजना की कला भी उतनी ही सघन और दार्शनिक रहस्यात्मकता से आच्छन्न होती गई है। कौतूहल के बाद जिज्ञासा आई, फिर रंजित-कल्पना और अन्ततः कोमलतम सूक्ष्म सौंदर्य-भावना। उनके अंतरतम में सहेजे उदात्त सपने धुंधली सी, मीठी-मीठी, मादक उदासी में भरकर कविता में उभरे। माधुर्य की गूढ़ अनुभूति में सौंदर्य का उनका आकर्षण उत्तरोतर अंतमुंखी होता गया और वास्तविक अनुभूतियों के गूढ़तम स्तरों में छिपी आन्तरिक उथल-पुथल को उन्होंने विविध रंगों, ध्वनियों और असाधारण लयमयता में झंकृत किया। किन्तु उनकी भाव-धारा में करुण उच्छ्वास, अश्रु और बेबसी की ग्रन्थि है। जीवन के अत्यन्त निकट होकर उनकी दृष्टि यथार्थता की ठोस भूमि पर नहीं, कोमल वस्तु पर टिकती है। उनका प्यार छलकता है, पर रुके जल-संघात के सदृश। उनके भीतर कुछ दुराव सा है जो उन्हें यथार्थ के निकट आने से रोकता है और यह दुराव अनजाने में ही क्रमशः बढ़ता गया है। भीतर दर्द है, कुछ अवरुद्ध सा घुमड़ता हुआ उभरता भी है लेकिन कवयित्री उसे हवा में उड़ाना नहीं चाहती। वह दूरी का स्वाँग सा करती हुई आध्यात्मिक-पाश में उसे जकड़ लेना चाहती है।

निम्न पंक्तियों में भाव-गुम्फन देखिए—

'रजत-रश्मियों की छाया में धूमिल घन सा वह आता,
इस निदाघ से मानस में करुणा के स्रोत बहा जाता।
उसमें मर्म छिपा जीवन का,
एक तार अगणित कम्पन का,
एक सूत्र सब के बंधन का,
संसृति के सूने पृष्ठों में करुण-काव्य वह लिख जाता।'

यों महादेवी के काव्य में एक स्वतन्त्र दर्शन की नियोजना भी है, जो निराकार-उपासना, सूफ़ीवाद और बौद्ध-दर्शन से प्रभावित है, किन्तु उसे भी एक बौद्धिक प्रयोग ही समझना चाहिए। जहाँ भाव की प्रमुखता में तथ्य दब जाता है, वहाँ व्यक्ति-जीवन के प्रसार में गहरी लीकें खिंच

जाती हैं। महादेवी के काव्य की दर्शनिक गूढ़ता अत्यधिक कल्पनाशीलता, सूक्ष्म चिंतन, संशयात्मक बुद्धि और उनकी अपनी अनिर्दिष्ट स्थिति से उत्पन्न हुई है। वह अंतः-प्रकृति की ओर से नहीं, वाह्य-प्रकृति की ओर से है। इसीलिए उसमें उनका निजत्व डूबता नहीं, वह जैसे अपार्थिव, अज्ञात आलम्बन के सहारे दूर टँगा सा रह जाता है।

महादेवी के काव्य में कहीं कहीं अव्यक्त, अमानवीय स्वर सुन पड़ते हैं। निर्वाक्, स्तब्ध, वीतराग स्वर, स्वच्छन्द होकर भी, अंतःप्रेरणा के असीम आदेशों में निगड़ बद्ध हैं। किसी अज्ञात इच्छा से विह्वल उनके समस्त कृतित्व पर धुँधली सी छाया पड़ी है। 'दीपशिखा' में जहाँ कवयित्री ने गीतों के साथ तूलिका का भी प्रयोग किया है, कल्पना की सूक्ष्मताओं के साथ रंगों का भी अभूतपूर्व सामंजस्य होगया है। उसमें काव्य और कला का नवीन रूपान्तर है, कला की आत्मा का सजीव स्फुरण है और सूक्ष्म रंगों की कलामयता के साथ उनके भाव-गांभीर्य की अभिनव अभिव्यक्ति है। चित्रों में अगणित संकल्प भर दिए गए हैं और कवयित्री की कला की अंतरंग साधना गीतों के प्राणों में मुखर हो उठी है।

किन्तु सच्चे अर्थों में साधक वे हैं जो साधना की निविड़ता में वाह्य साधनों के ऊपर उठ जाते हैं। मानवीय अस्तित्व अपने भीतर चाहे कितनी ही गहराइयाँ और चाहे कितनी ही महत्ताएँ सन्निहित किए हुए क्यों न हो, इस प्रकार की प्रेमयोग-स्थिति सहज सम्भाव्य नहीं है। स्वयं महादेवी जी 'आधुनिक कवि' की भूमिका में लिखती हैं, "चिन्तन में हम अपनी वहिर्मुखी वृत्तियों को समेट कर किसी वस्तु के सम्बन्ध में अपना बौद्धिक समाधान करते हैं, अतः कभी कभी वह इतना ऐकान्तिक होता है कि अपने से बाहर प्रत्यक्ष जगत् के प्रति हमारी चेतना पूर्ण रूप से जागरूक ही नहीं रहती और यदि रहती है तो हमारे चिन्तन में बाधक होकर।"

बौद्धिक होने के साथ साथ महादेवी के दार्शनिक-चिन्तन में रस-सिद्धता अधिक है। उनके काव्य में रागात्मक उद्वेलन है, आत्मानुभूति नहीं। भिन्न भिन्न रंगों के धूमिल आलोक में आध्यात्मिक-तत्त्व तिरोहित होगए हैं और अदृष्ट बिन्दु पर उनकी भावनाएँ जैसे जड़ होगई हैं, एकदम सीमित। उनमें फैलाव नहीं है, नारी के सरल, कोमल पाश को तोड़कर वे मानों आगे नहीं बढ़ पातीं।

किन्तु इसके ठीक विपरीत महादेवी जी अपने गद्य में उस रूप का निदर्शन कराती हैं, जिसमें केवल स्वात्म को गौरव और अनन्तता प्रदान

करनेवाले उपकरण ही नहीं, प्रत्युत हृदय को हिलकोरनेवाली प्रेरणा-प्रदायिनी शक्ति है। वे अपने व्यक्तित्व को छोटे से छोटे व्यक्तित्वों में लय करके अपने दिल और दूसरे के दिलों की बात सुनने और सुनाने को तैयार हैं। उनका गद्य कविता की भाँति सौंदर्य के भुलावे में डालकर हमें जीवन से दूर नहीं लेजाता, वह तो हमारी शिराओं में चेतना भरकर हमें यथार्थ जीवन में झाँकने की प्रेरणा प्रदान करता है। वहाँ साधना और व्यामोह नहीं है, जीवन के परस्पर पूरक चित्र हैं। आत्मा का सत्य शब्द-शब्द, पंक्ति-पंक्ति में सजीव होकर हमारे सम्मुख उपस्थित होजाता है।

'आज भी जब कोई मेरी रंगीन कपड़ों के प्रति विरक्ति के सम्बन्ध में कौतुकभरा प्रश्न कर बैठता है तो वह अतीत फिर वर्त्तमान होने लगता है। कोई किस प्रकार समझे कि रंगीन कपड़ों में जो मुख धीरे-धीरे स्पष्ट होने लगता है वह कितना करुण और कितना मुर्झाया हुआ है। कभी कभी तो वह मुख मेरे सामने आने वाले सभी करुण क्लान्त मुखों में प्रतिबिम्बित होकर मुझे उनके साथ एक अटूट बन्धन में बाँध देता है।'

'स्मरण नहीं आता वैसी करुणा मैंने कहीं और देखी है। खाट पर बिछी मैली दरी, सहस्त्रों सिकुड़न भरी मलिन चादर और तेल के कई धब्बे वाले तकिये के साथ मैंने जिस दयनीय मूर्ति से साक्षात् किया उसका ठीक चित्र दे सकना संभव नहीं है। वह अठारह से अधिक की नहीं जान पड़ती थी—दुर्बल और असहाय जैसी। सूखे ओठ वाले, साँवले पर रक्त-हीनता से पीले मुख में आँखें ऐसे जल रही थीं जैसे तेलहीन दीपक की बत्ती।'

'मुझे आज भी वह दिन नहीं भूलता जब मैंने बिना कपड़ों का प्रबन्ध किए हुए ही उन बेचारों को सफ़ाई का महत्व समझाते-समझाते थका डालने की मूर्खता की। दूसरे इतवार को सब जैसे के तैसे ही सामने थे—केवल कुछ गंगा जी में मुँह इस तरह धो आए थे कि मैल अनेक रेखाओं में विभक्त हो गया था, कुछ ने हाथ-पाँव ऐसे घिसे थे कि शेष मलिन शरीर के साथ वे अलग जोड़े हुए से लगते थे और कुछ 'न रहेगा बाँस न बजेगी बाँसुरी' की कहावत चरितार्थ करने के लिए कीट से मैले फटे कुरते घर ही छोड़कर ऐसे अस्थिपंजरमय रूप में आ उपस्थित हुए थे जिसमें उनके प्राण 'रहने का आश्चर्य है गये अचम्भा कौन' की घोषणा करते जान पड़ते थे।'

('अतीत के चलाचित्र' पृष्ठ २८, ६३, ७४)

'धूल से मटमैल सफेद किरमिच के जूते में छोटे पैर छिपाये, पतलून

और पैजामे का सम्मिश्रित परिणाम जैसा पैजामा और कुरते तथा कोट की एकता के आधार पर सिला कोट पहने, उघड़े हुए किनारों से पुरानेपन की घोषणा करते हुए हैट से आधा माथा ढके, दाढ़ी-मूँछ विहीन दुबली नाटी जो मूर्त्ति खड़ी थी वह तो शाश्वत चीनी है। उसे सबसे अलग करके देखने का प्रश्न जीवन में पहली बार उठा।'

('स्मृति की रेखाएँ' पृष्ठ २२)

आश्चर्य है कि महादेवी जी, जिन्होंने अपनी रंजित कल्पना द्वारा कविता में मनोज्ञ सृष्टि करके असौंदर्य को बहिष्कृत या गौण सिद्ध कर दिया था, वे गद्य में सचेत प्रयत्न द्वारा जीवन को एक पूर्णतर एवं दृढ़तर धरातल पर प्रतिष्ठित कर सकी हैं। वहाँ उन्होंने कलाकार की उस समृद्ध जीवन-दृष्टि को विकसित किया है जो दृष्ट वास्तविकताओं और कल्पनामूलक सम्भावनाओं के साम्य-वैषम्य की विभाजक सीमा मिटा देती है। आंतरिक रागातिरेक को उन्होंने अपने तक ही सीमित नहीं रखा, वरन् जिस-तिस व्यक्तित्वों और जीवन की अनन्त जटिल वास्तविकताओं में लय कर दिया है। 'अतीत के चलचित्र' में बीसा के गाँव की गँवई नारियों का कितना सजीव दृश्य चित्रित किया गया है, देखिए:

'दूर पास बसे हुए, गुड़ियों के बड़े बड़े घरौंदों के समान लगने वाले कुछ लिपे-पुते, कुछ जीर्ण-शीर्ण घरों से स्त्रियों का झुण्ड पीतल-ताम्बे के चमचमाते मिट्टी के नये लाल और पुराने भदरंग घड़े लेकर गंगाजल भरने आता है, उसे भी मैं पहचान गई हूँ। उनमें कोई बूटेदार लाल, कोई निरी काली, कोई कुछ सफेद और कोई मैल और सूत में अद्वैत स्थापित करने वाली, कोई कुछ नई और कोई छेदों से चलनी बनी हुई धोती पहने रहती है। किसी की मोम लगी पाटियों के बीच में एक अंगुल चौड़ी सिंदूर रेखा अस्त होते हुए सूर्य की किरणों में चमकती रहती है और किसी के कड़वे तेल से भी अपरिचित रूखी जटा बनी हुई छोटी छोटी लटें मुख को घेरकर उसकी उदासी को और भी केन्द्रित कर देती है। किसी की साँवली गोल कलाई पर शहर की कच्ची नगदार चूड़ियों के नग रह रह कर हीरे से चमक जाते हैं और किसी के दुर्बल काले पहुँचे पर लाख की पीली मैली चूड़ियाँ काले पत्थर पर मटमैले चन्दन की मोटी लकीरें जान पड़ती हैं। कोई अपने गिलट के कड़े-युक्त हाथ घड़े की ओट में छिपाने का प्रयत्न सा करती रहती है और कोई चाँदी के पछेली-ककना की झंकार के साथ ही बात करती है। किसी के कान में लाख की पैसे वाली तरकी धोती से कभी कभी झाँक

भर लेती है और किसी के ढारें लम्बी जंजीर से गला और गाल एक करती रहती है। किसी के गुदना गुदे हुए गेहुँए पैरों में चाँदी के कड़े सुडौलता की परिधि सी लगते हैं और किसी की फैली उंगलियों और सफेद एड़ियों के साथ मिली हुई स्याही राँग और काँसे के कड़ों को लोहे की साफ की हुई बेड़ियाँ बना देती हैं।'

('अतीत के चलचित्र' पृष्ठ ७६)

निःसन्देह, मानव-जीवन इतना बिखरा हुआ और विविधता से पूर्ण है कि उसे देखने-समझने के लिए अशेष चक्षुओं की आवश्यकता है। महादेवी जी ने अतीत की अनगढ़, सामंजस्यहीन, बिखरी हुई स्मृतियों को सरस विश्वास के सुकोमल धागे में पिरोया है। उन्होंने जीवन में जो कई मोड़, उथल-पुथल, आवर्त्तन-प्रत्यावर्त्तन और उनसे प्राप्त स्थिर विवेक और स्थिति को परखने वाली आत्म-विश्वासमयी दृष्टि-प्रसार की कला सीखी, उससे अपने सपनों के सरल, किन्तु मार्मिक चित्र खींचने में उन्हें पर्याप्त सुविधा होगई। उनका सरल, तरल, सजीव स्नेह भूखे, नंगे, निराश्रय बालकों को देखकर उमड़ पड़ा और उनका कोमल हृदय अभावग्रस्त, भर्त्सनाओं की शिकार, पीड़ित, उपेक्षिता, पुरुषों द्वारा रौंदी और सामाजिक-बन्धनों में जकड़ी नारियों की आशा-निराशा, हास्य-रुदन और अन्तर्बाह्य ऊहापोहों से द्रवित हो उठा। जहाँ कहीं उन्हें परवश असहाय विधवाएँ अथवा कुसुमकली सी कोमल अल्पवयस्का पति-विहीना, किन्तु किसी युवक की विकृत वासनाओं की शिकार, अवैध संतति से बिमूषित कोई किशोरी बाला दीख पड़ी, वहीं उनके भीतर का तकाज़ा और भी अधिक दुर्दम्य, कठोर और आत्म-वेदना से आलोड़ित होकर प्रकट हुआ।

'यदि यह स्त्रियाँ अपने शिशु को गोद में लेकर साहस से कह सकें कि 'बर्बरो, तुमने हमारा नारीत्व,पत्नीत्व सब ले लिया,पर हम अपना मातृत्व किसी प्रकार न देंगी' तो इनकी समस्याएँ तुरन्त सुलझ जावें।'

न केवल उपेक्षिताओं, परित्यक्ताओं, विधवाओं और अवैध सन्तान वाली माताओं के प्रति उनका असाधारण प्रेम और सहानुभूति जाग्रत हुई, अपितु पुरुषों की सम्भोगेच्छा की प्रज्ज्वलित अग्नि-शिखा बनकर रूप का गर्हित व्यापार करने वाली वेश्याओं तक के प्रति भी उनकी सद्भावना है। जिनकी ज़िन्दगी के मूल्य नित्य घटते-बढ़ते रहते हैं, वे समाज में हेय और पतित समझकर भले ही ठुकरा दी जायँ, किन्तु उनके पतन में पुरुष का स्वार्थ और उसके भीतर घुमड़ता हुआ कुत्सित वासनाओं का तूफ़ान ही सहायक होता है।

'इन स्त्रियों ने, जिन्हें गर्वित समाज पतित के नाम से सम्बोधित करता आ रहा है, पुरुष की वासना की वेदी पर, कैसा घोरतम बलिदान दिया है, इस पर कभी किसीने विचार भी नहीं किया। पुरुष की बर्बरता, रक्त-लोलुपता पर बलि होने वाले युद्ध-वीरों के चाहे स्मारक बनाये जावें, पुरुष की अधिकार-भावना को अक्षुण्ण रखने के लिए प्रज्ज्वलित चिता पर क्षण भर में जल मिटनेवाली नारियों के नाम चाहे इतिहास के पृष्ठों में सुरक्षित रह सकें, परन्तु पुरुष की कभी न बुझने वाली वासनाग्नि में हँसते-हँसते अपने जीवन को तिल-तिल जलाने वाली इन रमणियों को मनुष्य जाति ने कभी दो बूँद आँसू पाने का अधिकारी भी नहीं समझा।'

('शृंखला की कड़ियाँ' पृष्ठ ११३)

महादेवी जी ने वर्त्तमान सामाजिक-व्यवस्था और परम्परागत संस्कारों पर कहीं-कहीं इतना दारुण आघात किया है कि पाठक तिलमिला उठता है और उनकी अन्तरंग करुणा एवं कठोरता से प्रेरित गतिशील अभिव्यक्ति को सजीव रंगों में चित्रित देखता है। सामाजिक-जीवन की गहरी पर्त्तों को छूने वाली इतनी तीव्र दृष्टि, नारी-जीवन के वैषम्य और शोषण को तीखेपन से आँकने वाली इतनी जागरूक प्रतिभा और निम्न-वर्ग के निरीह, साधनहीन प्राणियों का ऐसा हार्दिक और अनूठा चित्रण अन्यत्र कम ही मिलेगा। यथार्थ की ठोस भूमि पर जब कलम चलती है तो उसमें अनुभव की गहराई होती है, आत्म-विश्वास की सक्रिय सजगता निवास करती है, उसमें टीस होती है, मिठास होती है, चिरन्तनता साँस लेती नज़र आती है। महादेवी के 'अतीत के चल-चित्र' और 'स्मृति की रेखाएँ' में उनके सूक्ष्म अन्तर्भाव ऊपरी सतह पर उठनेवाली लहरियों की भाँति नहीं, वरन् अंतस के गहन-गम्भीर आलोड़न से उत्पन्न तीखे ठोस बिन्दु हैं जो मर्म पर चोट करते हुए अमिट रूप से अंकित हो जाते हैं, मानों भीतर की सारी शक्ति संचित होकर शब्दों में सजीव हो उठती है।

जीवन-दर्शन

कहने की आवश्यकता नहीं कि किसी भी श्रेष्ठ कलाकार की महत्ता का मापदण्ड उसकी अनुभूति की गहराई और उसकी विषय-वस्तु का फैलाव है। कलाकार ज्यों-ज्यों अपनी भावनाओं को विश्वात्मा की एकरूपता में लय कर देता है, त्यों-त्यों उसके आत्म-भाव की परिधि व्यापक होती जाती है और तब प्रत्येक ज्ञेय वस्तु, उसकी बुद्धि का विषय न होकर, अनुभूति का

विषय बन जाता है। जैसा कि हम ऊपर कह आए हैं महादेवी के काव्य में विषण्ण वातावरण की सृष्टि हुई है, उनकी अस्पष्ट, आकारहीन चाहनाएँ आंतरिक-विवशता का परिणाम हैं। बाह्य परिस्थितियों की अनुकूलता शक्य न होने से उनमें जो आत्मपीड़न और अनासक्ति है, उसी ने जीवन के प्रति उनका तन्मय विश्वास खोकर उनमें खीझ, निराकार आक्रोश, पलायन-भावना और झिझक उत्पन्न करदी है। गद्य में यह आंतरिक-विद्रोह और भी अधिक तीखा और खुलकर व्यक्त हुआ है। अंतर्संघर्ष और असंतोष के साथ-साथ उनमें सामाजिक परिस्थितियों से तनाव है और यह तनाव, यह अनासक्ति ही उनके सारे दर्शन का आधार है। गद्य में सामाजिक जीवन की ह्रासोन्मुखी गतानुगति के प्रति स्वस्थ एवं सबल विद्रोह होते हुए भी उनमें गतिशील क्रान्तिकारी चेतना और सजग क्रियाशीलता के चिह्न नहीं हैं। उनमें राग है, कशाघात नहीं, पराजय है, प्रतिकार-भावना नहीं, कोमलता है, कठोरता नहीं, निर्मम वास्तविकताओं के प्रति मूक स्वीकृति है, उनके निदान का कोई स्पष्ट उपचार नहीं। महादेवी में विद्रोही तत्व सांघातिक सामाजिक निरंकुशता सहन नहीं करते, अतएव उनमें प्रतिरोध और विरक्ति है, जिसमें विषाद का गहरा पुट भी है। कहीं-कहीं जहाँ ठेस गहरी है, उनकी बद्ध आत्मा तड़प उठती है। उनके भीतर में विद्रूप बज उठता है, नारीत्व का अहं चीत्कार कर उठता है और वे अधिकाधिक कठोर हो जाती हैं। समाज की विभिन्न ह्रासोन्मुखी विकृतियों का पर्दाफ़ाश करते हुए उनमें हृदय की मधुर पीड़ा की कराहट सुन पड़ती है, जो पाठक के मस्तिष्क में अमिट चिह्न लगा जाती है।

इसी को अधिक स्पष्ट करें तो हम कहेंगे कि गद्य और पद्य में महादेवी के जीवन-दर्शन की दो पृथक् धाराएँ विकसित हुई हैं। उनके पद्य की कसौटी है असामंजस्य और आत्मपीड़न, जिसमें बाह्य-परिस्थितियों से आस्था न होने के कारण अन्तर्मुखी चिंतन है, विशुद्ध आध्यात्मिक अनुभूति नहीं। आत्म-दर्शी जिन अनुभूतियों में रमता है, उनका उसमें अभाव है, अतएव उनका पद्य रागात्मक कल्पना का पूर्ण प्रतिनिधित्व करता हुआ भी इतना लोकसंवेद्य न हो सका जो मन में उतर पाता। इसके विपरीत महादेवी के गद्य का अपना पृथक् अस्तित्व है, पद्य के अंतर्गूढ़ स्वरों को उन्होंने गद्य में मुखर किया है और जीवन को सच्चे अर्थों में प्रतिष्ठित करने का स्वप्न देखा है। लोक-सामान्य संवेदनीयता की भाव-भूमि पर उन्होंने गहरे-हल्के रंगों के सम्मिश्रण से जीवन के जो चित्र आँके हैं वे अर्थपूर्ण अनुभूतियों के

आधार पर यथार्थ का सच्चा निरूपण करते हैं।

'यामा,' 'दीपशिखा' और 'आधुनिक कवि' की भूमिकाएँ कवयित्री के अंतर्मंथन और प्रमुख संकल्पों की विचारात्मक प्रतिक्रिया है, जिसमें अपने पक्ष-समर्थन का आग्रह अधिक, वस्तुस्थिति की निर्दिष्ट दिशाओं का संश्लेषण कम है। कहीं-कहीं दार्शनिक-चिंतन की बोझिलता से उनकी भाव-व्यंजना सहज दुर्विज्ञेय हो गई है।

जीवन और कृतित्व में वैषम्य

महादेवी जी के मैंने कभी दर्शन नहीं किए, किन्तु सुना है वे हँसती बहुत हैं और कभी-कभी विपरीत स्थिति में भी बहुत हँसती हैं। जीवन के प्रति 'ट्रैजिक' दृष्टिकोण रखनेवाली कवयित्री का यह रूप बहुतों को आश्चर्य में डाल देता है।

मानव-मन का सीमान्त क्या है—यह तो बताना कठिन है, किन्तु किसी भी शारीरिक अथवा मानसिक असम्बद्धता, असंगति या विपर्यय से सजग चेतन का अचेतन से संयोग होने के कारण मनुष्य का पराजित मन वाह्य-संघर्षों से ऊबकर एक कल्पनिक, झूठी मस्ती अथवा मन बहलाने वाली मादकता का प्रश्रय लेता है और अपनी फक्कड़पन से भरी अनुभूतियों की आवेगपूर्ण अभिव्यंजना करने लगता है। यह एक प्रकार का लक्ष्य-हीन लक्ष्य है, जो उसे काल्पनिक-सुख देता है। अनेक बार बाहरी असफलताएँ और भीतरी विवशता भावुक व्यक्तियों को प्रमादग्रस्त बना देती हैं, उसकी वेदना में जैसे करुण आवेग की प्रचुरता होती है, उसी प्रकार उसकी विपरीत प्रतिक्रिया हर्ष भी विचित्र और आवेगपूर्ण होता है। (महादेवी जी की हँसी निराशा, पलायन, आवेग, अतृप्ति, असंतोष और भीतरी विवशता का परिणाम है, जिसे अनंत संघर्षों से परे मुक्तावस्था कहा जा सकता है।) यदि हम उनकी हँसी का विश्लेषण करें तो उसके अतल में उतनी रसात्मक अनुभूति नहीं जितनी असम्बद्धता, असंगति और उथलापन पाएँगे। उनके रुदन की भाँति उनका हास्य भी संक्रामक है। असम्बद्ध बातों और विपरीत स्थिति में हँसना इसी संक्रमण से प्रेरित होता है।

जब चेतन-अचेतन स्थिति में हृदयस्थ भाव, विचार एवं आलम्बन एक हो जाते हैं तब हम किसी विशेष बात पर नहीं हँसते, न किसी वस्तु को हास्यास्पद जानकर हँसते हैं, वरन् यों ही अपने आप हँसते हैं; तब हँसी भीतर से नहीं, बाहर से आती है। महादेवी जी अपनी हँसी को स्वकीय

भाव से नहीं मुक्त-भाव से अपनाती हैं। उनके बाह्य सुख-दुःख, जय-पराजय, मान-अपमान, हानि-लाभ और प्रिय-अप्रिय प्रसंग उनकी आत्मिक-दृढ़ता से टकराकर मुक्त हँसी में बिखर जाते हैं। हँसी का विश्लेषण करती हुई एक स्थल पर महादेवी जी स्वयं लिखती हैं :

'जब हमारी दृष्टि में प्रसार अधिक रहता है, तब हम किसी एक में उसे केन्द्रित नहीं कर सकते। प्रत्युत् हमारी विहंगम दृष्टि एक ही क्षेत्र में एक साथ अनेक को स्पर्श कर आती है। इससे जिस सीमा तक हमारा ज्ञान बढ़ जाता है उसी सीमा तक हमारी दृष्टि के विषयों का महत्त्व घट जाता है। इसके विपरीत जब हमारी हँसी में मुक्त विस्तार नहीं होता, तब हम हवा के झकोरे के समान उसका सुखद स्पर्श सब तक नहीं पहुँचा सकते। उस स्थिति में हमारे हास-परिहास व्यक्ति या कुछ व्यक्तियों को केन्द्र बनाकर सीमित हो जाते हैं। कलाकार की दृष्टि एक-एक पर ठहर कर ही प्रत्येक को अपना परिचय देती है और उसकी हँसी एक साथ सबको स्पर्श करके ही आत्मीयता स्वीकार करती है। इस परिचय और आत्मीयता के अभाव में जीवन का यह आदान-प्रदान सम्भव नहीं होता, जिसकी साहित्य और कला में पग-पग पर आवश्यकता रहती है।'

महादेवी भाव-प्रधान कवयित्री हैं। भावोन्मेष ही उनमें जीवन-साधक आशा, आनन्द, तुष्टि, साहस, आस्था, उद्योग और व्यष्टि-समष्टि सम्बन्धी व्यापक अनुभूति और विरोधी तत्त्वों को उन्मीलित करने की शक्ति देता है। इसी भाव-भावना से उनमें आत्मनिष्ठा उत्पन्न हुई है।

अनेक बार उनके रेखाचित्रों और संस्मरणों को पढ़ते हुए यह विचार मन में उठा कि महादेवी जी ने अपने कृतित्व में वैवाहिक-पहलुओं पर क्यों न प्रकाश डाला अथवा पति से सम्बन्धित किन्हीं भी अनुकूल-प्रतिकूल अनुभवों को क्यों न शब्दों में बाँध दिया, जैसा कि उन्होंने अपने जन्म, बचपन, स्वभाव और माता-पिता, भाई-बहिन और सम्पर्क में आए अन्य छोटे-से छोटे व्यक्तियों और घटनाओं के सम्बन्ध में किया है। वस्तुतः महान् साहित्य-साधक के सम्मुख उसका अपना 'स्व' पृथक् अस्तित्त्व नहीं रखता और पार्थक्य एवं भेद-भाव व्यापक आत्मानुभूति में लय हो जाते हैं।

किन्तु जब व्यथा सघन होती है तो भाव स्तब्ध और अनुभूति-शक्ति शिथिल हो जाती है, न उसका विश्लेषण ही हो सकता है और न उसकी व्याख्या ही सम्भव है।

'रात सी नीरव व्यथा तम सी अगम मेरी कहानी।'

क्या जाने वह अगम कहानी महादेवी जी के लिए भी उतनी ही दुर्भेद्य और अनजानी रह गई हो कि वे स्वयं आजतक उसके अतल में न पैठ पाई हों और अपने अन्तर्मन की सूक्ष्म प्रक्रियाओं और जीवन-सूत्रों का उस घटना से कोई सामंजस्य न बैठा पाई हों।

जब साधक आत्मनिष्ठा जगा लेता है तो उसे जीवन के आदान-प्रदान की आवश्यकता नहीं रह जाती और न वह अपने जीवन में सामंजस्य-असामंजस्य ढूँढ़ने की चेष्टा में ही अपनी शक्ति व्यय करता है। उसे न किसी के संरक्षण की अपेक्षा है और न कोई बंधन ही उसे अपनी सीमा में बाँध सकता है। महादेवी जी लिखती हैं, "स्त्री जब किसी साधना को अपना स्वभाव और किसी सत्य को अपनी आत्मा बना लेती है तब पुरुष उसके लिए न महत्त्व का विषय रह जाता है, न भय का कारण।"

महादेवी जी आज उस सतह पर पहुँच गई हैं जहाँ तिमिर की सीमा पार करके वे निस्सीम पथ की पन्थी हैं और उस पथ की अशेषता को जानते हुए भी उनके धैर्य और विश्वास का अवसान नहीं है। उनकी अंतश्चेतना जगकर आज अपने अव्यय रूप में सुस्थिर हो गई है, उन्हें न विजय की आकांक्षा है और न पराजय ही उनके उन्नति-पथ का अवरोधक है। कला की अमर साधना ही उनके जीवन का प्रथम और अंतिम ध्येय बन गया है।

७।२३, दरियागंज, दिल्ली
२८ जुलाई, '५१

शचीरानी गुर्टू

महादेवी वर्मा--काव्य कला और जीवन दर्शन

सूची

सुश्री महादेवी वर्मा (प्रश्नोत्तर)

(प्रश्नकर्तृ—शचीरानी गुर्टू) जैनेन्द्र कुमार

['महादेवी जी की कविता का धरातल बौद्धिक है या कहें बौद्धिक सहानुभूति। उनके काव्य में भाव की उतनी कच्ची भूमिका नहीं है। उससे अधिक तल्लीनता है, पर जैसा कि मैंने माना है कविता में उनकी निजता डूबती नहीं है, बुद्धि की डोर से वह जैसे अलग थमी रहती है।

घायल घाव नहीं चाहता। जो अभी घाव ही चाहता है, मालूम होता है उसकी गति घायल की है नहीं। महादेवी जी विरह और वियोग में रस अधिक ढूंढ़ती हैं, इसका अर्थ है विकलता उतनी अनुभव नहीं करतीं।

बुद्धि जानती है, इसी कारण वेदना में घुलने नहीं देती यानी वह भक्ति से भिन्न है। भक्ति में एक विह्वलता है, महादेवी के काव्य में इतनी अधिक कविता है कि उसी के कारण हम जान लेते हैं कि विह्वलता नहीं है। विह्वलता में भाषा के किनारे टूटे-फूटे बिना नहीं रह सकते, जबकि महादेवी जी की कविता सुसज्जित भाषा का अनुपम उदाहरण है। वेदना वह जो बुद्धि को भिगो दे। बुद्धि अलग से जिसे थामे रह सकती है, वह पीड़ा शायद बुद्धिगत है, प्राणगत नहीं; जबकि वेदना का मूल प्राण में है।']

प्रश्न : सुना है महादेवी जी नब्बे प्रतिशत हँसती हैं, बातें कम करती हैं।

उत्तर : बात तो कम नहीं करतीं, पर प्रतिशत हँसी के पक्ष में अधिक हो सकता है। यह भी कहा जा सकता है कि वह हँसी सर्वथा बात में से निकली हुई नहीं होती। कुछ असम्बद्ध भी होती है।

प्रश्न : क्या उनकी हँसी असम्बद्ध से अस्वाभाविक भी हो जाती है?

उत्तर : अस्वाभाविक महादेवी जी की ओर से नहीं कहा जा सकता। चर्चा के

प्रसङ्ग की ओर से भले ही अस्वाभाविक कह लिया जाय ।

प्रश्न : महादेवी जी की हँसी में मनोवैज्ञानिक तथ्य क्या है ?

उत्तर : मुझे लगता है, महादेवी जी अपने और दूसरे के बीच अन्तर बनाए रखना चाहती हैं। उसको सहज, फिर भी अनिवार्य बनाए रखने के लिए, बीच में यह हँसी डाल देने का उपाय है। इस तरह वे स्वयं किञ्चित् दुर्ज्ञेय बनती हैं।

प्रश्न : हँसी का तरीका उन्होंने क्यों अख्तियार किया, उन्हें दुर्ज्ञेय बनने की प्रेरणा कैसे और क्यों होती है ?

उत्तर : आपके प्रश्नों का पूरा उत्तर मुझसे कैसे मिल सकता है। दुर्ज्ञेय बनने की आवश्यकता स्वयं दुर्ज्ञेय नहीं होनी चाहिए। अपने को न खोलने की इच्छा हम सभी में है। एक स्त्री में सहज भाव से वह अधिक हो सकती है, कवयित्री में और भी अधिक; किन्तु महादेवी जी व्यवहार में शिष्ट सहानुभूति से दूर नहीं जा सकतीं। दूसरा उनकी जगह होता तो अपने को गुम-सुम या गरिमामय बनाकर सुरक्षित कर लेता। महादेवी जी का शिष्टाचार उन्हें ऐसा नहीं करने दे सकता, वह उन्हें हार्दिक दिखलाना चाहता है। वह हार्दिकता उतनी सहज उनके लिए नहीं है। कारण वे पारदर्शी सन्त प्रकृति की नहीं है। ऐसी हालत में खिलखिलाहट से भरी हँसी ही आवरण का एकमात्र उपाय रह जाता है। लगता है, इस हँसी में वह खुल रही हैं, पर वही उनको ढक रही होती है।

प्रश्न : महादेवी जी से आप सर्वप्रथम कब मिले थे ?

उत्तर : ठीक तिथि याद नहीं है, लेकिन पहली बार जब मिलना हुआ उसको अब से बीस वर्ष होते होंगे।

प्रश्न : परस्पर में क्या-क्या बातें हुईं ? यदि कुछ याद हो तो बताने की कृपा करें।

उत्तर : बातें पूरी तो याद नहीं हैं। वे इलाहाबाद शहर में तब किसी कन्याशाला में थीं, उनकी कविता ने नया-नया लोगों का ध्यान खींचा था। मुझे याद है कि पाठशाला के बन्द दरवाज़े पर मुझे कुछ देर रुकना पड़ा था। फिर कुछ देर अन्दर प्रतीक्षा में बैठना पड़ा। मालूम हुआ कि खबर दी गई है, नहा रही हैं, अभी आ रही हैं। वह 'अभी' मुझे कुछ समय अभी नहीं मालूम हुआ। काफी देर में वे आईं। जान पड़ता है वह देर मुझे रुचिकर न हुई थी। और आते ही इसी

की झल्लाहट मैंने उन पर उतारी। कहने की आवश्यकता नहीं कि वह भी झल्लाहट के रूप में नहीं उतरी। मैंने कहा था कि देखिए, पहले आपने यह ग़लती की कि कविता लिखी, फिर यह कि छपने दी, तिस पर सबसे बड़ी ग़लती यह कि वह कविता अच्छी लिखी। किसी ने आपसे यह नहीं कहा था कि आप एक पर एक ये ग़लतियाँ करती चली जायँ। यह आपका अपना काम था। कोई भी आपके साथ इसके दोष को बँटा नहीं सकता। अब अपने कर्मफल से आप बच नहीं सकतीं। यानी अपनी कविता से आपने ध्यान खींचा है तो आप अपने को उस ध्यान से बचाने की अपात्र होगईं। बात इसी ढंग से शुरू होकर न जाने कहाँ-कहाँ घूमती-फिरती रही। जान पड़ता है उनका असमंजस और मेरा क्षोभ अधिक देर हमारे बीच ठहरा नहीं। यही साहित्य-साहित्य की कुछ गप-शप होती रही होगी।

जी, आप पूछना चाहती हैं कि वे हँसी थीं और कितनी बार हँसी थीं। नहीं, उस समय एक बार भी उनके हँसने का स्मरण नहीं है। तब वे गुरुजी थीं भी तो नहीं। शायद विद्यार्थिनी थीं और एम. ए. आरम्भ नहीं तो बी. ए. अंतिम की परीक्षा दे रही थीं।

प्रश्न : आप अभी हाल में भी महादेवी जी से मिले होंगे, तब के और अब के उनके व्यक्तित्व में क्या अन्तर पड़ा है ?

उत्तर : हाँ, मिला हूँ और मिलता ही रहता हूँ, अन्तर वही ठीक बीस वर्ष जितना पड़ा है। तब सलज्जा थीं, अब बात-चीत में दूसरे को लज्जित करती हैं। जीवन में तब प्रवेश कर रही थीं, और कहाँ उनका स्थान है और होगा, इसके बारे में हर धारणा से रीती और हर आशा से भरी थीं। अब सब घटित घटना है। न धारणा के लिए और न आशा ही के लिए स्थान है। इसलिए व्यवहार में अबोधता नहीं रह गई है। सिद्ध-दक्षता आ गई है। इत्यादि इत्यादि कितना मुझसे कहलाइयेगा, खिलती वय से आरम्भ होकर उसके अनन्तर बीस वर्ष का अन्तर अपने आप में समझ लेने की बात है।

प्रश्न : महादेवी जी की कविता का धरातल क्या है ?

उत्तर : देखिए, मैं अकवि हूँ, उनकी कविता का धरातल शायद बौद्धिक है या कहें बौद्धिक सहानुभूति है। शायद वह अनुभूति से किंचित् भिन्न वस्तु है।

प्रश्न : महादेवी जी को कविता की प्रेरणा कहाँ से प्राप्त हुई ?

उत्तर : यह प्रश्न महादेवी से करने योग्य है ।

प्रश्न : मेरे पूछने का तात्पर्य यह है कि महादेवी जी को कविता की प्रेरणा उनके जीवन की वाह्य-परिस्थितियों के कारण है अथवा उनकी प्रेरणा भीतरी साधना में निहित है ?

उत्तर : बाहर की परिस्थिति और भीतर की साधना मेरे लिए ये दो अलग निरपेक्ष तत्व नहीं हैं। भीतर-बाहर में क्रिया-प्रतिक्रिया चलती ही रहती है। इस तरह मैं उनकी या किसी की कृतित्व-प्रेरणा को किसी ख़ास खाने में बिठाकर नहीं देख सकता ।

प्रश्न : महादेवी जी गृहिणी या माता होतीं तो क्या उनकी कविता का रूप यही होता ?

उत्तर : नहीं, यह नहीं होता, तब वह कविता न इतनी सूक्ष्म होती, न जटिल, न गूढ़ । तब वह अधिक प्रकृत होती ।

प्रश्न : महादेवी जी में भ्रान्ति, जड़ता, मूक प्रणयानुभूति अधिक है। वेदना है, किन्तु उसमें वे घुलती नहीं हैं; वरन् वे सुख का अनुभव करती हैं, ऐसा क्यों है ?

उत्तर : प्रश्न में शब्द बड़े हैं। उनमें से मुझे राह-बूझ नहीं मिलती। वेदना वाली बात समझ में आती है। वेदना में घुलना या न घुलना मेरे विचार में यह आदमी के अपने निर्णय की बात नहीं है। यदि कोई नहीं घुलता, तो कहना यह होगा कि वेदना की मात्रा पर्याप्त से कम है। महादेवी जी वेदना में घुल गई हैं ऐसा मैं भी नहीं मान पाता। इसी से मुझे मानना होता है कि वेदना वह समग्र नहीं, किंचित् बौद्धिक है। आपके पहले प्रश्न के उत्तर में जो मैंने कहा था, कि मेरी दृष्टि में उनके काव्य का धरातल बौद्धिक है या बौद्धिक सहानुभूति है तो इसका यही मतलब था। बुद्धि जानती है, इस कारण घुलने नहीं देती यानी वह भक्ति से भिन्न है। भक्ति में विह्वलता है, महादेवी के काव्य में इतनी अधिक कविता है कि उसी के कारण हम जान लेते हैं कि विह्वलता नहीं है। विह्वलता में भाषा के किनारे टूटे-फूटे बिना नहीं रह सकते, जबकि महादेवी जी की कविता सुसज्जित भाषा का अनुपम उदाहरण है। इसमें मैं वेदना की कुछ कमी ही को कारण देखता हूँ। वेदना वह जो बुद्धि को भिगो दे। बुद्धि अलग से जिसे थामे रह सकती है, वह पीड़ा शायद बुद्धिगत है, प्राणगत नहीं है, जबकि वेदना का मूल प्राण में है ।

प्रश्न : 'She is pathetic, not tragic.' क्या आप महादेवी जी के सम्बन्ध में इस धारणा से सहमत हैं ?

उत्तर : इन दो शब्दों में contrast तीव्र है। Tragic गुण तो महादेवी के काव्य में मुझे कम ही मिलता है, पर pathetic उसे कह देकर भी मुझे छुट्टी नहीं मिलती। Pathetic विशेषण के नीचे भाव की मानों बहुत ही कच्ची धरती माननी होगी। उस काव्य में भाव की उतनी कच्ची भूमिका नहीं है। उससे अधिक तल्लीनता है, पर जैसा कि मैंने माना है कविता में उनकी निजता डूबती नहीं है, बुद्धि की डोर से वह जैसे अलग थमी रहती है। इसी से ट्रेजिक (tragic) भाव उत्पन्न होने से वहाँ कुछ बच ही जाता है।

प्रश्न : महादेवी जी और मीरा की पीड़ा में क्या अन्तर है ?

उत्तर : उत्तर मुझे अनुमान से ही देना होगा। अनुमान ख़तरनाक भी होता है। महादेवी जी मेरे लिए समकालीन हैं, मीरा ऐतिहासिक। पर जहाँ तक संभव है, मैं व्यक्तित्वों पर से अनुमान नहीं लगाता। अनुमान काव्य से लगता है। महादेवी जी की पीड़ा चाह कर अपनाई हुई है, मीरा की अनिवार्य। मीरा अपने में बेबस और अपनी पीड़ा से छुटकारा पाने के लिए विकल हैं। वे प्यासी हैं इसलिए उनमें पानी की पुकार है। महादेवी प्यास को ही चाहती मालूम होती हैं, इससे अनुमान होता है कि प्यास को उन्होंने जाना नहीं है। घायल घाव नहीं चाहता। जो अभी घाव ही चाहता है, मालूम होता है उसकी गति घायल की है नहीं। महादेवी जी विरह और वियोग में रस अधिक ढूँढ़ती हैं। इसका अर्थ है, विकलता उतनी अनुभव नहीं करतीं। मीरा तो अपने गिरिधर गोपाल के पीछे सारी लाज लुटा बैठी हैं। महादेवी के लिए सामाजिक सम्भ्रान्तता उतनी नगण्य वस्तु नहीं है। कोई गिरिधारी उनके लिए इतना मूर्त्त और वास्तव नहीं बन सकता, जो उन्हें उधर से असावधान कर दे। यानी अपने इष्ट को वह विचार-रूप में ही ग्रहण कर सकती हैं, प्रत्यक्ष रूप में नहीं चाह सकतीं। प्रत्यक्ष होकर उसे शरीर तक मिलने की दुःसंभावना हो आती। महिला-जनोचित उनके स्वभाव के लिए वह सर्वथा असह्य है। इस तरह मीरा और महादेवी की पीड़ा में मैं किसी प्रकार भी समकक्षता नहीं देख पाता हूँ।

प्रश्न : महादेवी के काव्य में प्रणयानुभूति के अतिरिक्त सत्य, सुन्दर कहाँ तक साध्य और साधन है ?

उत्तर : मैं प्रश्न को ठीक तरह हृदयङ्गम नहीं कर पाया। मेरे लिए तो प्रत्येक सम्बन्ध सघन होकर प्रणय बन जाता है। मूर्त्त के लिए ही नहीं अमूर्त्त के प्रति भी प्रणय होता है। प्रणय अपनी प्रकृति से मूर्त्त को अमूर्त्त और अमूर्त्त को मूर्त्त बना देता है। अर्थात् प्रणयानुभूति से अतिरिक्त काव्य में कुछ और होने का अवकाश ही कहाँ है? पर हाँ, महादेवी के काव्य में वैसा अवकाश रहा है, क्योंकि बुद्धि वहाँ डूबी नहीं है, भीगी नहीं है। किंचित् स्वस्थ और सुरक्षित रह गई है। मीरा से पूछने चलो तो गिरिधारी से अलग कोई सत्य और सुन्दर उसके लिए जँचता ही नहीं। जिसके प्रति प्रणयानुभूति एवं प्रणय निवेदन हो, उससे अतिरिक्त सत्य और सुन्दर को होने के लिए अधिष्ठान ही कहाँ है? यदि है तो मानूँगा कि काव्य की त्रुटि है। इसी अर्थ में मैंने कहा कि आप के प्रश्न को मैं पूरी तरह हृदयंगम नहीं कर पाया।

प्रश्न : महादेवी जी काव्य को किन अर्थों में लेती हैं, "कला के लिए कला का सिद्धान्त" उनके काव्य पर कहाँ तक लागू होता है?

उत्तर : प्रश्न के पहले भाग का उत्तर महादेवीजी से लीजिए।

"कला कला के लिए" यह सूत्र महादेवी जी के काव्य से कितनी तृप्ति पाता है यह भी उस सूत्र के सूत्रधार से मालूम करने की बात है। मैं समझता हूँ माने जाने वाले लौकिक उद्देश्यों में से किसी के साथ उस कविता को जड़ित कठिनाई से ही देखा जा सकेगा। निरुद्देश्य तो उसे या किसी को कैसे कहा जा सकता है। पर क्योंकि हम किसी स्थूल और स्पष्ट लौकिक हेतु से उसे नहीं जोड़ सकते, इसलिए उस काव्य-कला को 'कला के लिए' ही स्रष्ट माना जाय तो कुछ अन्यथा न होगा।

प्रश्न : पद्य में वे अपने आप में सिमटी हैं, किन्तु गद्य उनकी सहानुभूति को कहाँ तक बिखेरता है?

उत्तर : आपकी बात में कुछ ऐसा आशय तो है, जिससे मैं सहमत हो सकता हूँ। पद्य में जैसे उन्होंने अपने को टटोला है, और अन्त में अपने को निवेदित किया है, उसके प्रति जो उनके अपने आत्म से भिन्न नहीं है। इस तरह घूम-फिरकर उनका पद्य अधिकांश उन तक ही लौट आता है। उसमें जगत नहीं है, मेरे ख़याल से जगत-पिता भी नहीं है। इसलिए वह काव्य कुछ इतना वायव्य और सूक्ष्म है कि अनुभूति तक में मुश्किल से आता है। यह सुविधा गद्य में तो है नहीं। गद्य इतना पर-निरपेक्ष हो सकता ही नहीं है। इसलिए उनके गद्य में

सहज भाव से हम, तुम की चर्चा हुई है। उनमें मानव-पात्र हैं और वास्तव परिस्थितियाँ हैं। केवल आत्म ही आत्म वहाँ नहीं है।

सहानुभूति की गति आवश्यक रूप से अपने से इतर के प्रति है। महादेवी जी के पद्य में वह इतर लगभग लुप्त है। इससे यह कहना कुछ हद तक ठीक ही है कि गद्य में इनकी सहानुभूति अपेक्षाकृत अधिक खिली है।

प्रश्न : महादेवी के रेखा-चित्रों के सम्बन्ध में आपकी क्या धारणा है?

उत्तर : रेखा-चित्र से मतलब शायद आपका उन शब्द-चित्रों से है जो उनकी पुस्तक 'अतीत के चल चित्र' और 'स्मृति की रेखाएँ' में मिलते हैं। मेरे ख़याल में वे शब्द-चित्र सुन्दर बन पड़े हैं और हममें सहानुभूति-परक स्पन्दन जगाते हैं। यह कि वे महिम्न माने जाने वाले नायक-नायिकाओं के कल्पना-चित्र नहीं हैं, एक अच्छी ही बात है। साहित्य ने असाधारण को पर्याप्त से अधिक महत्व दिया है। असाधारण किंचित् अपसाधारण भी होता है। समय है कि हम साधारण के महत्व को पहिचानें। एक समय किसी साहित्य-चर्चा में अमुक साहित्य-पंडित से 'साधारणीकरण' शब्द सुना था। उसका शास्त्रीय अर्थ मैं नहीं जानता, लेकिन इस अर्थ में 'साधारणीकरण' मुझे प्रिय और मान्य होता कि प्रत्येक निजता को हम इस रूप में लें और दें कि सार्वजनिक से विषम न रह जाय। महादेवी जी को इसके लिए यानी उनके रेखा-चित्रों के लिए मैं बधाई दे सकता हूँ। इसका मतलब यह कि मैं उनके प्रति उस सृष्टि के लिए कृतज्ञ हूँ।

प्रश्न : महादेवी जी की चित्रकला में विरहिणी नारियों के ही धुँधले चित्र मिलते हैं, ऐसा उनसे जान में हुआ है या अनजान में?

उत्तर : जान-अनजान दोनों में।

प्रश्न : महादेवी जी की चित्रकला के सम्बन्ध में आपके क्या विचार हैं?

उत्तर : महादेवी की रचनाओं में मैंने उनके बनाए चित्र देखे थे। पर उन्होंने जो अपने कमरे की भीतों पर चित्र काढ़े हुए थे, उनका मुझ पर अधिक प्रभाव पड़ा। पहली बार वहाँ जाने पर मैं उन भीत-चित्रों को मुग्ध सा देखता रह गया। काव्य-पुस्तकोंमें अंकित या स्वतंत्र-चित्र भावों को मूर्त करने के प्रयत्न में बने हैं। जीवन-प्रसङ्ग से वे इतने जुड़े नहीं हैं। इससे वे पूरी तरह अनुभूति की पकड़ में नहीं बैठते। यों तो अज्ञेयता भी एक प्रकार का रस है। पर उसकी बात यहाँ नहीं करूँगा। हम गर्व में रहते हैं, इससे जब हमारी बुद्धि कहीं अकृत-कार्य होती है

तो किञ्चित् अच्छा भी लगता है। वैसी दुर्बोधता उन चित्रों में है, पर मुझ जैसे को कुछ देते नहीं जान पड़े। कमरे की भीतों पर जो चित्र थे, वे उस प्रकार भाव-कैवल्य में से नहीं बने थे। उन्हें घटनात्मक भी कहा जा सकता है। जीवन-प्रसङ्ग से उनका सीधा सम्बन्ध था। शायद इसीलिए रेखाङ्कन आदि की अपनी संभव त्रुटियों के बावजूद मुझे विभोर कर सके। मानना होगा कि महादेवी जी की चित्रकला जीवन से अधिक चिन्तन की ओर उन्मुख है। जीवन तो माँसलता माँगता है। उसके बिना वह चलता नहीं। पर चिन्तन के लिए शरीर ही बाधा है, इसलिए अशरीरी चित्रण चिन्तनाभिमुखता के लिए अधिक अनुकूल पड़ सकता है। इसको फिर चाहे उसकी विशेषता कहा जाय चाहे मर्यादा।

प्रश्न : क्या आप के मन्तव्य से इस वस्तु-स्थिति पर भी प्रकाश पड़ता है कि उनके चित्रों में विरहिणी नारी का चित्रण विशेष है ?

उत्तर : हाँ, अपने निज के भाव पर आश्रित रहने के कारण और बाहर के घटना-जगत् से विमुख होने के कारण उनके चित्रों में एकाकिनी नारी का स्थान पाना सहज संभव ही है। उस एकाकिनी को निश्चय ही अनेक भावों और रूपों में आना होगा। परस्परता के बीच उसकी एकान्तता एवं अभावात्मकता उस तरह निभ नहीं सकेगी। इसलिए उन चित्रों में उस प्रकार की सामाजिक परस्परता का अभाव स्वाभाविक मानना चाहिए।

प्रश्न : महादेवी के काव्य पर बुद्ध, रवीन्द्र, अरविन्द का प्रभाव कहाँतक है?

उत्तर : उस 'तक' के अनुपात का मुझे कुछ पता नहीं है। प्रश्न में आए तीनों व्यक्ति रहस्यवादी या आध्यात्मिक माने जाते हैं। आध्यात्मिक पर-प्रभाव को उस रूप में ले सकता ही नहीं है। उसे नितान्त मौलिक होना होता है। मौलिक से मतलब हर प्रभाव उसकी आत्मता में घुल कर ही उसे अङ्गीकृत हो पाता है। इस तरह कह सकते हैं कि परत्व को स्वत्व भाव से ही वह ले पाता है। महादेवी जी के सम्बन्ध में अनुपात का यद्यपि मुझे पता नहीं है तो भी यह इनकार करते नहीं बनता कि रवीन्द्र, बुद्ध आदि का उनपर प्रभाव है। प्रभाव है यह कहते बनता है, इसी में आशय है कि वह प्रभाव कुछ अलग से भी झलक आता है। स्वत्व में वह एक दम खो नहीं गया है। क्या मैं कहूँ कि अपने को जो पूरी तरह स्वीकार करने का आभास उनकी रचनाओं में नहीं है, वह बहुत कुछ 'पर' को अपनाए रहने के कारण भी है।

प्रश्न : महादेवी और जैनेन्द्र के साहित्य में किसकी कृतियाँ अधिक स्थायी रहेंगी ?

उत्तर : जैनेन्द्र की तो चिर-चिरान्त स्थायी रहने वाली हैं। उसका अभिमान इससे कम मानने को क्यों तैयार हो। महादेवी जी की रचनाओं की जन्म-पत्री को भृगु-संहिता से मिला कर देख लेना चाहिए, तब ठीक ठीक उनकी आयु के वर्ष, पल, छिन का पता लग सकेगा।

प्रश्न : आपके उत्तर में तो उपहास है। क्या प्रश्न को आप उपहास के ही योग्य समझते हैं ?

उत्तर : और नहीं तो क्या ! आप ही कहिए प्रश्न में से विनोद के सिवा और क्या आशय लिया जा सकता है।

प्रश्न : तो क्या आप कविता को इतना अस्थायी मानते हैं कि वह कुछ क्षणों या पलों में ही सीमित है ?

उत्तर : नहीं, लेकिन उसकी आयु का निर्धारण कैसे हो ? हमसे जुड़ा हुआ सब कुछ 'अहम्' से भी जुड़ा है। अहं तो नाशवान है। इससे आगे-पीछे हमारी रचनाओं को भी नाश को प्राप्त होना है। काल तो अनन्त है, जिसको हम चिरस्थायित्व कहें उसकी क्या उस अनन्तता में बूँद जितनी भी गिनती है ! महादेवी की कविता मर्म को छूती है। मर्म सबका एक है। उसी को आत्मा कहें। अपने शुद्ध रूप में वही परमात्मा है। उस अवस्था में वह कालाबाधित सत्य है। उसके नाश का प्रश्न ही नहीं। अतः यत्र-तत्र मार्मिक भी हो जाने के कारण केवल सामायिक भाव से जीकर समाप्त हो जाने वाली कविता वह नहीं है।

महाश्वेता महादेवी

देवेन्द्र सत्यार्थी

['टिमटिमाते तारों में कवयित्री अपना इतिहास खोजती है, मधु-बयार जीवन का सन्देश लाती है। कभी वेदना उसके मन पर छा जाती है और वह 'नीर भरी दुख की बदली' से अपनी तुलना करने लगती है। आँसू ही उसके प्रिय सखा हैं। फिर पग-पग पर संगीत प्रतिध्वनित हो उठता है और वह गायक को सम्बोधन करती है—

'दीपक-राग के स्पर्श से सभी दीप जल उठते हैं, फिर जीवन के मन्दिर में कैसे अन्धकार रह सकता है ?'

रात का अन्धकार वेदना लाता है, भोर होने पर जीवन का उल्लास उभरता है। भोर होने पर किसी को सोना नहीं चाहिए—

'फिर सजग आँखें उनींदी आज कैसा व्यस्त बाना ?
जाग तुझको दूर जाना !'

कविता में कवयित्री अपने ही जीवन की आवाज़ प्रस्तुत करती है और जिस ईमानदारी और सचाई से वह अपना स्वर छेड़ती है उसपर पाठक को सन्देह नहीं होता। पग-पग पर एक प्रतीक-सा उभरता है। इस कविता में इतनी क्षमता है कि जीवन को अपने पंखों में समेट ले।']

महादेवी को मैंने जब भी देखा खादी की उसी सफ़ेद धोती में। एक ही अन्तर दिखाई दिया। अब वे अति गम्भीर मुद्रा के स्थान पर खुल कर हँसने में अधिक विश्वास रखती हैं।

अठारह साल पहले हुई थी पहली भेंट। वे देहरादून के कन्या गुरुकुल के दीक्षान्त समारोह में भाषण देने आई थीं। बस वहीं मैंने उन्हें देखा।

खादी की सफ़ेद धोती में लिपटा हुआ शरीर, मुख पर गाम्भीर्य की रेखाएँ। मैं जैसे एकदम उनके रौब में आ गया। उनकी वाणी में अवश्य एक आकर्षण था—उसी से खिंचा हुआ मैं उनकी ओर बढ़ा। दीक्षान्त-समारोह के पश्चात् उन्हें अनेक व्यक्तियों ने अपनी बातों में उलझा रखा था। वे जल्द-जल्द सब से बिदा ले रही थीं—उस समय मुझे उन ख़ानाबदोशों का ध्यान आया जो एक स्थान में थोड़ा समय बिताकर आगे जाने के लिए उत्सुक हो उठते हैं। उतनी ही उत्सुकता से महादेवी देहरादून से बिदा लेने जा रही थीं। हाँ, फ़र्क़ सिर्फ़ इतना ही था कि आगे आने की बजाय वे पीछे को लौट जाना चाहती थीं—वहीं इलाहाबाद।

मुझे ख़याल आया कि इससे डेढ़ वर्ष पूर्व मैं इलाहाबाद गया तो न जाने कैसे महादेवी के यहाँ जाने से चूक गया था। अब तो वे सामने खड़ी थीं। सोचा, ज्यादा से ज्यादा यही होगा न कि वे एक दो मिनटों में 'जी हाँ-जी हाँ' कह-सुन कर बिदा लेने के लिने हाथ जोड़ने की औपचारिक मर्यादा दिखाने लगेंगी, पर ऐसा नहीं हुआ। मैंने बात शुरु की। स्वयं अपना परिचय देने का दायित्व निभाया। वे चलने के लिए तैयार खड़ी थीं, पर जैसे उनके पैर रुक गये हों। बीच में ख़याल आया ज़रूर कि यह तो ठीक नहीं कि मैं ही बोलता चला जाऊँ और वे ख़ामोश खड़ी सुनतीं रहें। लोक-गीतों के बारे में मैंने अपनी योजना बताई। "मैं इनके बारे में अधिक नहीं जानती"—उनसे यह सुन कर जैसे मेरा हौसला बढ़ा। आज सोचता हूँ कि कैसे मैंने हौसला किया, कैसे झट यह मान लिया कि वे लोक-गीतों के बारे में अधिक नहीं जानतीं!

हिन्दी कवयित्री के नाते महादेवी का नाम मेरे लिए एकदम नया तो न था। अब जैसे उनसे मिल कर उनकी कविता मेरे लिए कुछ-कुछ सहज हो गई। इस कविता में प्रार्थना के स्वर थे, आँसू थे, और वेदना के हृदय स्पर्शी बोल थे। अब उनकी कविता मेरे लिए एक प्रश्न-चिन्ह प्रस्तुत करने में समर्थ हुई। जो कवयित्री देखने में इतनी गम्भीर है वह यों रो भी सकती है क्या? यह था प्रश्न। इसका उत्तर कभी मैं यों देने का यत्न करता—इसमें कठिन होने की क्या बात है? इसे कहते हैं एक प्रश्न को दूसरे प्रश्न द्वारा पराजित करने का तर्क। यही तो मैं कर सकता था। बार-बार देहरादून में देखा हुआ उनका वह रूप सामने आ जाता जिसपर गाम्भीर्य की गहरी तहें देखने में समर्थ हुआ था—हँसी तो जैसे उन्हें छू तक न गई थी।

कई बार मुझे उस पंजाबी लोकोक्ति का ध्यान आता जिसमें कहा गया था—इतना मत हँसो, रोना पड़ेगा। बस मैं यही सोच लेता कि महादेवी ने

भी हँसने का अपराध किया होगा कभी न कभी—उसी का यह परिणाम है कि उन्हें कविता में रोना पड़ रहा है।

उनसे पहली भेंट के पाँच साल बाद मैं बम्बई में था। सुप्रसिद्ध अंग्रेजी मासिक 'एरियन पाथ' में महादेवी की पुस्तक 'सान्ध्य गीत' आलोचना के लिए आई। इस पत्र के सम्पादक श्री वाडिया ने यह पुस्तक आलोचना के लिए मुझे दी। मैंने इसे लेते समय सबसे ज्यादा यही सोच लिया था—लीजिये महादेवी के दर्शन का एक और अवसर हाथ आया।

'सान्ध्य गीत' का प्रकाशन मुझे बहुत सुन्दर लगा। इसे बड़े गर्व से किसी भी भाषा के प्रकाशनों के सम्मुख रखा जा सकता था। अनेक चित्र इस प्रकाशन की विशेषता थे। सबसे बड़ी बात तो यह थी कि कवयित्री ने स्वयं तूलिका से काम लिया था। कवयित्री और चित्रलेख के व्यक्तित्वों का यह सम्मिश्रण मेरे मन की गहराइयों को कई दिन तक गुदगुदाता रहा।

एक दिन सहसा श्री वाडिया से भेंट हो गई। बोले—"वह आलोचना लाइए।"

मैंने कहा—"अभी तो 'सान्ध्य गीत' को पढ़ रहा हूँ बराबर।" वे चमक कर बोले—"आप उसे पढ़ रहे हैं? इस तरह तो आप उससे प्रभावित हो जायँगे।"

मैं ज़रा घबराया। उन्होंने हँस कर बताया कि यदि कोई आलोचक पुस्तक पर इतना समय लगाये तो कैसे काम चलेगा। सब से बड़ी कठिनाई उनकी दृष्टि में यही थी कि यदि आलोचक किसी पुस्तक पर भावुक होकर रीझ उठे तो उसमें वह तटस्थ बुद्धि कैसे काम कर सकती है जो किसी भी नाप-तौल के लिए आवश्यक होती है और विशेष रूप से उस अवस्था में जब कि सही-सही नाप-तोल का सवाल हो।

खैर, मैंने किसी तरह बात को समेटते हुए शीघ्र ही 'सान्ध्य गीत' की आलोचना लिखने का वचन दिया।

सच बात तो यह थी कि मैं व्यवसायी आलोचक न था और मेरे लिए यह बिलकुल कठिन था कि पुस्तक के पन्ने इधर-उधर से पलट कर कुछ लिख डालूँ।

अगस्त १६३७ के 'एरियन पाथ' में प्रकाशित 'सान्ध्य गीत' की आलोचना को हिन्दी रूप में यहाँ प्रस्तुत करने की बात अप्रासंगिक न होगी। मैंने लिखा था—

"आधुनिक हिन्दी कविता महादेवी वर्मा पर गर्व कर सकती है। उनमें

बड़ी प्रतिभा है। उनकी तीन पुस्तकें—'नीहार', 'रश्मि' और 'नीरजा' प्रशंसा प्राप्त कर चुकी हैं। अब वे अपनी नई पुस्तक 'सान्ध्य गीत' के साथ हमारे सम्मुख आती हैं। इसमें पैंतालीस गीत उपलब्ध हैं। पुस्तक का नाम झट से रवीन्द्रनाथ ठाकुर की इसी नाम की पुस्तक का स्मरण दिला जाता है। अब तक महादेवी वर्मा से हम एक प्रतिभामयी कवयित्री के रूप में ही परिचित थे, पर अब पता चला कि उन्हें रंग और रेखा पर भी पूरा अधिकार है। उनके छः रंगीन चित्रों और अनेक रेखा-चित्रों पर हम मुग्ध हो उठते हैं जिनके द्वारा इस पुस्तक को सजाया गया है।

"प्रस्तावना में कवयित्री ने अपने इस विषय में लिखा है। कवयित्री ने अपनी तुलना उस समृद्ध प्रवासी से नहीं की जो आशातीत विभूति लेकर घर लौटता है और अपरिचित भी परिचितों के समान पूछ बैठते हैं—'क्या तुम वही हो?' कवयित्री ने अपनी उपमा उस सम्बलहीन वामन से दी है जिसे अपनी सीमाएँ मालूम हैं और जो अपने घर का द्वार छोड़कर दूर जाने का साहस नहीं करता। उसने स्वयं स्वीकार किया है कि जब 'नीहार' के धुँधलेपन में उसने हिन्दी कविता के मन्दिर में प्रवेश किया वह सहमी हुई सी थी। इस लाज-संकोच में वह स्वतन्त्रता से तो आगे कैसे जा सकती थी? पीछे लौटने का प्रश्न भी न उठा। उसका हृदय यहीं रम गया। अनेक प्रमुख हिन्दी लेखकों ने उसे देखकर ही उसकी सीमाओं को भाँप लिया होगा और उसके बारे में अधिक जानने का उनका कुतूहल भी मिट गया। आगे चलकर कवयित्री अपने वक्तव्य में कहती है कि 'नीहार' के रचना-काल में उसकी अवस्था उस बालक की सी थी जो उषा को देख सकता है, पकड़ नहीं सकता और यों उसे एक विचित्र सी वेदना होती है। फिर वह समय आया जब उसे जीवन के सुख-दुःख में सामञ्जस्य नज़र आने लगा और उसने 'नीरजा' की रचना की। सुख-दुःख के उसी आध्यात्मिक सामञ्जस्य से इन सान्ध्य-गीतों की सृष्टि हुई है।

"कवयित्री ने तूलिका और रंग के प्रति अपने आकर्षण का इतिहास भी छुआ है। वह हमें बचपन की ओर ले जाती है। हम उसे माँ का सिन्दूर चुराकर एक कोने में बैठे देखते हैं, जहाँ वह फर्श पर इस सिन्दूर से चित्र बना रही है। फिर हम उसे एक वयोवृद्ध चित्रकार से चित्र बनाने का अभ्यास करते देखते हैं। अभी कुछ रेखाएं खींचीं, अभी उनमें रंग भरने की उत्सुकता जग उठी। दिन में हम उसे अपने गुरू के निरीक्षण में चित्र बनाते देखते हैं, रात के समय वह दिन में बनाये चित्र पर दूसरे ही

रंग लगाने के लिये उत्सुक नज़र आती हैं और अक्सर वह यों पहले चित्र को नष्ट कर डालती है। पर उसे इसमें भी आनन्द आता है। गीतों की चर्चा करते हुए हम कवयित्री को अपनी उपमा सन्ध्या के आकाश से देते देखते हैं, वह अपने स्वप्नों की उपमा रंग-बिरंगे मेघों से देती है। सुख-दुःख उसे उन पक्षियों के रूप में नज़र आते हैं, जो सन्ध्या समय अपने-अपने नीड़ की ओर लौटते हैं। तब वह पूछती है—

'क्या न तुमने दीप बाला ?
क्या न इसके शीत अधरों—
से लगाई अमर ज्वाला ?'

"टिमटिमाते तारों में वह अपना इतिहास खोजती है, मधु-बयार नव-जीवन का सन्देश लाती है। कभी वेदना उसके मन पर छा जाती है और वह 'नीर भरी दुःख की बदली' से अपनी तुलना करने लगती है। आंसू ही उसके प्रिय सखा हैं। फिर पग-पग पर संगीत प्रतिध्वनित हो उठता है और वह गायक को सम्बोधन करती है। दीपक राग के स्पर्श से सभी दीपक जल उठते हैं। फिर जीवन के मन्दिर में कैसे अन्धकार रह सकता है ? रात का अन्धकार वेदना लाता है, भोर होने पर जीवन का उल्लास उभरता है। भोर होने पर किसी को सोना नहीं चाहिए। एक गीत यों आरम्भ होता है—

'चिर सजग आँखें उनींदी आज कैसा व्यस्त बाना ?
जाग तुझ को दूर जाना !'

"यूनानी गाथा के एक पात्र के समान, जो जिस वस्तु को छूता था, उसे स्वर्ण में परिणत कर देता था, महादेवी वर्मा जीवन की यथार्थवादी वाणी को कविता में परिणत कर देती हैं जो कहीं न कहीं रहस्यवाद को छू लेती है। इसमें सदैव कला का चमत्कार रहता है। मुझे विश्वास है हिन्दी कविता के सभी पाठक 'सान्ध्य गीत' का हार्दिक स्वागत करेंगे।"

'सान्ध्य गीत' की कवयित्री के रूप में महादेवी ने वस्तुत, हिन्दी कविता का सिर ऊँचा किया। इन गीतों के साथ आधुनिक हिन्दी कविता में उस लोच और लालित्य का समावेश हुआ जिसके बिना कोई भी गीत गायक के ओठों पर थिरक नहीं सकता।

शायद मैं अपने पथ से थोड़ा दूर जा पड़ा, क्योंकि मैं महादेवी के व्यक्तित्व पर ही अपना समूचा ध्यान केन्द्रित करने जा रहा था। पर किसी भी साहित्यकार के व्यक्तित्व को उसकी रचनाओं से एकदम अलग करके

देखना न सहज है न वांच्छनीय।

महादेवी की समूची कविता का अध्ययन करते समय 'सान्ध्य-गीत' के पश्चात् हमारी दृष्टि 'दीप-शिखा' पर आ टिकती है। इसकी विशेषता यह है कि कवयित्री ने अपनी सभी रचनाएँ ब्लॉक द्वारा हस्तलिपि में ही प्रस्तुत की हैं। साथ ही इस संग्रह में कवयित्री की तूलिका द्वारा अंकित चित्र उसके व्यक्तित्व को हमारी दृष्टि में और भी ऊँचा उठा देते हैं। कविता में भी अधिक गहराई आ गई है। कवयित्री अपने ही जीवन की आवाज़ प्रस्तुत करती है और जिस ईमानदारी और सचाई से वह अपना स्वर छेड़ती है उस पर पाठक को सन्देह नहीं होता। पग-पग पर एक प्रतीक सा उभरता है। इस कविता में इतनी क्षमता है कि जीवन को अपने पंखों में समेट ले।

जैसे हिम-खण्डित शिखरों को पार करता हुआ पक्षी ऋतु आने पर मैदानों की ओर चल पड़ता है और कुछ महीने मैदानों में गुज़ार कर ऋतु बदलने पर फिर से अपने देश की ओर उड़ चलता है—कुछ ऐसे ही महादेवी कभी लेखनी लेकर कविता लिखने बैठ जाती हैं तो कभी तूलिका लेकर चित्र अंकित करने लगती हैं।

'दीप शिखा' के बारे में खटकने वाली बात यही है कि जो लोग हस्तलिपि पढ़ने के स्थान पर टाइप में छपी हुई लिपि पढ़ने के अभ्यस्त हैं, इसे पूरी तरह पढ़ नहीं पाते। अच्छा हो यदि 'दीपशिखा' का एक संस्करण उनकी अन्य पुस्तकों की तरह छापे के टाइप में प्रस्तुत किया जा सके।

महादेवी का दूसरा कमाल यह है कि उन्होंने पद्य और गद्य दोनों ही क्षेत्रों में लेखनी के प्रयोग किये हैं। गद्य लिखने से उनका बहुत बचाव होगया है। क्योंकि मैं समझता हूँ कविता में जिस सामाजिक तत्त्व की कमी इस युग के पाठक को बुरी तरह खटक सकती है, वह उनके गद्य में नहीं खटकती। 'स्मृति की रेखाएँ' 'अतीत के चल-चित्र' और 'शृङ्खला की कड़ियाँ'— ये तीन पुस्तकें महादेवी के गद्य की पताका फहराती हैं। इन में संस्मरण और रेखाचित्रों का संग्रह मिलेगा। कविता में महादेवी एक आधुनिक मीरा के समान विरह का गान गाती हैं, यह और बात है कि मीरा के समान उनका 'प्रिय' सशरीर प्रतीत नहीं होता, बल्कि वह सकल ब्रह्मांड में रमी हुई किसी 'अदृश्य' शक्ति का प्रतीक है। जो हो, आज के युग में केवल व्यक्तिगत साधना की प्रयोगशाला में ही कविता को बन्द रखना उचित नहीं। युग की मांग क्या है? सामाजिक चेतना कवि से क्या चाहती है? अत्याचार

के प्रति विद्रोह की भावना का महादेवी की कविता में एकदम अभाव है, क्योंकि उनके गीतों में तो बस, किसी अदृश्य 'प्रिय' को ही सम्बोधन किया जाता है। भाषा की कोमलता इन गीतों की विशेषता है। मानव-मन के तार छेड़ सकने की क्षमता भी है इन गीतों में, सुख दुःख के स्वरों पर निराशा और वेदना का गहरा रंग उस अवस्था का परिचायक है जब कवयित्री बाहर देखने की बजाय भीतर देखना ही अधिक पसन्द करती है। पर महादेवी के संस्मरण और रेखाचित्र सामाजिक-तत्वों की पृष्ठभूमि में उभरते हैं और यों लगता है कि जो बात कवयित्री महादेवी न कह पाई वह इन संस्मरणों और रेखाचित्रों की लेखिका महादेवी ने बड़ी आसानी से कह दी।

मैं यह कहने का साहस कर सकता हूँ कि कविता और चित्रकला के क्षेत्र से कहीं अधिक संस्मरण और रेखा-चित्र के क्षेत्र में महादेवी का दर्शन मुझे अधिक प्रिय लगता है।

बंगाल के अकाल की व्यथा से द्रवीभूत होकर महादेवी ने एक कविता लिखी थी। उन दिनों यदि महादेवी ने इस दिशा में कुछ और भी लिखा होता तो उनकी कविता को नई ही दिशा प्राप्त हो सकती थी।

बड़ी हैरानी होती है कि गीत लिखते समय महादेवी के मन को वे सब विचार क्यों नहीं छूते जो संस्मरण और रेखाचित्र लिखते समय छू-छू जाते जाते हैं। जिस मेहतरानी को लेकर उन्होंने सुन्दर संस्मरण लिखा, क्या उसे कविता के क्षेत्र में एकदम 'अछूत' ही समझना चाहिए।

जहाज़ का काम है खुले पानी पर चलना, एक बन्दरगाह से दूसरी बन्दरगाह तक जाना। इसी तरह कोई भी साहित्यकार, चाहे वह कवि हो या गद्य-लेखक, अपने साहित्य में सामग्री और शैली के प्रयोगों में यातायात का प्रयोग करता रहे, यह वांछनीय है। इससे उसे समय समय पर नई दिशा प्राप्त हो सकती है, और सच पूछा जाय तो सौ दिशाओं की एक दिशा है सामाजिक चेतना। यह न हो तो साहित्य का रंग नहीं जमता।

महादेवी के सम्बन्ध में हिन्दी के एक बड़े साहित्यकार ने कहा था—'इतनी सी मटकी और उसमें मनों आँसू!' मैं समझता हूँ, आज के युग में महादेवी से यह शिकायत अवश्य की जानी चाहिए। उस साहित्यकार के मतानुसार महादेवी को अपने गीतों में इतना रोना नहीं चाहिए। महादेवी के गीतों में केवल रोना ही रोना हो, यह बात नहीं। पर जिस बीज का अतिरेक अखरता है वह है एकमात्र 'प्रिय' की प्रतीक्षा। कवयित्री जन-जीवन

की शृंखलाओं को कविता का विषय क्यों नहीं मानती? अन्तराभिमुख अभिव्यक्ति के स्थान पर वह जन-जीवन की खुली अभिव्यक्ति से कविता को अनुप्राणित करने की बात क्यों स्वीकार नहीं करती? ये प्रश्न हैं जो महादेवी से अवश्य पूछे जा सकते हैं। इस युग की अन्तर्राष्ट्रीय कविता में जो चेतना नज़र आती है, तुर्की कवि नाज़िम हिकमत और स्पेनी भाषा के कवि पाब्लो नेरूदा में जन-जीवन की प्रगति के लिए जो आग धधकती है उसका महादेवी की कविता में एकदम अभाव है।

सन् १९४७ में एक बार महादेवी दिल्ली पधारीं। उन दिनों मुझे उनसे मिलने का अवसर मिला। पहली भेंट के बाद तक उनके साहित्य को पढ़कर जो चित्र मेरे मन पर अंकित हुआ था उससे यह कल्पना भी न कर सकता था कि महादेवी इतना खिलखिला कर हँस सकती होंगी। वही खादी की सफेद धोती। यों लगा जैसे उनकी हँसी का रंग भी एकदम सफेद हो। यों लगा जैसे महादेवी की यह हँसी उस रुदन की ही प्रतिक्रिया हो जिसका समावेश उनके गीतों में हुआ है। कुछ हद तक तो उनकी हँसी चौंकाने वाली थी। जैसे इस हँसी का आविर्भाव एक जीवित प्राणी से नहीं, बल्कि एक 'आटोमैटिक मशीन' से हो रहा हो। इस बात का सन्देह मुझे यों हुआ कि निरालाजी को लेकर बात हो रही थी, और इस दुःखद समाचार से मेरी आत्मा झकझोर-सी हो गई थी कि हिन्दी का युगप्रवर्तक कवि 'निराला' पागल हो गया। उसे पागल किसने बनाया? इस प्रश्न के उत्तर में महादेवी उन सभी लोगों को ज़िम्मेवार ठहराने में मुझसे सहमत थीं जिन्होंने इस कवि का अधिकाधिक शोषण किया और कभी भूलकर भी उस कमाई का न्यायपूर्ण अंश निराला को देने की बात न सोची जो उन्हें कवि की रचनाओं से हुई। मैं समझता था कि बात बड़ी संजीदा है। पर महादेवी को इतनी हँसी आ रही थी, जैसे एकदम नदी का बाँध टूट गया हो और हँसी की बाढ़ अब रुक न सकती हो।

इससे अगले वर्ष या उससे थोड़ा और बाद महादेवी दोबारा दिल्ली पधारीं। वही खादी की सफेद धोती। मैंने महाश्वेता को झुक कर प्रणाम किया। दिल्ली की सुप्रसिद्ध कहानी-लेखिका सत्यवती मल्लिक ने अपने निवास स्थान पर महादेवी को आमंत्रित किया था और समय से पूर्व सूचना मिलने पर सवेरे-सवेरे मैं भी वहाँ जा पहुँचा।

बहुत सी बातें हुईं। घूम फिर कर गीत की टेक यों उभरती—'तुम्हारी दिल्ली हमें तो पसंद नहीं!' मैं कहना चाहता था—'महाश्वेता, क्या यही

बात तुम्हारी किसी कविता की दागबेल नहीं डाल सकती ?'

इस अवसर पर मैंने आग्रह किया कि उनका एक फोटो अवश्य ले लूँ। मैंने अपना कैमरा साथ रख छोड़ा था। वे बोलीं—"फोटो तो ले लो, छप वाना मत !" मैंने वचन दिया कि उनकी अनुमति के बिना यह फोटो कहीं नहीं भेजा जायगा। खैर, मैंने दो फोटो लिए। एक महादेवी का और एक सत्यवतीजी के साथ।

फोटो खींचने के बाद मैंने 'आजकल' के लिए कविता माँगी। वैसे तो मुझे स्वयं हँसी आ गई। क्योंकि मैं जानता था कि वे क्या उत्तर देंगी। वही हुआ भी। बोली—"सरकारी पत्र में मेरी कविता कैसे छपेगी ?"

वे जल्दी में थीं। उसी दिन उन्हें राष्ट्रपति से मिलना था। इसलिए बातचीत में विलम्बित लय तो न रह सकती थी। जो बातें हुईं उनमें सबसे महत्वपूर्ण विषय था कॉपीराइट का प्रश्न। इस सम्बन्ध में उनका आग्रह यही था कि लेखक के अधिकार सुरक्षित रखने का उचित प्रबन्ध किया जाय जिससे प्रकाशकों को इतनी हिम्मत न हो कि मनमानी किया करें और लेखक के शोषण द्वारा अपने महल खड़े करते रहें।

मैं उन्हें नीचे कार तक पहुँचाने गया। कार में बैठते ही वे खिलखिलाकर हँसीं। उस समय मैं उस गाम्भीर्य की कल्पना भी न कर सकता था, जिसका अनुभव मुझे पहली भेंट में हुआ था। सच पूछो तो कार के दूर निकल जाने पर भी मुझे महाश्वेता की खादी की सफेद धोती और मुख पर उससे भी कहीं अधिक सफेद-सी हँसी का आभास होता रहा, जैसे महाश्वेता का रूप हवा की लहरों पर मूर्तिमान हो उठा हो !

उस दिन मैं घर लौटा तो न जाने कैसे यह विचार मन पर हथौड़ी सी चलाने लगा कि जहाँ कुछ व्यक्ति मेंटलपीस पर रखे हुए नक्काशीदार फूलदान की तरह होते हैं वहाँ कुछ व्यक्ति ऐसे भी होते हैं जिनकी उपमा थर्मामीटर से दी जा सके। महादेवी को इस दूसरी श्रेणी में बड़ी आसानी से रखा जा सकता है—इस विचार से मुझे सन्तोष हुआ क्योंकि मेरे देखने में ऐसे लेखक बहुत कम आये थे जो लेखनी से थोड़ा अवकाश लेकर समकालीन लेखकों के अधिकारों के लिए 'कॉपीराइट' के विषय में इतने चिन्तित नज़र आते हों।

फिर बहुत दिनों तक महादेवी से भेंट न हुई। इस बीच में यही कर सकता था कि 'आजकल' के लिए महादेवी से एक आध कविता का तकाज़ा करूँ। न कभी पत्र-का उत्तर आया, न कभी कविता प्राप्त हुई। संस्मरण

या रेखाचित्र माँगने का तो ऐसी अवस्था में कैसे साहस कर सकता था ?

इसी वर्ष की बात है। एक दिन अचानक इलाहाबाद से तार मिला। यह महादेवी का तार था। साहित्यकार संसद के वार्षिक अधिवेशन पर पहुँ-चने का आमंत्रण।

मैं इलाहाबाद पहुँचा। साथ में श्रीमती को लिया और नन्ही अलका को। साहित्यकार संसद में गंगा के किनारे जिस महादेवी को देखा उसे भी महाश्वेता ही कहा जा सकता था। वही खादी की सफ़ेद धोती। मुख पर हँसी—वह भी उतनी ही सफ़ेद जितनी कि किसी भी महाश्वेता के मुख पर शोभा दे सकती है और नीचे गंगा की पावन लहरें।

दूसरे कई प्रांतों से भी साहित्यकारों को बुलाया गया था। भीड़-भड़क्के में महादेवी को इतनी फ़ुर्सत न थी कि किसी एक व्यक्ति से खुलकर बात कर सकें। पर जिस रात संगीत और नृत्य का कार्यक्रम था उस दिन महादेवी मेरे समीप ही आ बैठीं। सभा में कुछ युवकों ने फिकरे कसने की प्रवृत्ति दिखाई। महादेवी ने उन्हें वह डाँट पिलाई कि वे भी क्या याद रखेंगे। मैंने देखा कि महादेवी की एक ही डाँट से फिर किसी युवक को चूँ-चरा करने की हिम्मत न हुई और संगीत तथा नृत्य का कार्यक्रम निर्विघ्न समाप्त हुआ।

एक दिन सवेरे ही संगम स्नान का कार्यक्रम रखा गया। जिस बस में अनेक साहित्यकारों को संगम ले जाने की व्यवस्था की गई थी उसी में महादेवी भी बैठी थीं, जिस आत्मीयता का परिचय इस बस में मिला वह पहले कभी नहीं प्राप्त हुआ था।

संगम पहुँच कर नौका में भी सभी लोग एक साथ सवार हुए। मैंने देखा कि महादेवी छोटे-बड़े प्रत्येक साहित्यकार के प्रति बड़ी बहन का स्नेह रखती हैं। नन्हीं अलका को भी उनका स्नेह प्राप्त हुआ।

स्नान के लिए वे मेरी पत्नी को अपने साथ ले जाना चाहती थीं। पर मेरी पत्नी गंगा पर पहुँच कर भी गंगा-स्नान का पुण्य प्राप्त करने के लिए राजी न हुईं। महादेवी यह देख कर खुशी हुईं कि नन्हीं अलका कपड़े उतारने की ज़िद कर रही है, और गंगा-स्नान का महत्व न समझते हुए भी स्नान के लिए उत्सुक हो उठी है।

स्नान के पश्चात् गंगा के किनारे तिलक लगाने वाले एक ब्राह्मण के स्थान पर रुक कर महादेवी ने स्वयं अपने हाथ से प्रत्येक साहित्यकार के माथे पर चन्दन का तिलक लगाया। मैं भी उन सौभाग्यशाली व्यक्तियों में था जिनके माथे पर महाश्वेता ने चन्दन का तिलक लगाया।

फिर स्वयं महाश्वेता के माथे पर गंगा के ब्राह्मण ने तिलक लगाया। महादेवी का वह रूप क्या कभी भूलने की वस्तु है ? मैंने कैमरा खोला और झट से शटर दबा दिया। यह सोच कर मैं खुशी से उछल पड़ा कि इस प्रकाश में यह फोटो अवश्य ठीक आया होगा, और हुआ भी यही— 'गाम्भीर्य की मूर्ति' कुछ ऐसा ही शीर्षक हो सकता है इस फोटो का।

अगले दिन कौशाम्बी यात्रा का कार्यक्रम था। कौशाम्बी में एक बार फिर मुझे महाश्वेता का फोटो लेने का अवसर प्राप्त हुआ। इस यात्रा में बस के धचकों ने शरीर की एक-एक कल हिला डाली, साथ ही महाश्वेता के कहकहे मन की गहराइयों में गूँजते चले गये।

साहित्यकार संसद के अधिवेशन से कुछ ही दिनों बाद दिल्ली में संस्कृति संगम का अधिवेशन हुआ तो किले में महादेवी के दर्शन हुए। वह भी अचानक। रात के गहरे अँधियारे में बिजली का प्रकाश पर्याप्त न होने पर भी मैंने सड़क पर तीन स्त्रियों को आते देखा। मैं आ रहा था और वे किले के बाहर की ओर जाने के लिए मेरे पास से गुज़र गईं। पीछे से अचानक महादेवी की आवाज़ कान में पड़ी। मैं लपक कर मुड़ा। क्षमा याचना की। मैंने कहा—"मैं देख ही नहीं पाया था।" "अब आप क्यों देखने लगे ?" महादेवी कह रही थीं, "इलाहाबाद से लौट कर पत्र तक न लिखा कि दिल्ली पहुँच गये।"

मैं कहना चाहता था कि सचमुच मुझसे बड़ी भूल हुई। साथ ही में यह भी कहना चाहता था,'ओ महाश्वेता क्या मैं पूछ सकता हूँ कि यही प्रश्न क्या किसी यथार्थवादी कविता का विषय नहीं बन सकता ?'

मैं उन्हें कार तक छोड़ने गया। पता चला कि वे उसी रात इलाहाबाद के लिए गाड़ी पकड़ने जा रही हैं। सच कहता हूँ लालकिले के अँधियारे में महाश्वेता का व्यक्तित्व लालकिले की दीवारों से भी ऊँचा प्रतीत हुआ। साथ की दोनों स्त्रियाँ तो उनके व्यक्तित्व से इतनी प्रभावित थीं कि उनके वास्तविक क़द से कुछ कुछ कम दिखाई देने लगे।

महादेवी के व्यक्तित्व में जहाँ इस वस्तु का आभास होता है कि इस स्त्री ने अपने को छोटा मान कर ऊँचा उठने के लिए निरन्तर प्रयत्न किया है, वहाँ उनकी सचाई और ईमानदारी का रंग सदैव अपनी सात्विकता को स्थिर रखता है।

महादेवी के व्यक्तित्व की छाप उनके समकालीन साहित्यकारों ने मुक्त कंठ से स्वीकार की है। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने एक बार साहित्यकार

संसद में 'दिनकर' जी का अभिनन्दन करने के लिए आयोजित एक सभा में भाषण देते हुए ठीक ही कहा था—"मेरी प्रयाग-यात्रा केवल संगम स्नान से पूरी नहीं होती, उसको सर्वथा सार्थक बनाने के लिए मुझे सरस्वती (महादेवी) के दर्शनों के लिए प्रयाग महिला-विद्यापीठ जाना पड़ता है। संगम में कुछ फूल-अक्षत भी चढ़ाना पड़ता है, पर सरस्वती के मन्दिर में कुछ प्रसाद मिलता है। संसद हिन्दी के लिए उन्हीं का प्रसाद है।"

हिन्दी के युग प्रवर्तक कवि निराला ने एक स्थल पर महादेवी के व्यक्तित्व पर अर्घ्य चढ़ाते हुए लिखा है—

"हिन्दी के विशाल मन्दिर की वीणा-पाणी,
स्फूर्ति चेतना रचना की प्रतिमा कल्याणी।"

इसमें कोई सन्देह नहीं कि महादेवी ने अपनी कविता में जिस व्यक्तिगत साधना की बात उठाई है उसका महत्त्व अस्वीकार नहीं किया जा सकता। जब वे कहती हैं:—

"दीप मेरे जल अकम्पित, घुल अकम्पित।
पथ न भूले एक पग भी
पर न खोए लघु विहग भी
स्निग्ध लौ की तूलिका से आँक सब की छाँह उज्ज्वल।"

तो हम उनके शब्दों में एक ऐसे व्यक्ति की साधना देख सकते हैं जिस में जन-कल्याण की अटूट भावना भरी हुई है। जन-कल्याण की इसी अटूट भावना से प्रेरित होकर महादेवी ने इलाहाबाद में 'साहित्यकार संसद' की स्थापना करने के लिए अनथक परिश्रम किया। गंगा के किनारे सुन्दर वातावरण में संसद के लिए स्थान चुना और संसद के भवन का निर्माण कराया।

महाश्वेता महादेवी की कविता एक ओर रखिए, उनकी तूलिका द्वारा अंकित चित्र दूसरी ओर रखिए, संस्मरण और रेखाचित्र एक ओर रखिए—और साहित्यकार संसद के लिए उनकी साधना को अलग से देखिए। यह कहना कठिन है कि इनमें से किसी भी वस्तु को दूसरी वस्तुओं से अलग हटाया जा सकता है, क्योंकि वे सभी एक दूसरे की पूरक हैं। सर्वत्र एक ही व्यक्तित्व की छाप नज़र आती है—वह व्यक्तित्व जिसे दीपक की तरह जलते रहने की चाह है, जिसे अँधियारे में प्रकाश की रेखाओं द्वारा एक नूतन चित्र अंकित करने की चाह है।

अभी-अभी एक मित्र ने बात सुनाई कि महादेवी की एक विशेषता

यह भी है कि वे अपने यहाँ दर्पण नहीं रखतीं। मालूम नहीं यह बात कहाँ तक ठीक है। महादेवी मिलेंगी तो अब वे शायद इस बारे में पूछने का साहस कर सकें। ऐसी प्रत्येक बात जो किसी व्यक्ति के चरित्र में ही नहीं, उसके दृष्टिकोण में भी कोई नूतन रंग भर सकती है, मेरे लिए विशेष रूप से अध्ययन का विषय रही है। महादेवी का व्यक्तित्व बहुमुखी है—उनकी महाश्वेता प्रतिभा के समान ही बहुमुखी।

श्रीमती महादेवी वर्मा : एक रेखा-चित्र

शिवचन्द्र नागर

['महादेवी जी की पलकों की ओट में करुणा के अनंत आँसू हैं और उनके अधरों की ओट में संसार को देने के लिए हँसी का अक्षय भण्डार। इन आँसुओं को उनके काव्य में अभिव्यक्ति मिली है और इस हँसी को उनके जीवन में।

महादेवी जी में दम्भ जैसी कोई वस्तु नहीं, पर एक कलाकार का सा स्वाभिमान है।

जो कोई भी अपनी समस्या लेकर इनके पास पहुँचा है, उसकी सहायता के लिए ये सदैव तैयार रही हैं। इनके यहाँ से दीनता कभी भी निराश नहीं लौटी।

महादेवी जी की क्रियाशीलता और सृजनात्मकता केवल काव्य और चित्रों तक ही सीमित नहीं। वे जहाँ एक ओर कल्पना के पंखों से काव्य के स्वप्निल नभ में विचरण करने वाली कवयित्री हैं, वहाँ दूसरी ओर इस धरा की पीड़ा को अपने अन्तर में समेटती हुई, अपनी सहानुभूति पूर्ण भावना से उनके आँसू पोंछती हुई, दोनों हाथों से दान देती हुई दानेश्वरी, वरदायिनी महादेवी भी हैं।']

जब हम किसी भी कलाकार की कोई कृति पढ़ते हैं या देखते हैं तो उसमें हम उसके आंतरिक व्यक्तित्व की छाया पाते हैं। यदि उस कलाकार को हमने नहीं देखा तो उसी छाया के बल पर हमारी कल्पना उस कलाकार की मूर्ति खड़ी करने लगती है। लगभग पाँच वर्ष हुए, मैंने महादेवी जी की 'यामा' पढ़ी थी। मैं उसे कितना समझा और कितना नहीं, यह तो मुझे याद नहीं, पर हाँ, पढ़कर मुझे ऐसा अवश्य लगा था कि इस कवयित्री के

प्राण करुणा से सिक्त हैं और अंतर-पीड़ा से ओत-प्रोत। इसी के बल पर मैं कल्पना करने लगा कि वह कैसी होंगी ?

मेरी कल्पना के क्षितिज पर आँसुओं से डबडबाए दो नेत्र आ खड़े हुए और उन्हींके साथ मैंने एक गंभीर मुद्रा वाली महिला का चित्र अपनी कल्पना में बना लिया। अब मैं जब कभी 'यामा' के पन्ने पलटता, या संध्या समय 'सांध्य-गीत' के गीत गुनगुनाता तो मेरी किशोर-कल्पना में वही मूत्ति विचरण किया करती।

महादेवी जी के प्रथम दर्शन

पर सत्य कल्पना से बिल्कुल भिन्न होता है। ऐसा ही यहाँ भी हुआ। जब मैं महादेवी जी से सबसे पहली बार इनके निवास स्थान—१, एलगिन रोड—पर मिला तो देखा कि खादी के श्वेत वस्त्रों में एक महिला ड्राइंग रूम के नीले पर्दों के बीच से आ कर सोफे पर बैठ गई थी, जिसके अधरों से हास फूटा पड़ रहा था, और जिसके नेत्रों से छलकी पड़ रही थी प्रतिभा की सुधा-धारा। आँखें अधिक काली नहीं थीं और न अधिक बड़ी हीं, पर फिर भी उनमें से नकलती हुई सात्विकता की किरणें सामने वाले के मन में एक आदर-भावना जाग्रत करती थी। इस महिला का रंग गेहुँआ था और उसमें मिला हुआ हलका पीलापन उनकी अस्वस्थता का परिचय दे रहा था (उन-दिनों वे अस्वस्थ थीं)। चेहरा गोल और हँसमुख था। हम उन्हें शारीरिक दृष्टि से सुन्दर नहीं कह सकते पर फिर भी उनके मुख पर आंतरिक सौंदर्य की आभा विराज रही थी। उनके बाल गहरे काले थे और ध्यानपूर्वक देखने पर ऐसा लगता था जैसे हाथ से ही उनका विभाजन कर ऊपर को कर लिया गया हो। खादी के श्वेत परिधान में, तिरंगे उपधानों के सहारे बैठी हुई वह ऐसी लग रही थीं जैसे कोई संसार से विरक्त तपस्विनी साधिका बैठी हो। वह महिला थी श्रीमती महादेवी वर्मा।

उस दिन उनसे केवल दस-पन्द्रह मिनट बातचीत हुई। इसके उपरांत जब मैं घर लौटा तो मुझे ऐसा लगा जैसे उन्होंने मेरा अंतर अपनी हँसी से भर दिया हो और मेरा मस्तिष्क अपनी बातचीत से। उस दिन जितनी देर मैं वहाँ बैठा रहा और बातचीत हुई, उन सब को यदि किसी विज्ञान यंत्र द्वारा वातावरण में से पकड़ लिया जाय और फिर उसका विश्लेषण किया जाय तो विश्लेषक को पता लगेगा कि उसमें आधी हँसी थी और आधी बातचीत। कोई भी व्यक्ति उनसे मिलने जाय और वह कितना ही उदास क्यों न हो, वह अधरों पर मुस्कान लिये लौटेगा, ऐसा मेरा विश्वास है, अपने यहाँ आए हुए

अतिथियों के लिये उनके पास हँसी का अक्षय भंडार है। पर जिस कवयित्री का काव्य वेदना और करुणा से भीगा हुआ हैं उसके पास इतनी हँसी कहाँ से आयी। यह प्रश्न अनेकों के मन में उठा होगा और भविष्य में उठेगा भी, पर सत्य दोनों ही बातें हैं। और सत्य के अपने-अपने अध्ययन को लोगों ने भिन्न भिन्न प्रकार से व्यक्त किया है।

उनकी अनोखी हँसी

कुछ लोगों का कहना है कि यह हँसी उनके अंतर की हँसी नहीं, यह तो अपने अंतर की पीड़ा को संसार के व्यक्तियों से छिपाने के लिये केवल एक कृत्रिम आवरण मात्र है; पर यदि यह हँसी उनके अन्तर की हँसी न होती तो उसमें अस्वभाविकता आ जाती और ऐसी हँसी से सामने वाले का मन ऊब जाना अधिक संभव था। पर मैंने एक नहीं अनेकों बार देखा है, उनकी हँसी में न तो अस्वाभाविकता है और न ऐसी कोई बात कि सामने वाले का मन ऊब जाय। बल्कि उनकी हँसी तो बातचीत को और भी सरस और सुन्दर बना देनी वाली है।

किसी ने कहीं महादेवी जी की हँसी के विषय में कहा है कि इनकी हँसी निरर्थक है। सच बात तो यह है कि महादेवी जी का निरर्थक तो कुछ भी नहीं और फिर हँसी तो बहुत बड़ी चीज़ है। उनकी हँसी बातचीत के साथ साथ चलती हैं, कहीं वह बातचीत के आशय से संबंधित भूमिका बनाती है, और कहीं पिछली बातचीत को बल देने के लिये आती है और कहीं विषय के अनुसार बातचीत के साथ साथ चलती है। उनकी हँसी कभी भी बातचीत की धारा से दूर नहीं जा पड़ती इसलिये वह निरर्थक नहीं, बल्कि बातचीत को अधिक प्रभावशाली बना देने वाली है।

अब तीसरी बात यह है कि उनकी हँसी कहीं ऐसी तो नहीं जैसे किसी ज्वालामुखी पर छिटकी हुई चाँदनी? पर मैंने तो उन्हें जितनी बार देखा है, शांत ही पाया है। महादेवी जी एक तो क्रोध करती ही नहीं और विवशतावश जब कभी करती भी हैं तो उनके मुख की रेखाएँ वक्र नहीं हो पातीं, फिर यह तो निश्चित् ही है कि उनके अन्तर में ज्वालामुखी जैसी कोई चीज़ नहीं। एक बार उन्होंने कहा भी था कि—"मेरे अन्तर में कोई ऐसी खरोंच नहीं जो संसार के किसी व्यक्ति से मिली हो।"

श्वेत वस्त्रों से सुसज्जित महादेवी जी जब ज़मीन में फर्श पर पलथी मार कर बैठ जाती हैं तो ऐसी ही लगती हैं जैसे शांत और गम्भीर हिमालय की उच्चतम हिमाच्छादित श्रेणी का ऊपरी भाग काटकर किसी ने पृथ्वी पर ला

कर रख दिया हो। वास्तव में उनकी हँसी ऐसी ही है जैसे उसमें से फूटकर बहती हुई श्वेत पुष्पों की पावन मंदाकिनी।

उनके अधरों से फूटता हुआ अविरल मुक्त हास उस तरह है जैसे किसी शांत भूधर के अंचल में कोई दूध से श्वेत पारदर्शी जल का निर्झर फूट रहा हो और उसको धरा की रज मलिन न कर पायी हो। कोई भी व्यक्ति उनसे मिलने जाय तो यदि उसे और कुछ भी (फल, मिष्ठान्न, चाय इत्यादि) न मिले तो वह इस निर्झर में स्नान करने के सुख से वंचित न रह पाएगा, ऐसा मेरा विश्वास है।

एक बार डा० रमेशचन्द्र वर्मा मेरे साथ महादेवी जी से मिलने गए। लौटती बार रास्ते में वे अपने आप ही कहने लगे कि—"स्त्रियों का मुक्तहास मुझे अच्छा नहीं लगता, पर ऐसी वात्सल्यमयी हँसी मुझे जीवनमें कभी नहीं मिली।" सचमुच महादेवी जी की हसी निर्मल, निश्छल और अकृत्रिम है फिर चाहे वह अंतर से फूटी हो या अधरों से।

बातचीत एक कला

बातचीत भी एक कला है, और पश्चिम में इस कला का जितना महत्त्व समझा जाता है उतना अभी पूर्व में नहीं। यही कारण है कि हमारे यहाँ इस कला में बहुत ही कम व्यक्ति दक्ष होते हैं। फिर भी अपने छोटे से जीवन में जितने सुन्दर बातचीत करने वाले स्त्री-पुरुष के संपर्क में मैं आया हूँ, उनमें यह गुण महादेवी जी को सबसे अधिक मिला है। आप उनसे किसी विषय पर कहीं से बातचीत कीजिए, आपको निराश न होना पड़ेगा। मैंने कभी कभी उनसे तीन तीन घंटें तक बातचीत की है, पर मुझे यह पता नहीं रहा कि बातचीत में कितना समय बीत गया। सबसे बड़ा गुण उनमें यह है कि वे सहज भाव से ही थोड़ी देर में सामने वाले व्यक्ति की चेतना और बुद्धि के स्तर को ताड़ लेती हैं और फिर उसी स्तर पर उतर कर बातचीत करती हैं। यही कारण है कि सामने वाले को ऐसा लगता है कि मानों उनसे कभी का पुराना परिचय है।

वे अपने पांडित्य को किसी पर थोपती नहीं; और न अपने व्यक्तित्व को उस के चारों ओर छा देने का ही प्रयत्न करती हैं। चाहे सामने वाला व्यक्ति पास के किसी गाँव का निरक्षर ग्रामीण हो और या कोई कहीं का महापंडित, उससे बातचीत करने में न तो वे घबराती ही हैं और न उसको घबरा डालने का ही प्रयत्न करती हैं।

वे सामने वाले से उसकी भाषा में बातचीत करना चाहती हैं न कि अपनी

भाषा में, यही कारण है कि इनको रसूलाबाद (जहाँ साहित्यकार संसद-भवन है) के सभी ग्रामीण तथा घाट के सभी मल्लाह जानते हैं। चाहे वे इनके महादेवी नाम से परिचित न हों, पर आप रसूलाबाद जाकर घाट पर किसी मल्लाह से पूछ लीजिए कि—"गुरु जी कहाँ रहती हैं?" तो वह तुरन्त आपको साहित्यकार-संसद भवन के (इनके निवास स्थान) पर पहुँचा देगा।

इन ग्रामीणों की कहानी वे सहानुभूति तथा मन से सुनती हैं, इसलिए उनमें उन्होंने एक ऐसा व्यक्ति पा लिया है, जिसके पास वे कभी भी विश्वास के साथ अपनी सुख-दुःख की धरोहर रख सकते हैं। सचमुच महादेवी जी का मन इतना बड़ा है कि उसमें संसार भर का दुःख समा सकता है और संसार के लिये इनके पास इतनी हँसी है कि ये संसार के समस्त दुःख का अपनी हँसी से विनिमय कर सकती हैं।

हाँ, मैं उनकी बातचीत की बात कर रहा था। जब वह विद्वानों से बात करती हैं तो बिना रुके हुए धाराप्रवाह इतना सुन्दर बोलती हैं कि यदि उसे ज्यों का त्यों लेखनी-बद्ध कर लिया जाय तो वह साहित्य की एक सुन्दर पुस्तक बन सकती है। यह तो रही उनकी बातचीत में व्यवस्था और भाव-गांभीर्य की बात। पर दूसरी विशेषता यह है कि आप उनसे जितनी बार भी बात करेंगे आपको भावों को और विचारों को नवीनता ही मिलेगी। नित्य-नवीनता इनकी बातचीत का प्राण है।

बातचीत करने वाले के पास यदि बातचीत करने के लिये कुछ भी न हो तो ये उसे बातचीत का सूत्र पकड़ा देती हैं और इस प्रकार उसे इस विचार-चक्र से मुक्ति मिल जाती है कि मैं क्या बात करूँ क्या न करूँ।

मैंने महादेवी जी को कभी पढ़ाते हुए नहीं देखा, पर इनके बातचीत के आधार पर मैं यह कह सकता हूँ कि महादेवी जी एक सफल अध्यापिका होंगी। बातचीत करना इनका स्वभाव है और यही कारण है कि अपनी बातचीत में ही ये काव्य और कला के गहन से गहन तत्वों को सहज भाव से सरल से सरल भाषा में समझा देती हैं। अपनी बात को समझाने के लिये इनके पास कभी भी सुन्दर उदाहरणों तथा अनुकूल परिभाषाओं की कमी नहीं रहती।

इनकी बातचीत बड़ी प्रभावशाली होती है। बातचीत करने पर ऐसा लगता है कि सभी विषयों पर महादेवी जी के विचार बहुत सुलझे हुए हैं। इतने सुन्दर बातचीत करने वाले मैंने बहुत कम व्यक्ति देखे हैं।

किसी भी व्यक्ति के संपर्क में आप आइए, उसके व्यक्तित्व की महानता

अथवा लघुता का परिचय इसी से मिलता है कि जितना आप उसके निकट आते-जाते हैं आपके स्नेह, प्रेम, आदर या श्रद्धा की भावना बढ़ती जा रही है अथवा घटती जा रही है। महादेवी जी के संपर्क में आप आइए, आपके मन में आदर या श्रद्धा की भावना तो उनका पहला परिचय ही भर देगा, पर जैसे जैसे आपका संपर्क बढ़ता जायगा, वैसे वैसे उस भावना की उत्तरोत्तर वृद्धि उनके महान् व्यक्तित्व का परिचायक है।

मैं ऐसे एक दो व्यक्तियों को जानता हूँ जो इनके पक्के विरोधी थे। पर जब वे एक बार इनसे मिल लिए और बातचीत करने पर इनके ड्राइंगरूम से बाहर निकले तो मैंने उनको इनकी मुक्त-कण्ठ से प्रशंसा करते पाया। आगन्तुक के साथ इनका इतना सुन्दर व्यवहार होता है।

यह संभव है कि किसी व्यक्ति को इनके यहाँ से बार बार लौटना पड़ा हो और इनके दर्शन न हो पाये हों, पर इनसे भेंट हो जाने पर कदाचित् ही कोई ऐसा व्यक्ति हो जो इनके यहाँ से मन भारी लिए लौटा है और यदि इन्हें पता लग जाये कि यह आदमी पहले चार-पाँच बार बिना मिले हुए लौट गया है तो एक ही वाक्य में ये उसके मन का जमा हुआ धुआँ भी धो डालती हैं।

कलात्मक बैठक

आप उनके ड्राइंगरूम में एक बार जाइये, पैर रखते ही आपका मन कह उठेगा कि यह किसी कलाकार का कमरा है। कमरे में रक्खे हुए चित्र मूर्तियाँ और फूलों की व्यवस्था देखकर आप इनकी सुन्दर कलात्मक रुचि का अनुमान लगा सकते हैं। चित्रकार होने के नाते उनका रंगों का ज्ञान बड़ा ही विशद है। वे ठीक से जानती हैं कि किस रंग के साथ कौन सा रंग अच्छा लगेगा और इस प्रकार उनके कमरे की व्यवस्था बहुत ही सुन्दर है।

वहाँ लगे हुए चित्र, वहाँ रखी हुई मूर्तियां सजीव सी लगती हैं और वहाँ का सब कुछ ऐसा लगता है जैसे महादेवी जी की विचार-धारा समझने के लिए वह एक विशद पृष्ठ-भूमि हो। महात्मा बुद्ध, ईसामसीह, महात्मा गाँधी और विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर कदाचित् इनके आदर्श पुरुष हैं और सरस्वती तथा श्रीकृष्ण इनके उपास्य देवता हैं। इन्हीं को मूर्तियाँ वहाँ विराजती हैं। उनके ड्राइंगरूम में से यदि सोफे और कुर्सियाँ निकाल दी जायें तो वह एक सुन्दर कला-मंदिर लगने लगे। वहाँ सदैव ही ऋषियों के आश्रम की-सी शान्ति विराजती रहती है।

महादेवी जी के सौंदर्य ज्ञान की दूसरी अभिव्यक्ति आपको उनकी संस्था

'साहित्यकार-संसद' जाने पर मिलेगी। वहाँ की फूलों की क्यारियाँ, उनका क्रम, और उनकी किस्में देखने पर आप कह उठेंगे कि किसी कुशल माली के हाथ का काम है, पर आप निश्चित् समझिये कि वह कुशल माली महादेवी जी के अतिरिक्त और कोई नहीं।

मुझे तो ऐसा लगता है कि कदाचित् ही कोई ऐसा फूल अथवा कोई ऐसी चिड़िया हो जिसका नाम महादेवी जी न जानती हों। बहुत से अँगरेजी फूलों के उन्होंने अपनी हिन्दुस्तानी नाम रख लिए हैं। वैसे तो इन्हें सभी फूल अच्छे लगते हैं पर कदाचित् रजनीगंधा तथा हारसिंगार इन्हें विशेष प्रिय हैं। एक बार मैंने एक खाली पंक्ति की ओर इंगित करते हुए कहा कि—"इसमें गुलाब लगवा दीजिएगा।" वे बोलीं—"गुलाब को देखकर मुझे अधिक प्रसन्नता नहीं होती, क्योंकि यह फूल विदेश का है।"

विशाल परिवार

महादेवी जी ने गार्हस्थ्य स्वीकार नहीं किया और न अपने को उन्होंने किसी सीमित परिवार की परिधि में ही बाँधा, पर इसका अर्थ यह नहीं होता कि उनका परिवार है ही नहीं। उनका परिवार बड़ा ही विशाल है और उसकी परिधि में सभी जातियों तथा सभी उम्र के स्त्री-पुरुष ही नहीं आते बल्कि फूल, वृक्ष और चिड़ियाँ भी आती हैं। इनकी सहानुभूति विश्वव्यापी हो गई है। वह एक पेड़ को एक स्थान से उखाड़कर दूसरे स्थान पर इसलिए नहीं लगातीं कि वह सूख न जाये। वे एक फूल को इसलिए नहीं तोड़तीं कि वह मुरझा न जाये। वे किसी भी जीव की मृत्यु, चाहे वह कितना ही छोटा क्यों न हो, अपनी आँखों से देखना नहीं चाहतीं। मुझे याद है एक बार जब मेरे एक साथी महोदय ने एक कालीन पर चढ़े आते हुए चींटे को अँगुली से दूर फेंक दिया तो ये उसके मर जाने के डर से घबरा उठीं और दूसरी बार जब एक बार उनकी बिल्ली सुनयना ने इनकी आँखों के सामने एक जानवर की हत्या कर डाली तो इनकी आँखों में आँसू झलक आये और कहने लगीं कि—"अब इस बिल्ली को अपने यहाँ नहीं रक्खूँगी।" तब से पता नहीं सुनयना कहाँ चली गई, मैंने उसे नहीं देखा।

विश्व के किसी कोने से किसी की भी पीड़ा की कहानी सुनकर इनका मन उसकी पीड़ा में डूब जाता है। अपने द्वारा यह किसी को पीड़ा पहुँचाना भी नहीं चाहतीं, इसीलिए वह कभी भी आदमी से खींची जाने वाली रिक्शा में नहीं बैठतीं।

उनके विशाल परिवार में सभी जातियों के बहुत से छोटे छोटे बच्चे भी

हैं और अपने मुंडन, कर्णछेदन तथा यज्ञोपवीत के अवसर पर ये महादेवी जी के खिलौनों तथा मिठाइयों से वंचित नहीं रह पाते।

महादेवी जी से मिलने आने वालों को संख्या बहुत अधिक है, कोई इन्हें 'जीजी' कहता है, किसी की ये 'दीदी' हैं और किसी की 'बा' (मां) पर सबसे अधिक व्यक्ति इनको 'गुरुजी' कहनेवाले हैं। इनसे मिलने आने वालों में विद्यार्थी तथा विद्यार्थिनियों की संख्या सबसे अधिक है। दूसरे नम्बर पर साहित्यिक तथा पत्रों के सम्पादक आते हैं तथा तीसरे नम्बर पर इधर-उधर के व्यक्ति।

महादेवी जी में दम्भ जैसी कोई वस्तु नहीं, पर एक कलाकार का-सा स्वाभिमान है।

अधिकतर कवियों से आप उनकी कविता का अर्थ पूछने जाइये तो कह देंगे—"हमें याद नहीं हमने किस मूड में लिखी थी।" पर महादेवी जी में यह बात नहीं। मुझे याद है, एक बार एक विद्यार्थी घबराया हुआ अपनी पुस्तक लिए इनके कमरे में आया। इन्होंने पूछा—"क्यों?"

"महादेवी जी यहीं रहती हैं?" उसने पूछा।

"हाँ, भाई मैं ही हूँ, क्या काम है?" महादेवी जी ने कहा।

"जी, आपकी एक कविता 'टूट गया यह दर्पण निर्मम' हमारी किताब में है। हमारे पंडित जी से भी इसका अर्थ नहीं आया और परसों को मेरा इम्तिहान है।"

इस पर मुझे तो हँसी आ गई, पर महादेवी जी बोलीं—

"अच्छा तो भाई, सुबह को आना, बता देंगे।"

यह तो एक विद्यार्थी की बात है। पर जो कोई भी अपनी समस्या लेकर इनके पास पहुँचा है उसकी सहायता के लिये ये सदैव तैयार रही हैं। इनके यहाँ से दीनता कभी भी निराश नहीं लौटी।

बाल्यावस्था से ही महादेवी जी की स्मृति बड़ी ही तीव्र रही है। यही कारण है कि अपने अध्ययन-काल में भी सदैव उनका नाम दर्जे की तेज़ विद्यार्थिनियों में रहा है। अब भी, रुपये पैसे की ओर से उदासीन रहने के कारण, अपनी ताली-कुञ्जी तथा बटुआ तो चाहे भूल जायें, पर और कुछ नहीं भूलतीं।

महादेवी जी सीना-पिरोना, कातना-बुनना, काढ़ना, भोजन और मिठाई बनाना इत्यादि सभी घरेलू कलाओं में सिद्धहस्त हैं और ललित कलाओं में काव्य, संगीत और चित्रकला तीनों का वरदान इन्हें मिला है।

भाषाओं में इन्हें हिन्दी, उर्दू, संस्कृत, पाली, प्राकृत, बँगला, गुजराती और अँगरेजी का अच्छा ज्ञान है।

वेद, उपनिषद और बौद्ध-साहित्य में उनकी विशेष रुचि है, और इन्हीं तीनों का प्रभाव इनके जीवन तथा काव्य में परिलक्षित होता है।

मुझे उनके काव्य अथवा साहित्य के विषय में यहाँ कुछ नहीं कहना, पर इसमें सन्देह नहीं वह हमारे भारतवर्ष के महान् कलाकारों में से एक हैं। उनके काव्य पर हिन्दी साहित्य को गर्व है और उनके चित्रों की निकोलिस रोरिक जैसे विश्व-विख्यात कलाकार ने मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है।

महादेवी जी की क्रियाशीलता और सृजनात्मकता केवल काव्य और चित्रों तक ही सीमित नहीं। वह जहाँ एक ओर कल्पना के पंखों से काव्य के स्वप्निल नभ में विचरण करने वाली कवयित्री हैं, वहाँ दूसरी ओर इस धरा की पीड़ा को अपने अन्तर में समेटती हुई, अपनी सहानुभूतिपूर्ण भावना से उनके आँसू पोंछती हुई दोनों हाथों से दान देती हुई दानेश्वरी, वरदायिनी, महादेवी भी हैं।

राष्ट्र-सेविका

जब कभी देश में कोई देश-व्यापी आंदोलन छिड़ा है अथवा देशवासियों पोंर कहीं कोई विपत्ति आ पड़ी है, तो महादेवी जी ने केवल पत्र-पत्रिकाश्र में कविताएँ और लेख देकर अपनी शाब्दिक सहानुभूति प्रकट नहीं की। बल्कि सदैव अपना सक्रिय सहयोग दिया है।

इनके ड्राइङ्गरूम को देखकर कौन अनुमान लगा सकता है कि इस महिला ने जेठ-असाढ़ की जलती हुई दोपहरी में पैदल उन गाँवों की धूल छानी होगी, जिन्हें ब्रिटिश साम्राज्यशाही के गोलियों ने १९४२ का आंदोलन कुचलने के लिए बरबाद कर दिया था, जिनके आदमी गिरफ्तार कर लिए गये थे और जिनकी स्त्रियों तथा बच्चों को रोटी कपड़े का भी ठिकाना न था। ऐसी अवस्था में कहीं से भी जुटाकर उन्होंने इन स्त्री-बच्चों को निरन्तर भोजन की सामग्री और कपड़ा पहुँचाया है और जलती हुई दोपहरी में गाँव की गरम-गरम धूल छानी है।

ये नगर में अधिकतर रही हैं और अब भी रहती हैं, पर गाँवों तथा गाँव वालों के विषय में बहुत कुछ जानती हैं। नागरिकों की अपेक्षा ग्रामीणों से इनका अधिक परिचय है। अपना अध्ययन छोड़ने के उपरान्त इन्होंने अपने जीवन के बहुत से रविवार ग्रामीणों के बीच में बिताये हैं।

महादेवी जी चाहे कुछ भी सहन करलें पर उनसे दूसरे का दुःख नहीं

देखा जाता। वह अपने को सदैव 'नीर भरी बदली' सा चाहती हैं जिसके यहाँ से पीड़ा-जनित दीनता की तृषा कभी निराश न लौटे। एक बार मैंने कहा कि—"प्रत्येक व्यक्ति पर तो दया नहीं की जाती। पात्र, अपात्र भी तो देखना पड़ता है।" तो बड़े ही सहज भाव से कहने लगीं कि—"जब बदली बरसती है तो स्थान नहीं देखती।"

भारतवर्ष में होने वाली ऋतुओं में महादेवी जी को बरसात अत्यधिक प्रिय है, कदाचित् महादेवी जी ने बरसात में अपने जीवन को निकटता, साम्य और अपनापन पाकर उसमें अपने मन की सखी-भावना स्थापित कर ली है।

सन् १६४२ की ही बात नहीं, जब बंगाल में भयंकर अकाल पड़ा था तो उन्होंने अकाल पीड़ितों के लिए कपड़े, भोजन और दवाइयाँ इकट्ठी कीं। 'बंग-दर्शन' नामक पुस्तक का सम्पादन किया, जिसका पूरा रुपया अकाल पीड़ितों के सहायता-कोष में गया था।

अब भी नोआखाली पीड़ितों के लिये इन्होंने हिन्दी के लेखकों से रुपया इकट्ठा किया और लेखक-निधि के नाम से हिन्दी लेखकों की सहानुभूति के रूप में वहाँ भेजा था। आजकल भी पंजाब शरणार्थी फंड में ये कुछ न कुछ देती ही रहती हैं।

आँसू

महादेवी जी को सभी ने हँसते हुए देखा है, उनके आँसू कदाचित ही किसी ने देखे हों; पर मैं वह सन्ध्या शायद कभी भी न भूल सकूँगा जब एक दिन नौकर ने बहुत से अखबार इनके सामने लाकर डाल दिए थे और पंजाब के हृदय-विदारक हिन्दू-मुस्लिम हत्याकाण्ड के समाचार पढ़कर इनके नेत्र सजल हो आए और उस वातावरण की गंभीर उदासी बढ़ी आती हुई सन्ध्या की उदासी में मिल गई थी।

उनकी पलकों की ओट में करुणा के अनन्त आँसू हैं और उनके अधरों की ओट में संसार को देने के लिए हँसी का अक्षय भंडार। इन आँसुओं को उनके काव्य में अभिव्यक्ति मिली है और इस हँसी को इनके जीवन में।

करुणा में इनका विश्वास है, सहानुभूति इनका धर्म है और दानशीलता उनकी आदत।

इनके पास रुपया कभी भी नहीं जुड़ पाया, पर रुपये की कभी कमी भी नहीं पड़ी। रुपया जोड़ने की इनकी इच्छा भी नहीं। पहले जो रुपया इनको पिता जी से मिला था, वह तो इन्होंने आस-पास के गाँवों में छोटी-छोटी

पाठशालाएँ खोलने में लगा दिया था और अपने अध्ययन-काल में जो रुपया बचा, वह अब 'साहित्यकार-संसद' में लगा दिया। इन्होंने बहुत से बड़े-बड़े कामों को हाथ लगाया है, पर धनाभाव के कारण इनका अभी तक कोई भी काम नहीं रुका।

महिला-विद्यापीठ, जिसकी ये प्रधान अध्यापिका हैं, इनकी आदर्श शिक्षा संस्था है और अपने जीवन का बहुत कुछ समय इन्होंने भारतीय सांस्कृतिक सिद्धान्तों के आधार पर इसका निर्माण करने में लगाया है।

हिन्दी के साहित्यिकों की दशा सुधारने के लिए उन्होंने अन्य साहित्यिकों के साथ मिलकर 'साहित्यकार संसद' नामक संस्था की स्थापना की है। इस संस्था का उद्देश्य साहित्यिकों को संगठित करना तथा असमर्थ साहित्यिकों को ऐसी सुविधाएँ देने अथवा दिलाने का है, जिनमें रहकर वे उत्तम तथा उच्च कोटि के साहित्य का सृजन कर सकें।

महिला विद्यापीठ, और 'साहित्यकार संसद' दोनों पर ही इनका माँ जैसा स्नेह है।

राजनीतिज्ञों की तरह कलाकारों के स्मारक तथा कीर्ति-स्तम्भ खड़े नहीं किए जाते, पर महादेवी जी ने साहित्य और समाज के क्षेत्र में सब कुछ इतना किया है कि उनमें उनकी स्मृति तथा कीर्ति अमरता की मुद्रा से मुद्रित होकर अमिट अक्षरों में अङ्कित हो गई है।

महादेवी जी को दस साल होगए, कहीं भी कवि-सम्मेलनों में कविता सुनाने तथा सभा-सोसाइटियों में बोलने नहीं जातीं। यही कारण है कि जहाँ रेडियो पर हम दूसरे प्रतिष्ठित व्यक्तियों की कविताएँ सुन लेते हैं वहाँ महादेवी जी की कविताएँ उनके मुख से सुनने को नहीं मिलतीं। इसका अर्थ आप यह न लगायें कि महादेवी जी को गर्व अथवा दर्प है, पर उनकी ऐसी धारणा है कि—"भीड़ में व्यक्ति को समझा नहीं जाता।" सभाओं की ओर से सम्मान-पत्र तथा फूल मालाएँ महादेवी जी को अच्छी नहीं लगतीं।

महादेवी जी के सम्बन्ध में एक दो बातें ऐसी हैं कि जिन्हें जानकर प्रत्येक साधारण व्यक्ति को आश्चर्य होगा।

महादेवी जी अपने विषय में कुछ नहीं पढ़तीं, लगभग सभी पत्र-पत्रिकाओं में इन पर आये दिन अनेकों लेख, आलोचनायें और कवितायें निकलती रहती हैं, और उनके सम्पादक अथवा लेखक उनकी प्रतियाँ भी इनके पास भेज देते हैं। पर ये उन्हें कभी भी नहीं पढ़तीं, और तो सब कुछ पढ़ती हैं,

पर अपने विषय में कुछ नहीं। आप कहेंगे कि कौन ऐसा व्यक्ति होगा, जो अपने विषय में दूसरों की धारणा नहीं जानना चाहता, पर महादेवी जी ऐसी ही हैं।

दर्पण-विमुखता

दूसरी बात तो और भी विस्मित करने वाली है—महात्मा गाँधी की तरह महादेवी जी कभी शीशा नहीं देखतीं। एक बार इनका एक चित्र एक साप्ताहिक में छपा था, मैंने कहा—"आपका एक चित्र अमुक साप्ताहिक में निकला है, पर वह आपसे बिल्कुल नहीं मिलता।"

मेरी बात पर ध्यान भी न देती हुई वे बोलीं—"मुझे तो पता नहीं, मिलता है या नहीं।"

मेरे पास वह साप्ताहिक था। मैंने उसका वह चित्रवाला पृष्ठ उनके सामने खोलते हुए कहा—"आप चाहे शीशे में मिलाकर देख लीजियेगा।"

बड़े ही सहज भाव से व्यंगपूर्ण हँसी हँसकर बोलीं—"तो भाई, अब इसके लिए एक शीशा भी रखना होगा।"

अपने बालों में कंघे का प्रयोग भी ये कदाचित ही करती हों, पर शीशा तो इनके यहाँ निश्चित रूप से नहीं, हाँ—कोई छोटा-मोटा अतिथियों के लिए रख छोड़ा हो तो मैं नहीं कह सकता।

महादेवी जी काठ के एक कठोर तख्ते पर सोती हैं और बहुत कम सोती हैं। इनके अधिकांश साहित्य का सृजन भी रजनी के दूसरे याम में ही हुआ है। सभी तरह से ये साहित्य-साधिका यथार्थ में तपस्विनी हैं।

संसार के व्यक्तियों को देने के लिये आदर, स्नेह और वात्सल्य के अतिरिक्त इनके पास और कुछ नहीं; सभी के साथ इनका व्यवहार स्नेह-सिक्त, कोमल और सुन्दर होता है, पर संसार में रहती हुई भी ये संसार से विरक्त सी ही हैं। सांसारिक सम्बन्धों के प्रति इनका मन ऐसे ही है जैसे बालू-कणों के लिये कमल-दल।

'हिमवत'

गत होलिकोत्सव के दिन जब महादेवी जी अपने जीवन के चालीस वर्ष पार कर इकतालीसवें वर्ष में प्रवेश कर रही थीं, तो इनके जन्म-दिवस पर मेरे एक श्रद्धास्पद मित्र ने अपनी 'बहिन महादेवी को' निकोलिस रोरिक की एक पुस्तक भेजी थी, उसका नाम था 'हिमवत'। तब मुझे ऐसा लगा था कि भेजने वाले ने शब्दों में अपने मन की बात न कह कर पुस्तक के नाम में अपनी भावना व्यक्त कर दी है। सचमुच महादेवी जी सभी तरह महान्

हैं—हिमालय सी महान्-हिमवत्···।

मैं जब कभी भी इस सात्विक, सौम्य और हँसमुख महिला से बातचीत कर अथवा दर्शन कर लौटा हूँ, तब प्रत्येक बार मुझे ऐसा लगा है कि मेरे मन और प्राणों ने आध्यात्मिक स्नान कर लिया है, आपको भी ऐसा लगेगा या नहीं कौन जाने ?

महादेवी जी से एक भेंट

भानुकुमार जैन

['महादेवी जी पारंगत हैं, व्यवहार कुशल हैं । उनमें लोक-संग्राहक शक्ति है । उनमें दिव्यता की झलक है । उनमें नारी की चहुँमुखी प्रतिभा निहित है । पर छायावादी अभिव्यक्ति से ऊपर उठकर, व्यष्टि की समस्याओं को सामाजिक परिणति देकर जिस दिन महादेवी जी लोक संघर्ष के लिए उद्यत होंगी, उसी दिन उनकी सार्थकता है । अहं का विलय ही मनुष्य को इस जीवन में सच्चा मोक्ष दिला सकता है ।']

जवानी के प्रथम क्षणों में भावुकता का अंकुर जब फूटा था, मैंने महादेवीजी का अध्ययन पुस्तकों के ज़रिये किया था ।

अपने इस सूनेपन की मैं हूँ रानी मतवाली ।
प्राणों का दीप जलाकर करती रहती दीवाली ।

उपर्युक्त और अनेक पंक्तियाँ मुझे अब तक याद हैं । 'नीहार', 'रश्मि' और 'यामा' की भूमिकाओं की भावनाएँ मेरे स्मृति-पटल पर अंकित हैं । महादेवी जी द्वारा 'चाँद' के सम्पादन-काल में दी गई अभिव्यक्तियों का भी, जो 'श्रृङ्खला की कड़ियाँ' नामक पुस्तक में आबद्ध हैं, खयाल रह गया है । महादेवी जी के गद्य 'स्मृति की रेखाएँ' मन को भा गए थे । महादेवी जी 'स्मृति की रेखाएँ' में और पद्य की अपेक्षा उनके लिखे गद्य में मुझे ज्यादा पसन्द आईं । वे गद्य में अन्तर्मुखी-मात्र न रहकर परोन्मुखी भी होगई हैं । उनका संवेदन 'स्व' से 'अपर' हो गया है । महादेवी जी के चित्र, जो 'दीप-शिखा' में अङ्कित हैं, मेरे सम्मोहन का कारण नहीं हैं । मैं ऐसा तो नहीं मानता कि कला को मैं पहचानता नहीं, कला का अङ्कन-चित्रण भर मैं नहीं

कर सकता। रंगों के टेकनीक का विश्लेषण भी मैं नहीं कर सकूँगा; पर सफल कला की अभिव्यक्ति उसकी रेखाओं और रंगों से मुझे स्पष्ट मालूम हो जाती है—वह किसी की भी क्यों न हो और किसी भी स्कूल की क्यों न हो।

महादेवी जी को बम्बई-हिन्दी-विद्यापीठ में दीक्षान्त-भाषण देने के लिए मैंने कई बार आमन्त्रण दिए। खास व्यक्तियों से भी कहलवाया, पर उत्तर नदारद। एक बार उन्हीं के स्कूल के तरीके से लिखने की सूझी। मैंने लिखा—'तुम्हें माँ कहूँ या बहन कहूँ?' इस पर तुरन्त उत्तर गया। महादेवी जी के बारे में सुन रखा था कि वे खूब हँसोड़ हैं, निस्संकोच हैं।

१९४७ में मैं व्यवसाय के दौरे के सिलसिले में इलाहाबाद पहुँचा। व्यक्तित्व के आकर्षण के नाम पर जिनसे मैं कुछ अपनापन रखता आया हूँ, इलाहाबाद में सिर्फ दो ही व्यक्ति मेरे ध्यान में थे—एक डा० बेनीप्रसाद, जो अब इस लोक में नहीं हैं, और दूसरी श्री महादेवी जी। महादेवी जी को विद्यापीठ में दीक्षान्त-भाषण देने के लिए राज़ी करना था। इसलिए मैं प्रयाग-महिला-विद्यापीठ की बग़लवाली कोठी में उनसे मिला। जब मैं पहुँचा, तो दरवाजे पर एक रिक्शा खड़ा था और अन्दर एक सज्जन बैठे महादेवी जी से बातें कर रहे थे। बंगले की रखवाली पर एक अत्यन्त बूढ़ी अम्मां दिखलाई पड़ीं, जिनका स्केच महादेवी जी ने 'स्मृति की रेखाएँ' में दे रखा है। उन्हीं को मैंने अपने नाम का पुर्जा दिया। आध घण्टा बगीची में चहलक़दमी की। स्थापत्य की कुछ मूर्त्तियाँ रखी थीं। एक और विद्यार्थी भी महादेवी जी के दर्शन के लिए किसी अन्य नगर से आया था।

जब आगन्तुक चले गए, तो मैं और वह विद्यार्थी अन्दर गए। उसने महादेवी जी की वन्दना की और मैंने नमस्कार किया। मेरे सामने उसने बातें नहीं की थीं; पर मेरा भाँपना सही निकला कि वह आफ़त का मारा महादेवी जी के यहाँ आश्रय लेने आया था। महादेवी जी प्रणतपाल हैं, भावुक मन की प्रश्रयशीला हैं।

मेरी कल्पना के अनुरूप एकमात्र नारी महादेवी जी ही मेरे देखने में आईं। उनमें कमी मात्र साहस, निश्चय और दृष्टिकोण की है। महादेवी जी अत्यन्त भावुक, गद्‌गद्, उत्फुल्ल और प्रफुल्ल हैं; पर अन्तर-मन से दुखी हैं। उन्होंने निज का संसार 'स्व' से 'पर-अपर' तो किया; लेकिन समाज नहीं बनाया, जन की ओर वे उत्कीर्ण नहीं हुईं।

कमरे में 'दीपशिखा' के अङ्कित चित्र भित्ति पर टँगे थे। शान्त-रस

की, दिव्य झलक की एक मूर्त्ति एक काँच की अलमारी में स्थापित थी। महादेवी जी की मनोभूमि का प्रखर चित्र उस सुसज्जित कमरे में शोभायमान था। महादेवी जी ने भावनामय स्वागत किया। जब वे बोलती हैं, तो उनकी वाचा की गति नहीं रुकती। श्रोता को मन्त्रमुग्ध की भाँति चुप रह जाना पड़ता है। वे इतनी प्रभावक हो उठती हैं कि उन्हें सुनते रहने को ही जी चाहता है। साहित्यकार-संसद, निराला जी, पन्त जी, लोकायन और अन्य विषयों पर मैंने उनके वचन सुने। निराला जी के लिए तो वे अत्यन्त दुःखी थीं। वे चाहती हैं कि निराला जी की ज़िम्मेदारी तमाम हिन्दी-जगत्—तमाम भारत—ले ले।

महादेवी जी ने मुझे निराला जी के दर्शन कराए। तीसरे दिन 'साहित्यकार-संसद' जाने का तय हुआ। दुर्भाग्य से बाढ़ आई हुई थी। मेरे बाल-बच्चे भी साथ थे। उन्होंने तीन ताँगे किये। हम लोग संसद गए। पास के गाँव से नाव में बैठकर संसद के प्रांगण में हमें उतरना पड़ा। संसद का बगीचा, बिजली के तार आदि सब कुछ जलमग्न था। नौकर को पहले ही सूचना दे दी गई थी। निराला जी मकान के अन्दर थे। अँधियारे में उन्हें ढूँढ़ना पड़ा। महादेवी जी ने मुझे उनके पास ले जाकर मेरा परिचय कराया। मैंने नमस्कार किया। वे 'स्वगत मूड' में थे। कुछ देर बाद हम लोग कमरे से बाहर आकर दालान में बैठे। निराला जी भी बाहर आ गए। वे स्वगत में कभी हिन्दी में, कभी अंग्रेजी में, कभी संस्कृत में और कभी बँगला में कुछ कह जाते थे। मैं करीब घंटे-भर तक उनकी इस प्रक्रिया को देखता रहा। लोगों ने न जाने उन्हें क्या समझ रखा है। मेरा विश्वास दूसरों के अनुभव से अलग है। निराला जी सदैव होश में हैं। मात्र वे खोये हुए हैं। मेरा मतलब है, उनकी उद्विग्नता गहरी है। हम में से कई कभी-कभी किसी गहरी दुश्चिन्ता या उद्विग्नता में इस तरह बैठे रहते हैं कि पास से गुज़रने वाली बारात के बैण्ड बाजे भी कान पर असर नहीं करते। निराला जी ने कभी कोई अनुचित व्यवहार नहीं किया, जिससे किसी की आत्मा को कष्ट हुआ हो या जिससे किसी का कुछ बिगड़ा हो। फिर उनके मन की स्थिति, जिसे लोग कुछ और कह बैठते हैं, उस रूप में सत्य कैसे मानी जा सकती है?

निराला जी ने मेरे सामने महादेवी जी से कहा—'देवी जी, आप चिन्ता न कीजिएगा। बिड़ला के बैंक में मेरा रुपया जमा है। मुझे वहाँ जाना-भर है। हिसाब कर चुकता ले आना है। और हमने सत्तर किताबें जो

लिखी हैं, उनकी रायल्टी भी तो है।' फिर स्वगत अंग्रेजी और संस्कृत के संवाद वे बोल गए, जैसे आशुकवि पद्य-नाटक की रचना कर रहे हों। इधर-उधर घूम-फिर कर मेरी ओर मुख़ातिब होकर पूछ बैठे—'कहिए, कब आए आप? देवी जी, इन सबका स्वागत हो।' महादेवी जी ने घर पर नमकीन और मिठाई से स्वागत किया था और यहाँ भी पहले से इन्तज़ाम करवा दिया था। उनका खुद का स्वभाव और निराला जी की प्रकृत आकांक्षा—जिसका पूर्व भान महादेवी जी को था ही और उनकी हर इच्छा की पूर्ति करना उनका श्रेय—दोनों ही बातें मिल गईं। 'सब तैयार हैं'—उनके कहते ही भृत्य ने तश्तरियाँ सामने लाकर रख दीं। 'निराला-दर्शन, साहित्य और साहित्यकार-दर्शन, कवि और कवि की आत्मा के दर्शन, सजीव साहित्य और जीवन-साहित्य-दर्शन' उस दिन मैंने पाया।

निराला जी फिर घूमने लगे। एक लुङ्गी-मात्र पहने थे। विराट डील-डौल और गहरी तेज आँखें, जैसे साक्षात् शिवशंकर बम-भोले! वे फिर बौखलाए—'बिजली कम्पनी ने लाइट अब तक मरम्मत नहीं की?' बाढ़-पीड़ित ग्रामीणों के दु:ख के लिए उनके उद्गार निकले। वे आर्त्त थे, उनके घोंसलों के लिए बेहद चिन्तित। फिर सहसा उन्हें अपने किसी मित्र की (यह मित्र शायद कोई ताँगे वाला था) याद हो आई। वह मर गया था। उसकी बुढ़िया माँ की असहाय व्यवस्था पर उन्हें तरस आ गया। उसके प्रति सहानुभूति जतलाना और उसकी मदद करना उनके लिए परमावश्यक था। कह उठे—'देवी जी, रुपया हमारे पास है नहीं और लखनऊ जाना जरूरी है। आप इन्तजाम कर देंगी न?' निराला जी के प्रश्न पर उन्होंने स्वीकृति-सूचक गर्दन हिला दी।

महादेवी जी को प्रत्यक्ष देखने पर मेरे लिए वे अधिक स्पृहणीय हो गई हैं। निराला जी के प्रसंग में महादेवी जी ने युक्तप्रान्त के एक प्रकाशक की दुर्गत बतलाई। निराला जी उससे अपनी रायल्टी चाहते थे। वह मूजी कब देने वाला था? निराला जी को क्रोध चढ़ा, तो महादेवी जी को प्रकाशक ने तार दिया। तब उसने राहत पाई। महादेवी जी ने बतलाया कि किस प्रकार निराला जी ने एक दिन अपनी नई बनी रजाई एक वृद्धा भिखारिन को ठिठुरते देखकर दे दी। पूछने पर उत्तर में उन्होंने कहा—'यह मेरी धोती जो है, खोलकर आधी ओढ़ लूँगा।'

एक बार तीन या चार सौ रुपये लेकर निराला जी ने २५)-२५) रु०

के कई मनीआर्डर भेजे। ये मनीआर्डर किसी अनाथ को, किसी विधवा को, किसी मोची को और कुछ ऐसे व्यक्तियों को भेजे गये, जो दीन-हीन हैं और जिनका समाज में कोई स्थान नहीं है। निराला जी के पास शेष कुछ भी नहीं रहा। जिन्हें ये मनीआर्डर भेजे गये थे, वे इस महादानी के मित्र थे, किसी रक्षाबन्धन के दिन निराला जी ने महादेवी जी से कहा—'देवी जी, हमारी कोई बहन नहीं है, कौन हमें रक्षा बाँधेगा?' महादेवी जी ने कहा—'मैं बाँध दूँगी।' महादेवी जी ने बताया कि उस दिन निराला जी शहर में नारियल ढूँढ़ते रहे। कहने लगे—'आज से मैं अभिषिक्त भाई हूँ।' निराला जी के सम्बन्ध में अनेक किंवदन्तियाँ हैं। उस समय तक संसद में रहते उन्हें छै मास बीत चुके थे। महादेवी जी ने बतलाया कि निराला जी ने कभी कोई ऐसी-वैसी चीज़ खाने-पीने की उनसे नहीं माँगी। निराला जी की उदारता का ताज़ा उदाहरण पाठकों को मालूम ही होगा कि युक्त-प्रान्तीय सरकार से २५००) मिलने पर उन्होंने तुरन्त ही अपने स्वर्गीय मित्र मुंशी नवजादिकलाल की पत्नी को भेज दिए। अशेष दान का ऐसा शुभ्र-शालीन उदाहरण किस भारतीय साहित्यिक ने प्रदर्शित किया है? महादेवी जी जब-जब भी निराला जी की चर्चा करतीं, आर्द्र हो जातीं। हृदय बोझिल, अन्तरात्मा दर्दीली, गंगा-जमुनी आँखों से आँसुओं की लड़ी और उत्फुल्ल हँसी—यही महादेवी जी का संक्षिप्त परिचय है।

तीसरे दिन फिर महादेवी जी से मिलने का वादा था, पर चूक गया। पाँचवें दिन ताँगे पर मुझे जाते देखकर वे बोलीं—'मैं तो समझ रही थी, दुष्ट बिना मिले ही चला गया।' मैंने दूसरे दिन आने का वादा किया। दूसरे दिन जब मैं वहाँ पहुँचा, तो वहाँ मुझे एक युवक मिला। उससे परिचय कराते हुए महादेवी जी बोलीं—'यह मेरा एक छोटा भाई है, कुछ काम नहीं करता।' और मेरा परिचय उनसे कराते हुए बोलीं—'यह मेरा छोटा भाई है, बम्बई में रहता है, बहुत काम करता है।' फिर निराला जी सम्बन्धी बात छिड़ने पर मैंने उस दिन महादेवी जी से कहा कि निरालाजी को उन्माद नहीं है। वे शत-प्रतिशत भावुक, अत्यन्त प्रामाणिक, आदर्शवादी और शोषण देखकर खिन्न हो उठे व्यक्ति हैं। व्यक्ति-व्यक्ति के कष्ट और उत्पीड़न से उनकी कोमल, पर दृढ़ आत्मा इतनी बे-काबू होगई है कि उनको मुक्ति कैसे मिले, यह वे सोच ही नहीं पाते। आज के समाज-जीवन की विशृङ्खल व्यवस्था से उनका हृदय चार-चार हो गया है। आदर्शवादी के

नाम पर वे अन्यथा नहीं सोच पाते, यही अच्छाई है, और इसलिए व्यक्तिगत सहनशीलता में वे वज्रपौरुष हैं। काश, महाभिनिष्क्रमण का प्रगतिशील दृष्टिकोण समय से पूर्व उनके ध्यान में आ जाता।

निराला जी को अच्छा करने का एकमात्र इलाज है—उन्हें ऐसी जगह में रखना, जहाँ शोषण और कष्ट न हों। पृथ्वी में एक ही स्थान है मास्को। थोड़े ही दिनों में निराला जी वहाँ चंगे हो जायँगे। बिड़ला के बैंक से रुपया निकालने की बात, ७० पुस्तकों की रायल्टी वसूल लेने की बात और अपाहिजों, कष्ट-पीड़ितों तथा उपेक्षितों को रुपया भेजने की घटनाएँ यह सिद्ध करती हैं कि निराला जी का कष्ट पूँजीबाद से व्याप्त कष्ट है। उनके हृदय को अपार, अवर्णनीय, असहनीय कष्ट है। उनकी चाह है कि उनके मित्र की असहाय बुढ़िया माँ तथा बच्चों की परवरिश हो सके। वे भरी जवानी में छैला बने ताँगेवाले को मरता न देख सकें।

वे मुंशी नवजादिकलाल की पत्नी को विधवा बनते न देख सकें। इसके बाद मैंने कहा—'उग्र' से सब डरते हैं। भ्रष्ट साहित्यिकों में उन्हें गिनाने का ठेका कई ले बैठे हैं। पर उन जैसे ईमानदार और आत्म-स्वीकृति वाले साहित्यिक हिन्दीवालों में नगण्य हैं। आत्म-संशोधन के लिए 'उग्र' सदैव तत्पर रहते हैं, यह मेरा अनुभव है। 'उग्र' और 'निराला' दोनों को कुटुम्ब के अभाव ने और भी उच्छृङ्खल बना दिया है। सिर्फ पौरुष भर रह गया है। प्रकृति की ऊष्मा उन्हें नहीं मिली। अति सख्त प्रकृत न बनने के लिए पौरुष को प्रकृति की आवश्यकता है, ऐसी कुछ श्रेष्ठियों की मान्यता है।

मीरा के बाद भारतीय साहित्य में महादेवी जी का स्थान माना जाता है। भक्ति-काल में मीरा प्रकट हुई थीं। जमाने को देखते हुए मीरा पहली विद्रोहिणी भारतीय नारी थीं। राजनीतिक विरोध की तुलना में सामाजिक विरोध अधिक कठिन कार्य है। उस युग में मीरा अत्यन्त साहसी और कृतनिश्चय नारी हुई हैं; लेकिन दृष्टिकोण के अभाव में वे पत्थर पर ही सिर पटक कर रह गईं। महादेवी जी की भी त्रुटि यही है। इस सड़ाँद भरी समाज-व्यवस्था में अनेक चित्र-विचित्र, अवास्तविक धाराएँ आदर्श और नैतिक मानी जाती हैं। जीवन के स्वाभाविक कार्यक्रम को समाज विरोधी करार दिया जाता है। इन्हीं मान्यताओं की एक शिकार महादेवी जी भी हैं। मैं ज़िम्मेदारी के साथ यह कह सकता हूँ कि मीरा के अधूरे समर्पण को महादेवी जी पूर्णता दे सकतीं, तो···! फिर भी इतना आवश्यक था कि जब तक शोषणहीन समाज-व्यवस्था न हो, तब तक निराला जी जैसे मस्तिष्क

का ठिकाने पर रहना कठिन कार्य है।

मेरा सुझाव है कि महादेवी जी उग्र जी को साहित्यकार-संसद में सृजन के लिए स्थान दें। उनका सम्पर्क उग्र जी के लिए उल्लास और विवेक में परिणत होगा। महादेवी जी सब समझती हैं। 'विवेक' ज्ञान की परिभाषा है, जिसमें सूक्ष्म का समावेश है। महादेवी जी का विवेक पूर्ण जाग्रत हो, यही मेरी कामना है।

हमारी महादेवी बहिन जी

सावित्री देवी वर्मा

['महादेवी जी को एकांत आरम्भ से ही पसंद था। कदाचित् इससे उन्हें साधना में सुविधा मिलती थी। पेड़ों के नीचे, झाड़ियों के पीछे, बगीचे के किसी कोने में, किसी मुड़ी हुई डाल पर बैठ कर, तने का ठेका लगाकर, वे घण्टों गुज़ार देती थीं। जहाँ चार बच्चे मिलकर खेलते, या झगड़ते होते, वे दूर से खड़ी होकर उनकी बातचीत और भवभंगी का अध्ययन सा करने के लिए रुक जाती थीं। कहीं गिलहरी को कुतरते देख लिया, अथवा चिड़िया अपने बच्चे चोगा देते दिखाई पड़ी कि उनके लिए एक तमाशा खड़ा होगया।

उनकी चमकती हुई आँखें और खिलखिला कर हँसना मनुष्य को बरबस अपनी ओर खींच लेता था, किन्तु उनकी हँसी भी उनके अंतस्तल में छिपी उदासी को छिपाने में असफल रहती थी। मुँह पर मुस्कराहट हमेशा खेलती रहती, परन्तु आँखों में से एक उदासीनता झाँका करती थी।']

'अरे क्या हुआ, रो क्यों रही हो ?' क्रास्टवेट स्कूल के छात्रावास में एक सोलह वर्षीया किशोरी ने एक छोटी बालिका को पुकारते हुये पूछा। बालिका दुलार पाकर, सिसकियां भर-भर के रोने लगी।

'अच्छा यहाँ आओ, क्या बात है, अरे तुम्हारी जलेबियाँ किसने बिखेर दीं ?' किशोरी ने फिर पूछा।

'चील झपट्टा मारकर गिरा गई—' सिसकियाँ भरते हुए बालिका ने उत्तर दिया।

रोने का कारण जानकर उनके मुँह पर मुस्कराहट आ गई, बोलीं—'अच्छा आओ हमारे कमरे में, हम तुम्हें और मिठाई देंगे।'

उपरोक्त घटना को लगभग तीस वर्ष हुये, मैं उसी साल क्रास्टवेट स्कूल में दाखिल हुई थी। उन दिनों महादेवी बहिन जी उसी स्कूल में आठवीं या नवमी कक्षा में पढ़ रही थीं। बोर्डिंग हाउस में यह नियम था कि प्रातःकाल छः बजे सबको प्रार्थना में उपस्थित होना पड़ता था। जग्गू हलवाई एक बड़े टोकरे में जलेबी या दाल-सेव दोनों में सजा कर प्रतीक्षा में बैठा रहता था। प्रार्थना के बाद जिज्जा (छात्रावास की सुपरिन्टेण्डेन्ट) प्रत्येक कन्या को एक दोना मिठाई देती थीं। मेरा जलेबी का दोना उस दिन चील झपट्टा मार कर गिरा गई, और मैं शान्तिलता की बेल की ओट में खड़ी होकर रोने लगी। न जाने कितनी देर तक इसी प्रकार रोती रहती यदि महादेवी बहिन जी मुझे बहलाने न आतीं। वे मुझे अपने कमरे में ले गईं, पुचकार कर उन्होंने मुझे अपने दोने में से चार जलेबी खाने को दीं। मैं तो जलेबी खाने में लगी थी और वे मेरी मोटी चोटी से खेल रही थीं। उन्होंने मेरी चोटी को दबाते हुए पूछा, तुम इतने लम्बे बाल कैसे सँभालती हो, कौन तुम्हारी चोटी गूँथता है? मैंने कहा, हम दोनों बहिन एक दूसरे की चोटी गूँथ देती हैं।

'क्या तुम्हारी कोई बड़ी बहिन भी है?' उन्होंने पूछा।

जलेबी कुतरते हुये मैंने उत्तर दिया, 'नहीं छोटी बहिन है।'

कुछ याद सा करती हुई बोलीं, ओ! वो ही न! गोल मुँह की गोरी सी लड़की, क्या नाम है शकुन्तला! मैंने सिर हिला दिया, जलेबी का रस मेरे फ्राक पर गिर गया था, उन्होंने गीले तौलिये से मेरा मुँह और फ्राक साफ करके, मुस्करा कर कहा, अच्छा, आया करो कभी-कभी मेरे कमरे में, अकेले खड़े होकर रोया नहीं करते। मैं शरमा कर भाग गई।

उस दिन से महादेवी बहिन जी के प्रति मेरे दिल में एक लगाव सा पैदा होगया। वे मुझसे आयु और कक्षा में बड़ी थीं। अतएव अधिक परिचय बढ़ाने का साहस तो मैं नहीं कर सकी, परन्तु जब भी प्रार्थना-भवन या रसोई अथवा ग्राउंड में वे मुझे मिलतीं, तो देखकर, जरा गर्दन टेढ़ी करके मुस्करा देतीं। उनका व्यक्तित्व ऐसा प्रभावशाली था कि सादगी में भी, आकर्षक प्रतीत होता था। उनकी चमकती हुई आँखें और खिलखिला कर हँसना, मनुष्य को बरबस अपनी ओर खींच लेता था। बच्चों के प्रति उनकी दिलचस्पी, गरीबों पर दया तथा प्रत्येक काम को अनूठे ढंग से करने की आदत का, मुझे उन चार सालों में जो उनके साथ बोर्डिङ्ग हाउस में व्यतीत किये, भली प्रकार पता लग गया था। जहाँ चार बच्चे मिलकर खेलते, या

झगड़ते होते, वे दूर से खड़ी होकर उनकी बातचीत और भाव-भङ्गी का अध्ययन-सा करने के लिये, रुक जाती थीं। उनकी साथ की सहेलियाँ झुँझलाकर बोलतीं, 'अब आगे चलती भी हो कि यहीं रम गईं, बस तुम्हें साथ में लेकर कहीं समय पर पहुँचना कठिन है, कहीं गिलहरी को कुतरते देख लिया या चिड़िया अपने बच्चे को चोगा देते दिखाई पड़ी कि तुम्हारे लिये तो एक तमाशा खड़ा हो गया। महादेवी कहतीं, भाई जरा देखो न इन्हें, ये बच्चे भी खूब हैं, इनकी आँखें कैसी चमकती हैं, अभी रो रहे हैं, अभी हँस देंगे, उधर लड़े और इधर फिर हेल-मेल हो गया। कितना प्राकृतिक है इनका व्यवहार। मन में मैल नहीं। जैसे-जैसे मनुष्य बड़ा होता है, उसके दिल में मैल जमता जाता है। सहेलियाँ हँसकर पूछतीं, अब तुम चलोगी कि कविता तरंग में गोता लगाओगी।

महादेवी जी को एकान्त तो आरम्भ से ही पसन्द था। कदाचित् इससे उन्हें साधना में सुविधा मिलती थी। पेड़ों के नीचे, झाड़ियों के पीछे, बगीचे के किसी कोने में, किसी मुड़ी हुई डाल पर बैठकर, तने का ठेका लगाकर, वह घंटों गुजार देती थीं। स्कूल की मैटरन भी उनके मौजी स्वभाव से वाक़िफ हो गई थीं। अगर खाने पर वे नहीं पहुँची, या दोपहर की टिफिन के समय दिखाई न पड़तीं, वे उनका खाना या नाश्ता उठवा कर रख देती थीं।

एक दिन की घटना है कि वे इसी प्रकार कविता तरंग में डूबकर चम्पा के पेड़ के नीचे सो गईं। उनसे कुछ दूरी पर एक धामिन सर्प मेंढकों का नाश्ता कर, कुण्डली मार कर पड़ा था। इतने में चौकीदार भग्गू उधर से निकला। चिड़ियों की चीं-चीं से उसका ध्यान आकृष्ट हुआ। महादेवी बहिन जी से कुछ दूरी पर साँप को देख वह बड़ा पशोपेश में पड़ा कि अगर लाठी की चोट मारता हूँ तो कहीं साँप उलट कर उनकी ओर न भागे और न मारे तो भी बुरा। भग्गू था चतुर। उसने धीरे से ओट में होकर अपने मोटे डंडे से सर्प का फन दबाकर पुकारा—'ए! बिटिया उठो साँप है! साँप! इधर क्रोध से साँप अपनी पूँछ फटकारने लगा। फन तो कुचल ही गया था। महादेवी के उठ जाने पर भग्गू ने लाठी से उसके धड़ के दो टुकड़े कर दिये। महादेवी बहिन जी ने भग्गू को एक रुपया इनाम दिया। उस दिन से जब कभी भी भग्गु साँप मारता कन्याएँ चन्दा करके, एक रुपया जुटातीं, जो कमी रह जाती, महादेवी पूरी कर देती।

उस दिन जिज्जा ने महादेवी बहिन जी को मीठी झिड़की देते हुये

उपरोक्त घटना को लगभग तीस वर्ष हुये, मैं उसी साल क्रास्टवेट स्कूल में दाखिल हुई थी। उन दिनों महादेवी बहिन जी उसी स्कूल में आठवीं या नवमी कक्षा में पढ़ रही थीं। बोर्डिंग हाउस में यह नियम था कि प्रातःकाल छः बजे सबको प्रार्थना में उपस्थित होना पड़ता था। जग्गू हलवाई एक बड़े टोकरे में जलेबी या दाल-सेव दोनों में सजा कर प्रतीक्षा में बैठा रहता था। प्रार्थना के बाद जिज्जा (छात्रावास की सुपरिन्टेण्डेन्ट) प्रत्येक कन्या को एक दोना मिठाई देती थीं। मेरा जलेबी का दोना उस दिन चील झपट्टा मार कर गिरा गई, और मैं शान्तिलता की बेल की ओट में खड़ी होकर रोने लगी। न जाने कितनी देर तक इसी प्रकार रोती रहती यदि महादेवी बहिन जी मुझे बहलाने न आतीं। वे मुझे अपने कमरे में ले गईं, पुचकार कर उन्होंने मुझे अपने दोने में से चार जलेबी खाने को दीं। मैं तो जलेबी खाने में लगी थी और वे मेरी मोटी चोटी से खेल रही थीं। उन्होंने मेरी चोटी को दबाते हुए पूछा, तुम इतने लम्बे बाल कैसे सँभालती हो, कौन तुम्हारी चोटी गूँथता है? मैंने कहा, हम दोनों बहिन एक दूसरे की चोटी गूँथ देती हैं।

'क्या तुम्हारी कोई बड़ी बहिन भी है?' उन्होंने पूछा।

जलेबी कुतरते हुये मैंने उत्तर दिया, 'नहीं छोटी बहिन है।'

कुछ याद सा करती हुई बोलीं, ओ! वो ही न! गोल मुँह की गोरी सी लड़की, क्या नाम है शकुन्तला! मैंने सिर हिला दिया, जलेबी का रस मेरे फ्राक पर गिर गया था, उन्होंने गीले तौलिये से मेरा मुँह और फ्राक साफ करके, मुस्करा कर कहा, अच्छा, आया करो कभी-कभी मेरे कमरे में, अकेले खड़े होकर रोया नहीं करते। मैं शरमा कर भाग गई।

उस दिन से महादेवी बहिन जी के प्रति मेरे दिल में एक लगाव सा पैदा होगया। वे मुझसे आयु और कक्षा में बड़ी थीं। अतएव अधिक परिचय बढ़ाने का साहस तो मैं नहीं कर सकी, परन्तु जब भी प्रार्थना-भवन या रसोई अथवा ग्राउंड में वे मुझे मिलतीं, तो देखकर, जरा गर्दन टेढ़ी करके मुस्करा देतीं। उनका व्यक्तित्व ऐसा प्रभावशाली था कि सादगी में भी, आकर्षक प्रतीत होता था। उनकी चमकती हुई आँखें और खिलखिला कर हँसना, मनुष्य को बरबस अपनी ओर खींच लेता था। बच्चों के प्रति उनकी दिलचस्पी, गरीबों पर दया तथा प्रत्येक काम को अनूठे ढंग से करने की आदत का, मुझे उन चार सालों में जो उनके साथ बोर्डिङ्ग हाउस में व्यतीत किये, भली प्रकार पता लग गया था। जहाँ चार बच्चे मिलकर खेलते, या

झगड़ते होते, वे दूर से खड़ी होकर उनकी बातचीत और भाव-भङ्गी का अध्ययन-सा करने के लिये, रुक जाती थीं। उनकी साथ की सहेलियाँ झुँझलाकर बोलतीं, 'अब आगे चलती भी हो कि यहीं रम गईं', बस तुम्हें साथ में लेकर कहीं समय पर पहुँचना कठिन है, कहीं गिलहरी को कुतरते देख लिया या चिड़िया अपने बच्चे को चोगा देते दिखाई पड़ी कि तुम्हारे लिये तो एक तमाशा खड़ा हो गया। महादेवी कहतीं, भाई जरा देखो न इन्हें, ये बच्चे भी खूब हैं, इनकी आँखें कैसी चमकती हैं, अभी रो रहे हैं, अभी हँस देंगे, उधर लड़े और इधर फिर हेल-मेल हो गया। कितना प्राकृतिक है इनका व्यवहार। मन में मैल नहीं। जैसे-जैसे मनुष्य बड़ा होता है, उसके दिल में मैल जमता जाता है। सहेलियाँ हँसकर पूछतीं, अब तुम चलोगी कि कविता तरंग में गोता लगाओगी।

महादेवी जी को एकान्त तो आरम्भ से ही पसन्द था। कदाचित् इससे उन्हें साधना में सुविधा मिलती थी। पेड़ों के नीचे, झाड़ियों के पीछे, बगीचे के किसी कोने में, किसी मुड़ी हुई डाल पर बैठकर, तने का ठेका लगाकर, वह घंटों गुजार देती थीं। स्कूल की मैटरन भी उनके मौजी स्वभाव से वाक़िफ हो गई थीं। अगर खाने पर वे नहीं पहुँची, या दोपहर की टिफिन के समय दिखाई न पड़तीं, वे उनका खाना या नाश्ता उठवा कर रख देती थीं।

एक दिन को घटना है कि वे इसी प्रकार कविता तरंग में डूबकर चम्पा के पेड़ के नीचे सो गईं। उनसे कुछ दूरी पर एक धामिन सर्प मेंढकों का नाश्ता कर, कुण्डली मार कर पड़ा था। इतने में चौकीदार भग्गू उधर से निकला। चिड़ियों की चीं-चीं से उसका ध्यान आकृष्ट हुआ। महादेवी बहिन जी से कुछ दूरी पर साँप को देख वह बड़ा पशोपेश में पड़ा कि अगर लाठी की चोट मारता हूँ तो कहीं साँप उलट कर उनकी ओर न भागे और न मारे तो भी बुरा। भग्गू था चतुर। उसने धीरे से ओट में होकर अपने मोटे डंडे से सर्प का फन दबाकर पुकारा—'ए! बिटिया उठो साँप है! साँप! इधर क्रोध से साँप अपनी पूँछ फटकारने लगा। फन तो कुचल ही गया था। महादेवी के उठ जाने पर भग्गू ने लाठी से उसके धड़ के दो टुकड़े कर दिये। महादेवी बहिन जी ने भग्गू को एक रुपया इनाम दिया। उस दिन से जब कभी भी भग्गू साँप मारता कन्याएँ चन्दा करके, एक रुपया जुटातीं, जो कमी रह जाती, महादेवी पूरी कर देती।

उस दिन जिज्जा ने महादेवी बहिन जी को मीठी झिड़की देते हुये

कहा, महादेवी तुमने तो परेशान कर दिया, अगर पेड़ के नीचे साँप डस लेता तब ?

'भगवान के घर से अभी बुलौआ आने में देर है, तुम मेरी चिन्ता मत करो।' महादेवी जी ने हँसकर बात उड़ा दी।

ममता से भर कर जिज्जा बोलीं—'भगवान करें तुम युग-युग जिओ। तुम्हारे सिवाय क्रास्टवेट में है कौन जो कवि-सम्मेलन में भाग लेकर स्कूल का नाम ऊँचा करेगा ?'

महादेवी जी कविता तो तेरह-चौदह वर्ष की आयु से ही करने लग गईं थीं, वे समस्यापूर्ति तथा उत्सवों पर स्वरचित कविता पढ़ कर सुनाती थीं। इसके अतिरिक्त हम लोग उन्हें अभिनय के लिये भी कविता रचने के लिए परेशान कर छोड़ते थे। मुझे पहले नहीं मालूम था कि वे कविता भी करती हैं। एक बार गर्ल्स-ग्राउण्ड में हमारे ग्रुप को 'भारत के प्रान्त' अभिनय के लिए भिन्न-भिन्न प्रान्तों का परिचय पद्य में देना था। उस विषय पर महादेवी बहिन जी से कविता तैयार कराने का भार मुझे सौंपा गया।

पहले तो बहिन जी हँसकर टालमटोल करती रहीं। जब मैंने मुँह लटका कर कहा, अच्छा—जैसी आपकी इच्छा, पर लड़कियाँ मुझे ताना अवश्य देंगी कि बड़ी महादेवी जी की दुलारी होने का अभिमान था, इतना भी काम नहीं करवा सकी। यह सुन कर मालूम नहीं उन्हें क्या विचार आया, कलम उठाई और आध घंटे में दस पद रचकर उन्होंने मुझे पकड़ा दिए। सहेलियों में मेरी साख बनी रही। इसके लिए मैं आज तक उनकी कृतज्ञ हूँ।

इसके पश्चात् एक बार उन्होंने बसन्तोत्सव पर भी अभिनय-कविता रच कर दी थी। इस खेल में एक कन्या ऋतुराज बनी थी, दूसरी बनदेवी, तीसरी पवन बनी थी। उसकी वेषभूषा आदि का सुझाव भी महादेवी बहिन जी ने ही दिया था। यह खेल वार्षिक उत्सव पर हुआ था, सबने बहुत पसन्द किया। इसके अतिरिक्त जन्माष्टमी पर झाँकी का शृङ्गार करने में भी महादेवी बहिन जी के सुझाव बहुत सुरुचिपूर्ण होते थे।

एक बार यूनिवर्सिटी में श्रीधर पाठक के सभापतित्व में कवि-सम्मेलन का आयोजन हुआ। क्रास्टवेट कॉलिज के विषय में यह बात प्रसिद्ध थी कि वह यूनिवर्सिटी की प्रत्येक प्रतियोगिता में भाग लेता है। महादेवी जी उन दिनों इंटर में पढ़ती थीं। 'घूँघट के पट खोल' इस पर समस्यापूर्ति करनी थी। कबीर के सदृश रहस्यवादी रचना तो युवकों को करनी पसन्द न थी। महादेवी जी ने भी अपनी रचना में नवोढ़ा नायिका का दृश्य ही चित्रित

किया था। लड़कों ने जब देखा कि क्रास्टवेट से भी कन्याएँ प्रतियोगिता में भाग लेने आई हैं, पहले तो उन्हें बड़ी खुशी हुई, परन्तु बाद में जब उन्होंने देखा कि श्रीधर पाठकजी ने शृङ्गार रस की अधिकता के कारण अधिकांश कवितात्रों को पढ़ी जाने से रोक दिया, तब तो उन्हें बहुत बुरा लगा। सारी सभा में घुसर-फुसर मच गई। धीरे-धीरे लड़के बिदकने लगे, हो-हल्ला मचा दिया। महादेवी जी बार-बार जिज्जा से यही कहें, जिज्जा चलो हम लोग यहाँ से चलें, मेरी कविता कोई दूसरा पढ़ कर सुना देगा। यहाँ अब ठहरना उचित नहीं है। हमारी उपस्थिति के कारण लड़कों में असन्तोष छाया हुआ है।

हार कर जिज्जा ने श्रीधर पाठक जी से निवेदन किया कि महादेवी इतनी भीड़ में कविता न पढ़ सकेंगी। यह है उनकी कविता। आप किसी से पढ़वा लीजियेगा। हमें जाने की आज्ञा दें।

होस्टल वापिस आकर सखी-सहेलियों में उस कवि-सम्मेलन को लेकर एक चर्चा छिड़ी। किसी ने कहा, महादेवी तुम कवि बनने का दावा भला क्या करोगी, लड़कों से डर गई।

दूसरी बोली—कविता शृङ्गार रस की थी तो क्या हुआ! तुमने तो अपनी रचना में शिष्टता को पार नहीं किया था।

तीसरी बोली—और क्या कवि के नाते तो तुम्हें बहुत-कुछ 'दर्द-दिल' बनना पड़ेगा, ऐसा शर्मीला स्वभाव लेकर, तो बस लिख चुकीं कविता!

सखियाँ आलोचना करती जा रही थीं और महादेवी बहिन जी खिल-खिलाकर हँस रही थीं।

ये आरम्भ से ही बड़ी संकोची स्वभाव की थीं। आत्म-प्रशंसा सुन कर तो उनका मुँह लाल हो जाता था। हिन्दी की प्रोफेसर जब इनके लेखों तथा रचनाओं की कक्षा में प्रशंसा करतीं, इनकी सुन्दर लिखाई तथा उपमाओं की दाद देतीं, तो इनका मुँह शर्म से लाल हो जाता।

निबन्ध का घंटा केवल इन्हीं की रचना पढ़ने में बीत जाता, जिस दिन 'पोयट्री' होती बस इन्हीं को अर्थ समझाने को खड़ा किया जाता। उस दिन हिन्दी पीरियड में एक अच्छा खासा कवि-सम्मेलन का मज़ा आ जाता। जब ये यूनिवर्सिटी में एम० ए० की पढ़ाई करने गईं, तब तक तो इन्हें काफ़ी प्रसिद्धि मिल चुकी थी। सुना है, उन दिनों भी प्रोफेसरों और लड़कों की प्रशंसा के कारण कुछ दिन तक तो ये बड़ी परेशान सी रहीं। शनैः शनैः उस वातावरण की ये अभ्यस्त हुईं।

वेष-भूषा तो महादेवी बहिन जी की आरम्भ से ही बहुत सादी रही

है। आरम्भ में मैंने उन्हें कभी-कभी रँगी हुई सूती धोती पहिने देखा भी था। रँगों का मिश्रण कर ये धोती रँगती भी बहुत सुन्दर थीं। कॉलिज में जाने के पश्चात् तो यह बारीक किनारे की सफ़ेद सूती धोती ही पहनती थीं। सीधा लम्बा पल्ला इनकी वेषभूषा की विशेषता थी। श्रृङ्गार के नाम से तो हाथों में दो काँच की चूड़ियाँ या माथे पर बिन्दी भी लगाते इन्हें नहीं देखा। जिज्जा कई बार इन्हें टोकतीं भी, 'ए महादेवी! यह क्या सोंटे से नंगे हाथ लटकाए फिरती हो। सिर में तेल भी तो नहीं डालती। क्या उदास सा चेहरा बनाया हुआ है। पढ़-लिखकर लड़कियों के ढंग ही अजीब हो गए हैं।'

ये मीठी झिड़कियाँ सुनकर महादेवी हँस देतीं। परन्तु उनकी हँसी भी अन्तस्तल में छिपी उदासी को छिपाने में असफल ही रहती थी। संसार के दुःखों को इन्होंने इतनी तीव्रता से अनुभव किया था कि युवावस्था में ही वे एक सन्यासिनी की तरह रहा करती थीं। सखी-सहेलियों के लिए इनका मूड एक पहेली बना हुआ था। जिन बातों, चीज़ों तथा कार्यों से दूसरों का मनोरंजन होता था, वे उनके प्रति उदासीन रहती थीं। मुँह पर मुस्कराहट हमेशा खेलती रहती, परन्तु आँखों में से एक उदासीनता झाँका करती थी।

इनके चेहरे में जो एक विशेषता है, वह यह कि इनके कान कुछ आगे को बढ़े हुए, झाँकते हुए से हैं—मानों वे मानव की करुण-पुकार सुनने के लिए कुछ सतर्क हो खड़े हों।

जिस साल मैंने काशी विश्वविद्यालय से एम० ए० किया वे भी कॉनवोकेशन पर वहाँ पधारी थीं। उन्हें यह जान कर बड़ी प्रसन्नता हुई कि मैंने हिन्दी में एम० ए० किया है। मुझे कुछ लिखते रहने का प्रोत्साहन दिया।

शाम को आर्ट्स कॉलिज में कुछ उत्सव था, मैंने पूछा आप नहीं चल रही हैं? कुछ हँस कर बोलीं, तुम्हारी विद्यालय-नगरी का निर्माण बहुत सुन्दर हुआ है, उत्सव तो बहुत देखे, दिन भर बैठे-बैठे थक गई हूँ, जी करता है घूम आऊँ।

मैं भी साथ हो ली। बोटेनिकल गार्डन में से होते हुए, हम अमरूद की वाटिका में पहुँच गए! खूब पक्के-पक्के अमरूद लगे थे, मालिन को एक रुपया पकड़ाया और उन्होंने पेड़ों पर से अमरूद तोड़-तोड़ कर झोली भरनी शुरू की।

मैंने आश्चर्य से पूछा, बहिन जी ! क्या करियेगा इतने अमरूद ? एक पक्के अमरूद को उचक कर तोड़ते हुए वे बोलीं—अभी बताती हूँ ।

सब अमरूदों को एक टोकरी में भर कर उन्होंने सड़क के पार ईंटों के ढेर के पास खेलते हुए आठ-दस बच्चों को बुलाया । सबको बिठाकर अमरूद उनमें बाँट दिये । एक अमरूद खुद भी पकड़ लिया, एक चुनकर मुझे भी दिया और बस बच्चों से बातचीत करते हुए उन्होंने घंटा गुज़ार दिया । उनके बहिन, भाई, परिवार, गाँव आदि के बारे में पूछती रहीं, फिर आग्रह-पूर्वक बोलीं, देखो तुम पढ़ा करो ।

डूबते हुए सूर्य की किरणें महादेवी जी के मुँह पर पड़ रही थीं । मुझे उनकी कहानी के 'घिस्सू' की गुरु जी की याद हो आई । आज उस रूप में उनके साक्षात् दर्शन हुये ।

लौटते हुए मार्ग में पुराने दिनों की चर्चा छिड़ी । चन्द्रावती त्रिपाठी, चन्द्रावती लखनपाल, ललिता पाठक आदि की चर्चा करती हुई वे बोलीं—'सावित्री ! वैसी सहेलियाँ अब नहीं मिलतीं । छात्रावास में बीते हुए वे दिन कितने सुन्दर और प्यारे थे । अतीत की स्मृतियाँ एक मीठा-मीठा दर्द पैदा कर देती हैं । प्यारा बचपन बीत गया ।

मैंने कहा, भविष्य भी तो सुन्दर और आशाजनक है । सफलता और यश तो आपका स्वागत करने के लिए खड़े हैं ।

हाँ ठीक ही है, कह कर वे कुछ मुस्करा दीं ।

उनकी आँखों में फिर वही परिचित उदासी झाँक उठी थी ।

श्रीमती महादेवी वर्मा : एक मूल्यांकन

लक्ष्मीनारायण 'सुधांशु'

['महादेवी वर्मा ने वेदना को अपने काव्य का मूलद्रव्य रखा है। वेदना दुःखमूलक अवश्य है, किन्तु प्रत्येक स्थिति में वह दुःखजनक नहीं होती। काव्य में जीवन की वही भावना अभिव्यक्त होती है जो कवि को प्रिय रहती है। अप्रियता को काव्य में स्थान नहीं। वेदना भी प्रिय लगने पर ही काव्य का स्वरूप धारण करती है। कवयित्री ने दुःखवाद को अपना काव्य-विषय बना कर सुखवाद से बैर नहीं ठाना, प्रत्युत् सुखवाद का उल्लास प्राप्त करनें के लिए ही उन्होंने वेदना से मैत्री स्थापित की है।']

संसार में कुछ ऐसी वस्तुएँ होती हैं जिन्हें हम बहुत प्यार करते हैं, किन्तु अपने प्यार की प्रतिष्ठा के लिए कोई तर्क नहीं दे सकते। पुष्प का सौन्दर्य हमें रमणीय मालूम पड़ता है, चाँदनी हमें प्रिय मालूम होती है, परन्तु उनकी प्रियता का कोई स्पष्ट कारण नहीं मालूम हुआ रहता है, केवल इतना ही कि उनमें आकर्षण है। शुद्ध सौन्दर्य का तत्त्व कुछ ऐसे ही उपादानों से बना होता है, जो हमारे हृदय को प्रलुब्ध तो बना देता है, पर तर्क को प्रबुद्ध नहीं करता। हृदय के साथ उनका कुछ-न-कुछ सांस्कारिक सम्बन्ध रहता है, जो अज्ञात रूप से अपनी स्थिति को प्रकट करने की चेष्टा करता है। जड़ और चेतन की सृष्टि में इसी कारण वह द्वैध नहीं रखा गया, जो साधारणतः ऐसी स्थिति में रखा जा सकता था। इसी कारण जड़ और चेतन, दोनों, के युगपत् आविर्भाव को ही सृष्टि कहते हैं। वस्तु और भाव, स्थिति तथा प्रक्रिया के भेद को मानते हुए, एक ही हैं। महादेवी वर्मा को वेदना प्रिय है, लेकिन उसकी प्रियता के लिए उनके पास ऐसा कोई कारण

नहीं, जो स्पष्ट हो। व्यक्ति का जीवन ऐसे ही रहस्यमय तत्त्वों से निर्मित होता है जिन्हें हम समूल अभिव्यक्त नहीं कर सकते। महादेवी ने अपनी वेदना की प्रियता के सम्बन्ध में जिन कारणों का उल्लेख किया है, वे पर्याप्त नहीं हैं। उन्हें जीवन में बहुत दुलार, बहुत आदर और बहुत मात्रा में सब कुछ मिलने की प्रतिक्रिया से वेदना प्रिय नहीं मालूम हो सकती। प्रतिक्रिया हृदय की इच्छित वृत्ति नहीं होती और काव्य में स्वाभाविक वृत्तियों के बिना रमणीय अभिव्यक्ति सम्भव नहीं। यदि महादेवी की सारी काव्य-रचनाएँ, जैसा कि उन्होंने लिखा है, अतिशय प्यार, दुलार की प्रतिक्रिया के कारण ही वेदना-बहुल हैं, तो उनका मर्म किसी कवयित्री का मर्म नहीं हो सकता। किन्तु, यह बात नहीं है। महादेवी एक सफल कवयित्री हैं और उनके पास कवि-सुलभ एक संवेदना-पूर्ण हृदय भी है।

जीवन में सुख के उपभोग के समय हृदय स्वार्थी रहता है और दुःख के सहन-काल में प्रायः वह उदार हो जाता है। उदारता कवि-प्रकृति है। अपनी जिन उदात्त वृत्तियों के कारण कवि जनता की सहानुभूति को आकर्षित करता है उनके प्रति उसका ममत्व स्वाभाविक है। जगत् और जीवन की करुणा प्राप्त करने के लिए अपना वैभव भी लुटाना पड़ता है। जिस करुणा-पूर्ण दुःखवाद के ऊपर बौद्ध-दर्शन की प्रतिष्ठा हुई, उसके संकेत यत्र-तत्र महादेवी की रचनाओं में भी मिलते हैं, किन्तु इतना तो स्पष्ट मानना पड़ेगा कि जिस अगाध करुणा तथा निराशा से प्रेरित अनात्मवादी बौद्ध-दर्शन पञ्च-स्कन्ध को ही आत्म-संज्ञक मानने को वाध्य हुआ, वह उनकी रचनाओं में कहीं भी लक्षित नहीं होता। जीवन-विज्ञान का विश्लेषण ही दर्शन-शास्त्र का विषय है, लेकिन विश्लेषण की भिन्नता जीवन की अखण्डता पर कुछ आघात नहीं कर सकती। निर्वाण या मोक्ष जीवन की लौकिक परिधि से मुक्ति है, पर इस परिधि के बाहर जाकर भी जीवन एक दूसरी सीमा में आबद्ध हो जाता है। उस सीमा की परिधि इतनी विशाल तथा विस्तृत है कि मानव-बुद्धि उसे निस्सीम मान लेती है। व्यक्ति-बोध के खण्ड की यही अखण्डता है। यदि अखण्ड तथा अविच्छिन्न जीवन में खण्ड तथा विच्छिन्न जीवन को महत्त्व न दिया जायगा, तो सामान्य मानव-बुद्धि को उसका बोध नहीं हो सकेगा। ज्ञान का क्षेत्र सदा परिमित रहता आया है और ऐसे ही क्षेत्र में भाव भी सञ्चरित हो सकता है। हमारी बुद्धि की सीमा के बाहर भाव अपनी व्यापकता नहीं बढ़ा सकता। जिस क्षेत्र पर एक बार ज्ञान का आधिपत्य हो चुका रहता है, उसी पर भाव को संक्रमण का अवकाश मिलता

है। जिस क्षेत्र पर आधिपत्य करने के लिए ज्ञान को अज्ञान से द्वन्द्व करना पड़ता है, वह अज्ञेय बनकर काव्य-प्रवृत्ति का बाधक हो जाता है।

रहस्यवाद के तथ्य को लेकर काव्य-रचना करनेवाली महादेवी वर्मा एक मुख्य कवयित्री हैं। काव्य के स्वरूप को ग्रहण करते समय रहस्यवाद को अज्ञेय की सीमा से नीचे उतरकर एक स्पष्ट तथा ज्ञात आलम्बन के रूप में उपस्थित होना पड़ेगा। यदि ऐसा न हुआ, तो रहस्यवादी रचनाएँ काव्य के अन्तर्गत न रहकर अज्ञेय दर्शन के अन्तर्गत हो जायँगी। ऐसा देखा जाता है कि रहस्यवादी कवियों ने अपने आलम्बन की एकरूपता का निर्वाह प्रायः नहीं किया है। कभी आलम्बन स्पष्ट है, तो कभी अस्पष्ट। कहीं आलम्बन लौकिक है, तो कहीं लोकोत्तर। आश्रय के सम्बन्ध में भी लिङ्ग का विपर्यय बना रहता है। इस प्रकार की भिन्नता रहस्यवादी कविताओं के मर्म को रसग्राह्य बनने में बाधा देती है। महादेवी वर्मा की रहस्यवादी कविताओं के रहस्य को समझने के लिए यदि उनके कथन को ही लिया जाय, तो उनके 'गीतों ने पराविद्या की अपार्थिवता ली, वेदान्त के अद्वैत की छाया-मात्र ग्रहण की, लौकिक प्रेम से तीव्रता उधार ली और इन सब को कबीर के सांकेतिक दाम्पत्य-भाव-सूत्र में बाँधकर एक निराले स्नेह-सम्बन्ध की सृष्टि कर डाली, जो मनुष्य हृदय को अवलम्ब दे सका, पार्थिव प्रेम से ऊपर उठ सका तथा मस्तिष्क को हृदयमय और हृदय को मस्तिष्कमय बना सका। कवयित्री ने अपनी काव्य-वस्तु के सम्बन्ध में जो कुछ कहा है, वह एक तथ्य के रूप में ग्रहण किया जा सकता है; क्योंकि शायद इसी कारण उनकी रचनाओं में आलम्बन के एकत्व का सम्यक् निर्वाह नहीं हो पाया। निर्गुण ब्रह्म को महत्त्व देकर भी जनता की चित्त-वृत्ति को भक्ति-रस से अनुप्राणित करने के लिए कबीर को सगुण 'राम की बहुरिया' बनना पड़ा। अद्वैत काव्य का विषय नहीं हो सकता। काव्य-स्वरूप के अन्तर्गत आने के लिए अद्वैत को द्वैत के रूप में उपस्थित होना आवश्यक है। यदि द्वैत के रूप में उसका वर्णन न भी किया जाय, तो विशुद्धाद्वैत या शुद्धाद्वैत के बिना उसकी काव्य-परिणति नहीं हो सकती। आश्रय और आलम्बन का, काव्य के उभय पक्ष के लिए, अद्वैतवाद में स्थान नहीं और काव्य-रचना केवल एक के ही उपलक्ष्य पर नहीं हो सकती। अनुभूति तथा कल्पना को अपनी स्थिति-मात्र के लिए भी आश्रय से पृथक् आलम्बन के रूप में किसी वस्तु को ग्रहण करना पड़ेगा। काव्य-जगत में ब्रह्म को भी उसी वस्तु-रूप में उपस्थित होना पड़ेगा, अन्यथा 'अहं ब्रह्मास्मि' के

कारण आश्रय और आलम्बन का एकत्व प्रतिपादित हो जाने पर काव्य-रचना को अपनी प्रतिष्ठा का आधार नहीं मिल सकेगा। तुलसी और सूर के विशिष्टाद्वैत तथा शुद्धाद्वैत को रहस्यवाद में नियोजित करने की सामर्थता प्राप्त नहीं होने पर निर्गुणवाद की सूफी-पद्धति ही रहस्यवाद के अनुकूल पड़ सकी। कबीर के शुद्ध निर्गुणवाद की स्थिति सम्भव नहीं। जहाँ कहीं कबीर ने रहस्यवाद की झाँकी ली है, वहाँ उन्हें निर्गुण को सगुण मान लेना पड़ा है। लौकिक जीवन को लौकिक अर्थभूमि का आधार देने के लिए लौकिक वासनात्मक प्रणयोद्गार का माध्यम आवश्यक है। लोकोत्तर उपलक्ष्य के सहारे जीवन की सारी भावनाएँ व्यक्त नहीं की जा सकतीं। जो विषय केवल बुद्धि-गम्य है, वह सदा भावगम्य नहीं हो सकता। बुद्धिगम्य विषय को भावगम्य बनने में कुछ समय लगता है।

मुख्य आलम्बन को गौण रखकर माध्यम को ही अभिव्यक्त करना रहस्यवादी कविताओं का एक लक्ष्य हो गया है। माध्यम की प्रधानता के कारण ही ऐसी रचनाओं में अन्योक्ति-पद्धति का आश्रय विशेषत: लेना पड़ा है। जीवन की विरह-वेदना, अतृप्ति, निराशा, अवसाद को चित्र भाषा-शैली में बड़ी विलक्षणता तथा विचित्रता के साथ वर्णित किया गया है। रूपक की विभिन्नता के कारण महादेवी वर्मा की रचनाएँ सहज ही दुर्बोध हो गई हैं। उनका प्रेम-व्यापार कहीं तो बिलकुल लौकिक पद्धति पर चला है, और कहीं लोकोत्तर। लौकिक प्रेम की तीव्रता जहाँ ज्यादा उभार मिली है, वहाँ आलम्बन स्पष्ट है और विषय भी रसग्राह्य, किन्तु लोकोत्तर आलम्बन पाठक या श्रोता की भाव-भूमि से इतनी दूर पड़ जाता है कि वहाँ तक कल्पना किसी तरह कभी-कभी पहुँच भी जाती है, हृदय को पहुँचने में बड़ी कठिनता होती है।

मुक्तक गीत में अन्विति-रक्षा के लिए पूर्वापर-सम्बन्ध का निर्वाह लोक-जीवन के अधिक निकट रहनेवाले प्रतीक या भावनोद्गार से हो सकता है। प्रकृति के अनन्त रूप-व्यापार के उपलक्ष्य पर प्रेम की गूढ़ तथा अगूढ़ व्यञ्जना हो सकती है, पर गूढ़ प्रेम-व्यञ्जना को समझने के लिए अपेक्षित मनोरचना प्रायः नहीं होती। धुँधली साम्य-भावना के आधार पर अगूढ़ को गूढ़ बना देने की प्रणाली काव्योपयुक्त नहीं मानी जा सकती। किन्तु इन सब दोषों का भार महादेवी वर्मा के ऊपर ही लादना उनके प्रति अन्याय होगा। उनकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने अपनी भाव-धारा को

एक स्वाभाविक तथा निश्चित क्रम से प्रवाहित होने दिया है, उसमें ज्वार-भाटा के कारण तरङ्गों का आवर्त्तन-प्रत्यावर्त्तन तो होता रहा है, पर प्रवाह को अपनी सीमा में रखनेवाले दोनों तट प्रायः सुरक्षित रहे हैं। कवयित्री के शब्दों में ही "समय के अनुसार रचनाओं में जो परिवर्त्तन आते गए हैं, उनके लिए भी मुझे कभी प्रयत्न नहीं करना पड़ा। याद नहीं आता, जब मैंने किसी विषय-विशेष या वाद-विशेष पर कुछ सोच कर लिखा हो।" उनके इस कथन से चाहे हम पूरे सहमत न भी हों, परन्तु उनकी काव्य-दृष्टि में विषय की एकरूपता का यथासम्भव निर्वाह तथा क्रमिक विकास मानना पड़ेगा। भिन्न-भिन्न समय में प्रत्येक सम्वेदनशील कवि की तरह उनकी अनुभूति, चिन्तन तथा कल्पना के सामञ्जस्य में कुछ व्यतिक्रम रहा है। अपने चारों—'नीहार' 'रश्मि''नीरजा' तथा 'सान्ध्यगीत'—कविता-संग्रहों के रचना-कालकी प्रवृत्तियों के सम्बन्ध में उन्होंने जो कुछ लिखा है, वह उनकी रचना-प्रकृति के साथ मेल रखनेवाला तथ्य है। वे लिखती हैं—"नीहार के रचना-काल में मेरी अनुभूतियों में वैसी ही कुतूहल-मिश्रित वेदना उमड़ आती, जैसी बालक के मन में दूर दिखाई देने वाली अप्राप्य-सुनहली उषा और स्पर्श से दूर सजल मेघ के प्रथम दर्शन से उत्पन्न हो जाती है। 'रश्मि' को उस समय आकार मिला, जब मुझे अनुभूति से अधिक उसका चिन्तन प्रिय था, परन्तु 'नीरजा' और 'सान्ध्यगीत' मेरी उस मानसिक स्थिति को व्यक्त कर सकेंगे, जिसमें अनायास ही मेरा हृदय सुख-दुःख में सामञ्जस्य का अनुभव करने लगा।"

महादेवी वर्मा ने वेदना को अपने काव्य का मूलद्रव्य रखा है। वेदना दुःखमूलक अवश्य है, किन्तु प्रत्येक स्थिति में वह दुःखजनक नहीं होती। काव्य में जीवन की वही भावना अभिव्यक्त होती है, जो कवि को प्रिय रहती है। अप्रियता को काव्य में स्थान नहीं। वेदना भी प्रिय लगने पर ही काव्य का स्वरूप धारण करती है। कवयित्री ने दुःखवाद को अपना काव्य-विषय बनाकर सुखवाद से बैर नहीं ठाना, प्रत्युत सुखवाद का उल्लास प्राप्त करने के लिए ही उन्होंने वेदना से मैत्री स्थापित की है।

यदि वेदना की अभिव्यक्ति में उन्हें उल्लास न मिले, तो उनसे काव्य-रचना भी नहीं हो सकती। काव्य-रचना की मूल-प्रेरणा सुख से ही होती है, पर अपनी रुचि-भिन्नता के कारण उसका विषय चाहे जैसा कुछ हो।

'जन्म ही जिसको हुआ वियोग
तुम्हारा ही तो हूँ उच्छ्वास

चुरा लाया जो विश्व समीर
वही पीड़ा की पहली साँस
छोड़ क्यों देते बारम्बार
मुझे तम से करने अभिसार ।'

जन्म या जीवन ग्रहण को वियोग के नाम से अभिहित करना आध्यात्मिक दृष्टिकोण है। ब्रह्म से जीव की सत्ता जब पृथक् होती है, तब उसकी दशा प्यार-सम्भार से दबी उस लाड़ली कन्या की तरह होती है, जो मातृगृह जाते समय होती है। मातृ या पितृकुल के वियोग में भी पीड़ा का उच्छ्वास होता है। पतिगृह में जीवन की सारी सरसता रहते हुए भी मातृगृह की वियोग-वेदना नष्ट नहीं होती। महादेवी वर्मा ने अपने अद्वैतवादी दृष्टिकोण को भी जीव और ब्रह्म के रूप में उपस्थित किया है। उनके विचार से लौकिक जीवन की दीर्घता से ब्रह्म के वियोग की अवधि बढ़ती ही है; इसलिए वे मृत्यु में ही जीवन का चरम विकास मानती हैं।

'बिखर कर कन कन के लघु प्राण,
गुनगुनाते रहते यह तान
अमरता है जीवन का ह्रास
मृत्यु जीवन का चरम विकास !'

महादेवी वर्मा के जीवन की शुष्कता ने उन्हें लोक-विमुख वैराग्य देकर लोकोत्तर आलम्बन की ओर प्रेरित किया है, जिसके अनुसन्धान में कभी तृप्ति नहीं। वे प्राप्ति और तृप्ति से दूर रहनेवाली कवयित्री हैं, किन्तु अपने सन्धान में प्रयत्न की कोई कमी नहीं रखना चाहतीं। तृप्ति से प्रयत्न पङ्गु हो जाता है। प्राप्ति से विरह मलिन हो जाता है। साधिका कवयित्री की तरह वे अपनी आँखें प्यासी रखना चाहती हैं।

'चिर तृप्ति कामनाओं का
कर जाती निष्फल जीवन;
बुझते ही प्यास हमारी
पल में विरक्ति जाती बन !
पूर्णतया यही भरने की
ढुल कर देना सूने घन;
सुख की चिर पूर्त्ति यही है
उस मधु से फिर जाये मन

चिर ध्येय यही जलने का
ठण्डी विभूति बन जाना;
है पीड़ा की सीमा यह
दुख का चिर सुख हो जाना!

मेरे छोटे जीवन में
देना न तृप्ति का कण भर;
रहने दो प्यासी आँखें
भरतीं आँसू के सागर।

महादेवी वर्मा ने अपनी सारी मनोभावनाओं को एक अप्राप्तव्य आराध्य के उपलक्ष्य से अभिव्यक्त करने की चेष्टा की है। अतृप्त इच्छाएँ ही प्रलुब्ध होती हैं। इतना होने पर भी जगत् और जीवन के सम्बन्ध को हम विध्वंस नहीं कर सकते। उसी के अन्तर्गत रहकर हम जीवन में उत्तीर्ण हो सकते हैं और वस्तुतः जीवन की यही सच्ची साधना है। क्षुद्र से विराट् तथा नश्वर से शाश्वत होने के लिए अंश में ही पूर्णता तथा सीमा में ही असीमता उपलब्ध करनी पड़ेगी। अपनी सारी चेतना के साथ देखने से बद्ध भी अबद्ध मालूम पड़ता है। जीवन के विषाद तथा अवसाद चेतना की अन्तर्ज्योति से स्वतः दीप्तिमय होकर आनन्द तथा उल्लास में परिवर्त्तित हो जाते हैं। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने 'प्रकृति का प्रतिशोध' नामक अपने नाट्य-काव्य में ऐसे ही एक तथ्य का बड़ा रमणीय रूपक-विधान किया है। एक संन्यासी, संसार के सारे स्नेह-बन्धन को तोड़, अपनी प्रकृति पर विजय प्राप्त कर विशुद्ध भाव से एकान्त में अनन्त की उपलब्धि करना चाहता था। शायद वह यह सोचता था कि अनन्त इस जगत् और जीवन से बाहर है। एक दिन अचानक एक बालिका ने उसे अपने स्नेह-पाश में आबद्ध कर अनन्त के ध्यान से जीवन और जगत् में लौटा लिया। जगत् में उस संन्यासी ने देखा कि क्षुद्र से ही वृहत है, सीमा से असीम है, और प्रेम से ही मुक्ति है। जैसे ही प्रेम का आलोक दिखाई पड़ा, वैसे ही आँखें बन्द करने पर उसने देखा कि सीमा में भी सीमा नहीं है।

महादेवी वर्मा ने, जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है, अप्राप्तव्य को ही अपने प्रयत्न का लक्ष्य रखा है। उन्होंने अपनी सारी उत्कण्ठा, विह्वलता तथा उद्वेग को लेकर अपने जीवन के अतिथि का अनुसन्धान करना चाहा है।

'इस अचल क्षितिज रेखा के
तुम रहो निकट जीवन के
पर तुम्हें पकड़ पाने के
सारे प्रयत्न हों फीके।'

जन्म-मरण के समय सुख-दुःख की जो स्थिति रहती आई है, वह जीवन में उल्लास-विषाद की प्रेरणा देती रही है। बार-बार मरने के विषाद की अनुभूति को प्राप्त करने के लिए बार-बार जन्म-ग्रहण की अनिवार्यता को भी स्वीकार करना पड़ेगा। उनकी इस आकांक्षा के सामने उनका बौद्ध-दर्शन पराजित हो जाता है। वे कहती हैं—

'घन बनूँ वर दो मुझे प्रिय!
जलधि-मानस से नव जन्म पर
सुभग तेरे ही दृग-व्योम में।
सजल श्यामल मन्थर मूक-सा
तरल अश्रुविनिर्मित गात ले,
नित घिरूँ झर झर मिटूँ प्रिय!'
घन बनूँ वर दो मुझे प्रिय!'

जीवन की नश्वरता को समझकर वे कहती हैं—

'विकसते मुरझाने को फूल
उदय होता छिपने को चन्द,
शून्य होने को भरते मेघ
दीप जलता होने को मन्द;
यहाँ किसका अनन्त यौवन?
अरे अस्थिर छोटे जीवन!'

मरने का अधिकार, जो प्रेम की सबसे सात्विक माँग . . कवयित्री रखना चाहती है—

'क्या अमरों का लोक मिलेगा
तेरी करुणा का उपहार?
रहने दो हे देव! अरे
यह मेरा मिटने का अधिकार।'

कयवित्री ने खण्ड में अखण्ड तथा सीमित में असीम को भी समझने की चेष्टा की है। अनन्त तब तक प्राप्तव्य माना नहीं जा सकता, जब तक सान्त न हो। महादेवी वर्मा में एक बहुत ही प्राञ्जल कवि-हृदय है। उनकी

काव्य-प्रवृत्तियों की विविधता में भी एक ऐसी एकरूपता है, जो हिन्दी के अधिकांश कवियों को प्राप्त नहीं। वे जानती हैं कि—

'विश्व में वह कौन सीमाहीन है,
हो न जिसका खोज सीमा में मिला ?
क्यों रहोगे क्षुद्र प्राणों में नहीं,
क्या तुम्हीं सर्वेश एक महान् हो ?'

महादेवी की कविता

विनयमोहन शर्मा

['महादेवी का काव्य व्यक्तिगत मानसिक संघर्ष, अभाव और बुद्ध के दुःख-वाद से प्रभावित है। दुःख को उन्होंने 'मधुर-भाव' के रूप मे स्वीकार किया है। उसमे उनकी प्रेयसी की भूमिका है, जो परोक्ष प्रिय के लिए अहर्निश आतुर होती रहती है। प्रिय और प्रियतम की इस कल्पित आँख-मिचौनी से उनका काव्य क्रीड़ामय हो उठा है। वे कहती हैं—

"प्रिय चिरन्तन है सजन,
क्षण-क्षण नवीन सुहागिनी मैं।"]

छायावाद-युग ने महादेवी को जन्म दिया और महादेवी ने छायावाद को जीवन। प्रगतिवाद (साम्यवाद) के नारे से प्रभावित हो जब छायावाद के मान्य कवियों ने अपनी आँखें पोंछकर भीतर से बाहर झाँकना प्रारम्भ कर दिया, महादेवी की आँखें भीगती रहीं, हृदय सिहरन भरता रहा, ओठों की ओटों में आहें सोती रहीं, और मन किसी निष्ठुर की आरती उतारता ही रहा। दूसरे शब्दों में वे अखण्ड भाव से अन्तर्मुखी बनी रहीं।

छायावाद के उन्नायक कवि पंत ने 'रूपाभ' की प्रथम संख्या में उसका विरोध करते हुए लिखा था, "इस युग की कविता स्वप्नों में नहीं पल सकती, उसकी जड़ों को अपनी पोषण-सामग्री धारण करने के लिये, कठोर धरती का आश्रय लेना पड़ रहा है।" भगवतीचरण वर्मा ने प्रगतिवाद के प्रकाश—(?) युग में छायावाद की 'दीपशिखा' सँजोने वाली इस कवयित्री की 'विशाल-भारत' में निर्दय भर्त्सना की थी, इसके भावैक्य को पलायन-प्रवृत्ति और प्रतिगामी कहा था। फिर भी, महादेवी छायावाद की वकालत

करती ही रहीं—"मनुष्य की वासना को बिना स्पर्श किये हुए, जीवन और प्रकृति के सौंदर्य को समस्त सजीव वैभव के साथ चित्रित करने वाली उस युग (छायावाद) की अनेक कृतियाँ किसी भी साहित्य को सम्मानित कर सकती हैं।......उसने जीवन के इतिवृत्तात्मक यथार्थ चित्र नहीं दिये क्योंकि वह स्थूल से उत्पन्न सौन्दर्य सत्ता की प्रतिक्रिया थी। अप्रत्यक्ष स्थूल के प्रति उपेक्षित यथार्थ की नहीं जो आज की वस्तु है।" [१] कल्पना-पराङमुखियों से भी उन्होंने कहा, "जीवन की समष्टि में सूक्ष्म से इतने भयभीत होने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि वह तो स्थूल से बाहर कहीं अस्तित्व ही नहीं रखता। अपने व्यक्त सत्य के साथ मनुष्य जो है और अपने अव्यक्त सत्य के साथ वह जो कुछ होने की भावना कर सकता है वही उसका स्थूल और सूक्ष्म है और यदि इनका ठीक संतुलन हो सके तो हमें एक परिपूर्ण मानव ही मिलेगा।" [२] जिस भीतर-बाहर के संतुलन की यह बात महादेवी ने सन् १६४० में कही थी उसी को दस वर्ष बाद पंत ने प्रगतिवाद से मुख मोड़कर 'उत्तरा' में उद्घोषित किया है। [३] पंत के बाहर से भीतर लौटने की भविष्य-वाणी भी महादेवी ने की थी—"हमें निष्क्रिय बुद्धिवाद और स्पन्दनहीन वस्तुवाद के लम्बे पथ को पार कर कदाचित फिर चिर-संवेदन रूप सक्रिय भावना में जीवन के परिमाणु खोजने होंगे, ऐसी मेरी व्यक्तिगत धारणा है।" (आधुनिक कवि)। आज तो पन्त ही नहीं, निराला, अज्ञेय, राहुल आदि अनेक लेखक प्रगतिवाद के क्षेत्र से विमुख हो चुके हैं।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का मत है—"छायावादी कहे जाने वाले कवियों में महादेवीजी ही रहस्यवाद के भीतर रही हैं......अज्ञात प्रियतम के लिये वेदना ही इनके हृदय का भाव-केन्द्र है जिससे अनेक प्रकार की भावनायें छूट-छूट कर झलक मारती रहती हैं।"

प्रश्न यह है कि महादेवी की भावनाओं की झलकें क्या रहस्यवाद की सीमा के अन्दर परिगणित की जा सकती हैं? और क्या महादेवी का रहस्यवाद, कबीर, जायसी मीरा की परम्परा है? इन प्रश्नों का उत्तर देने के पूर्व संक्षेप में रहस्यवाद और छायावाद की सीमा समझ लेनी होगी। आचार्य शुक्ल इन दो शब्दों को इस प्रकार समझाते हैं, "छायावाद शब्द का प्रयोग दो

---

१. आधुनिक कवि—१ भूमिका

२. वही

३. "मैं बाहर के साथ भीतर की क्रांति का भी पक्षपाती हूँ"......
'उत्तरा' (भूमिका) पृ० २६

अर्थों में समझना चाहिये एक तो रहस्यवाद के अर्थ में, जहाँ उसका सम्बन्ध काव्य-वस्तु से होता है अर्थात् जहाँ कवि इस अनन्त और अज्ञात प्रिय को आलम्बन बनाकर अत्यन्त चित्रमयी भाषा में प्रेम की अनेक प्रकार से व्यंजना करता है……छायावाद शब्द का दूसरा प्रयोग काव्य-शैली या पद्धति विशेष के व्यापक अर्थ में है।……छायावाद का सामान्यतः अर्थ हुआ प्रस्तुत के स्थान पर उसकी व्यंजना करने वाली छाया के रूप में अप्रस्तुत का कथन। इस शैली के भीतर किसी वस्तु या विषय का वर्णन किया जा सकता है।" [1] 'काव्य में रहस्यवाद' में वे पुनः छायावाद का अर्थ स्पष्ट करना चाहते हैं, "जो छायावाद प्रचलित है वह वेदान्त के पुराने प्रतिबिंबवाद का है। यह प्रतिबिम्बवाद सूफियों के यहाँ से होता हुआ यूरुप में गया जहाँ कुछ दिनों पीछे 'प्रतीकवाद' से संश्लिष्ट होकर धीरे-धीरे बंग-साहित्य के एक कोने में आ निकला और नवीनता की धारणा उत्पन्न करने के लिये 'छाया-वाद' कहा जाने लगा। यह काव्यगत रहस्यवाद के लिये गृहीत दार्शनिक सिद्धान्त का द्योतक शब्द है।" (पृष्ठ १४२-४३)

आचार्य शुक्ल छायावाद को रहस्यवाद का पर्याय मानते हैं और शैली विशेष भी। इससे विवेचना के क्षेत्र में, यदि हम उन्हीं का शब्द प्रयुक्त करें तो 'गड़बड़झाला' हो जाने की सम्भावना हो गई है। विषय सुलझने की अपेक्षा अधिक उलझ गया है। महादेवी ने 'यामा' की भूमिका में इन वादों की चर्चा करते हुए कहा है, "प्रकृति के लघु तृन और महान् वृक्ष, कोमल कलियाँ और कठोर शिलाएँ, अस्थिर जल और स्थिर पर्वत, नीड़ अन्धकार और उज्ज्वल विद्युत्-रेखा, मानव की लघु विशालता, कोमल कठोरता, चंचलता, निश्चलता और मोहज्ञान का प्रतिबिम्ब न होकर एक ही विराट से उत्पन्न सहोदर हैं। जब प्रकृति की अनेकरूपता में, परिवर्तनशील विभिन्नता में, ऐसा तारतम्य खोजने का प्रयास किया गया जिसका एक छोर किसी असीम चेतना और दूसरा उसके ससीम हृदय में समाया हुआ था तब प्रकृति का एक-एक अंश अलौकिक व्यक्तित्व लेकर जाग उठा, परन्तु इस सम्बन्ध में मानव-हृदय की सारी प्यास न बुझ सकी। क्योंकि मानवीय सम्बन्धों में जब तक अनुरागजनित आत्म-विसर्जन का भाव नहीं घुल जाता तब तक वे सरस नहीं हो पाते और जब तक यह मधुरता सीमातीत नहीं हो जाती तब तक हृदय का अभाव दूर नहीं होता, इसी से इस अनेकरूपता के

---

१ हिन्दी साहित्य का इतिहास

कारण पर एक मधुर व्यक्तित्व का आरोपण कर उसके निकट आत्म-निवेदन कर देना इस काव्य (छायावाद) का दूसरा सोपान बना, जिसे रहस्यमय रूप के कारण ही रहस्यवाद का नाम दिया गया।''

महादेवी ने भी छायावाद और रहस्यवाद को एक दूसरे का पर्याय मान लिया है। परन्तु छायावाद युग की रचनाओं का विश्लेषण कर लेने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि ये दो शब्द भिन्न अर्थों के द्योतक हैं। छायावाद के काव्य में अन्तमुखी प्रवृत्ति प्रधान है। उसके लिये परोक्ष सत्ता के प्रकाशन की अनिवार्यता नहीं है, उसमें व्यक्ति की कोई भी अभावजनित अन्तर्व्यथा 'झलक मार सकती है,' वाह्य-प्रकृति के प्रति आसक्ति भी सरस हो सकती है। मानव या प्रकृति के अन्तर्वाह्य सौन्दर्य के प्रति रागात्मक संबंध स्थापित करने के आयास की लक्षणात्मक अभिव्यंजना छायावाद की सीमा है और हृदय की व्यक्त-जगत के प्रति जिज्ञासा और उसमें अन्तर्हित सूक्ष्म सत्य का आतुरतामय अन्वेषण रहस्यवाद की निकटता है। 'व्यक्त जगत्' में साधक की हृदय-भूमि भी सम्मिलित है। तात्पर्य यह कि सभी अन्तमुखी रचनायें लाक्षणिक अभिव्यक्त के साथ छायावादी कहला सकती हैं, पर सभी छायावादी रचनायें रहस्यवादी नहीं हो सकतीं। रहस्यवादी रचनाओं में अव्यक्त सत्य या सूक्ष्म के प्रति ललक अनिवार्य है और वह अव्यक्त सत्य निर्गुण ब्रह्म का पर्याय होना चाहिये। ब्रह्म के सगुण रूप की अभिव्यक्ति में रहस्य कहाँ है? यह बात सत्य है कि निर्गुण ब्रह्म सगुण संज्ञा लेकर ही काव्य में उतरता है, क्योंकि भावना शून्य के आलम्बन पर ठहर नहीं सकती।

जब महादेवी की रचना में समीक्षक रहस्यवाद पाते हैं तब संभवतः वे उनकी रचनाओं के शाब्दिक अर्थ तक अपने को सीमित रखते हैं। महादेवी ने रहस्यवाद की साधनात्मक अनुभूति को स्पर्श किया है, यह संदिग्ध है। यह हमारा ही संदेह नहीं है, उनको रहस्यवादिनी कहने वाले आचार्य शुक्ल को भी कहना पड़ा है, "वेदना को लेकर जो अनुभूतियाँ उन्होंने रखी हैं वे कहाँ तक वास्तविक अनुभूतियाँ हैं और कहाँ तक अनुभूतियों की रमणीय कल्पना यह नहीं कहा जा सकता।" 'दीपशिखा' की भूमिका में स्वयं महादेवी ने स्वीकार किया है, "आत्मानुभूत ज्ञान आत्मा के संस्कार और व्यक्तिगत साधना पर इतना निर्भर है कि इसकी पूर्ण प्राप्ति और सफल अभिव्यक्ति सबके लिये सहज नहीं।" ज्ञान से जो दार्शनिक सत्य उपलब्ध हो सकता है वह हृदय के माध्यम से ही जब अनुभव किया जाता है तभी रहस्यवाद की सृष्टि होती है। इसमें संदेह नहीं कि महादेवी में निर्गुण संतों की

वाणी का स्वर ध्वनित होता है, पर उस ध्वनि में उनकी जीवन साधना की अनुभूति का कितना अंश है यह स्पष्ट नहीं हो पाता। कबीर कहते हैं— "सुनु सखि पिउ महिं जिउ बसे, जिउ महिं बसे कि पीउ"। यह आत्मा-परमात्मा का ऐक्य महादेवी के जीवन में साध्य हो सका है या नहीं यह हम नहीं जानते। निर्गुणी संत अपने में सृष्टि और सृष्टि में अपने को कल्पना से नहीं, हृदय की ज्योति जगाकर देखते थे—

"हम सब माहिं सकल हम माहीं।
हम में और दूसरा नाहीं।"

दादू भी यही कहते हैं:—

"सदा लीन आनंद में, सहज रूप सब ठौर।
दादू देखै एक कौ दूजा नाहीं और॥"

संतो के हृदय में उस सूक्ष्म की सघन संवेदना हुई थी। हक्सले बाह्य-मन और बुद्धि के परे एक और शक्ति का अस्तित्व मानता है, जिसे वह Third thing कहता है। इसी 'तीसरी वस्तु' या शक्ति के द्वारा निर्गुण ब्रह्म का साक्षात्कार संभव होता है। प्राचीन द्रष्टा ऋषि इस वृत्ति के अस्तित्व की बराबर घोषणा करते आये हैं जिसे वे साक्षात्-ज्ञान, अनुभव ज्ञान या अपरोक्ष अनुभूति के नाम से पुकारते हैं। बुद्धि के क्षेत्र को नीचे छोड़कर निर्गुणी संतों ने अनुभूति के इसी राज्य में प्रविष्ट होने का दावा किया है। यहीं उन्हें 'परम सत्ता' का साक्षात्कार हुआ है। यह बात सत्य है कि अपनी अलौकिक अनुभूतियों को समझाने के लिये उन्हें स्थूल उपकरणों और लौकिक भाषा का आश्रय लेना पड़ा है।

संतों की वाणियों में जो अनुभूत सत्य बार बार प्रतिध्वनित हुआ है वह सार रूप में इस प्रकार है—परमात्मा और आत्मा की पृथक् सत्ता नहीं है, परमात्मा आत्मा में ही समाया हुआ है। अतएव उसकी खोज बहिर्वृत्ति से नहीं, अन्तर्वृत्ति से संभव है।

महादेवी के काव्य में हम परोक्ष सत्ता की साक्षात् अनुभूति में विश्वास करने में इसलिये झिझकते हैं कि उसमें मध्ययुगीन संतों के समान सघन एकस्वरता—सहज एकांतता नहीं है। उसमें कभी अद्वैत के प्रति ललक झलकती है, कभी द्वैत के प्रति कामना उमड़ती है और कभी स्थूल के प्रति राग सहज हो उठता है।

अद्वैत का स्वर—(१) 'बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ'
(२) 'मधुर राग तू मैं स्वर संगम, चित्र तू मैं रेखाक्रम'

द्वैत की भावना—'तुम सो जाओ मैं गाऊँ
मुझको सोते युग बीते
तुमको यों लोरी गाते
अब आओ मैं पलकों में
स्वप्नों से सेज बिछाऊँ।"

स्थूल के प्रति राग—'कह दे माँ क्या देखूँ"
दिखूँ खिलती कलियाँ या प्यासे सूखे अधरों को ?...
या मुरझाई पलकों से झरते आँसू कन देखूँ ? "

उनमें प्रेम तत्व का प्राधान्य होने से उन्हें सूफ़िनी कहने का भी साहस किया जाता है। पर सूफ़ियों की भी आध्यात्मिक श्रेणियाँ और परम्परायें हैं। महादेवी के काव्य में उनकी खोज करना उनमें सहज प्रकाशित प्रेम-तत्व को भी अग्राह्य बनाना है। उनके काव्य को सूफ़ियों से प्रभावित कहना भी उनका उपहास करना है।

महादेवी को मीरा की परम्परा में बतलाना भी इसी प्रकार कलाकार महादेवी को हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दों में "युगों पीछे फेंक देना है।" मीरा की भक्ति साधनामूलक थी, महादेवी की काव्य-साधना कलामूलक है। उनका तथाकथित 'सूक्ष्म प्रिय' क्या मीरा के 'जोगी' का पर्याय हो हो सकता है ?

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि महादेवी की रचनाएँ निर्गुणी सन्तों की एक लक्ष्योन्मुख सघन अनुभूति और उनके साधन-मार्ग-परम्परा की नहीं हैं। उनके काव्य में व्यक्त सूक्ष्म को कल्पना की सुन्दर सृष्टि मानते हुए भी हम उनकी काव्य-प्रेरणा (Impulse) की सजीव यथार्थता में अविश्वास नहीं करना चाहते। उसे हम जीवन की क्रूर विषम परिस्थितियों से विचलित और विकम्पित मानते हैं। जगत् के अशोभन, स्थूल सत्य के साथ सामञ्जस्य न हो सकने के कारण उनका भावुक मन आघात खाकर अन्तर्मुख होगया है और वहीं अपनी अभिरुचि की 'स्वप्निल प्रतिमा' के साथ क्रीड़ा करने लगा है। कभी उसके साथ मिलन-सुख अनुभव करता है; कभी स्त्रियोचित मान, अभिसार, शृङ्गार आदि का अभिनय करता है; परन्तु ज्यों ही उसमें यह भान जागृत होता है कि स्वप्निल प्रतिमा से स्थूल मिलन असम्भव है, वह विरह की वास्तविक स्थिति में आकर विकल हो जाता है। कवयित्री के काव्य की प्रेरणा 'दीपशिखा' की इन दो पंक्तियों में मुखरित हो उठी है—

"मैं कण-कण में ढाल रही अलि, आँसू के मिस प्यार किसी का,
मैं पलकों में पाल रही हूँ, यह सपना सुकुमार किसी का।"

सारी कविताओं का Impulse इसमें है। इसी बात को श्रीमती शचीरानी गुर्टू ने बहुत ही स्पष्ट शब्दों में यों व्यक्त किया है—"यौवन के तूफ़ानी क्षणों में जब उनका अल्हड़ हृदय किसी प्रणयी के स्वागत को मचल रहा था और जीवन-गगन के रक्ताभ-पट पर स्नेह-ज्योत्स्ना छिटकी पड़ रही थी, तभी अकस्मात् विफल प्रेम की धूप खिलखिला पड़ी और पुलकते प्राणों की धूमिलता में अस्पष्ट रेखाएँ सी अङ्कित कर गईं। आत्म-संयम का व्रत लिए हुए उन्होंने जिस लौकिक प्रेम को ठुकरा कर पीड़ा को गले लगाया, वह कालान्तर में आन्तरिक शीतलता से स्नात होकर बहुत कुछ निखर तो गई, किन्तु उनके हठीले मन का उससे कभी लगाव न छूटा। और वे उसे निरन्तर कलेजे से चिपटाये रखने की मानों हठ पकड़ बैठीं।"[1] (श्री नगेन्द्र 'फ्रायड' के अनुसार महादेवी की प्रेरणा काममूलक मानते हैं।) महादेवी ने कभी बहुत पहले गाया था—

'विसर्जन ही है कर्णाधार ? वही पहुँचा देगा उस पार।'

स्पष्ट है कि कवयित्री के इस विसर्जन में उल्लास नहीं, वेदना है; पर अपनी अभावजनित वेदना को छिपाने का उसने सतत प्रयत्न किया है। 'रश्मि' की भूमिका में उसने लिखा है, "संसार साधारणत: जिसे दु:ख और अभाव के नामसे जानता है, वह मेरे पास नहीं है। जीवन में मुझे बहुत दुलार, बहुत आदर और बहुत मात्रा में सब कुछ मिला है। उस पर पार्थिव दु:ख की छाया नहीं पड़ी। कदाचित यह उसी की प्रतिक्रिया है कि वेदना मुझे इतनी मधुर लगने लगी।" पर अपने ही कथन का मानों प्रतिवाद करती हुई, वह एक स्थान पर लिखती हैं—

"समता के धरातल पर सुख-दु:ख का मुक्त आदान-प्रदान यदि मित्रता की परिभाषा मानी जाय तो मेरे पास मित्र का अभाव है।" सुख-दु:ख में समभागी होने वाले मित्र का अभाव क्या जीवन का कम उत्पीड़न है ? 'आधुनिक-कवि' की भूमिका में हम फिर पढ़ते हैं, "हृदय में तो निराशा के लिए कोई स्पर्श ही नहीं पाती, केवल एक गम्भीर करुणा की छाया देखती हूँ।" निराशा इसलिए नहीं है कि महादेवी ने अपने अभाव से सम्भवत: समझौता कर लिया है। आशा तभी तक रहती है, जब तक परि

[1] साहित्य-दर्शन—पृष्ठ २२१

स्थिति में सुधार की सम्भावना होती है। एक बार इस सम्भावना के नष्ट हो जाने पर मन निराशा की ओर नहीं बढ़ता, पर वह आशान्वित होकर हर्ष से परिपूरित भी नहीं हो पाता। वह अपने अभाव को विसूरता रहता है, उस पर चिन्तन-मनन करता रहता है। कभी-कभी यह भी कल्पना कर वह अपने को सुखी मानने का यत्न करता है कि 'मैं निराश नहीं हूँ, प्रसन्न हूँ।' पर यह कल्पित उल्लास का झोंका क्षणिक ही रहता है। उसके हटते ही मन अपने दुःख को नगण्य नहीं मानता। महादेवी की 'यामा' की भूमिका में यही मनोवृत्ति बोल रही है—"दुःख मेरे निकट जीवन का ऐसा काव्य है जो सारे संसार को एक सूत्र में बाँध रखने की क्षमता रखता है। हमारा एक बूँद आँसू भी जीवन को अधिक मधुर, अधिक उर्बर बनाये बिना नहीं रहता। मनुष्य सुखको अकेला भोगना चाहता है, परन्तु दुःख सबको बाँटकर। विश्व-जीवन में अपने जीवन को, विश्व-वेदना में अपनी वेदना को इस प्रकार मिला देना, जिस प्रकार एक जल-बिन्दु समुद्र में मिल जाता है, कवि का मोक्ष है।"

महादेवी को दुःख का वह रूप प्रिय है जो मनुष्य के 'सम्वेदनशील हृदय को सारे संसार के एक अविच्छिन्न बन्धन में बाँध देता है।' और उसका वह रूप भी जो 'काल और सीमा के बन्धन में पड़े हुए असीम-चेतन का क्रन्दन है।' दूसरे शब्दों में व्यष्टि और समष्टि दोनों का दुःख उन्हें प्रिय है। हम महादेवी को कलाकार, कवयित्री मानते हैं। यदि उनकी कविता को किसी 'वाद' से ही बाँधना हो तो उसे दुःखवाद से अभिहित कर सकते हैं। उन्होंने स्वयं अपने जीवन को दुःख या पीड़ा से सिक्त कहा है—

'चिन्ता क्या है हे निर्मम,
बुझ जाये दीपक मेरा।
हो जायेगा तेरा ही
पीड़ा का राज्य अँधेरा।'

गद्य की भाषा में भी वे कहती हैं "बचपन में ही भगवान बुद्ध के प्रति एक भक्तिमय अनुराग होने के कारण उनके संसार को दुःखात्मक समझनेवाले दर्शन से मेरा असमय ही परिचय हो गया। अवश्य ही इस दुःखवाद को मेरे लिये नया जन्म लेना पड़ा। फिर भी उसमें पहले जन्म के संस्कार विद्यमान हैं।" इसका यह आशय हुआ कि महादेवी ने बुद्ध के संसार को देखने की दृष्टि ग्रहण की है। बुद्ध भगवान ने दुःख को आर्य-सत्य (Eternal truth) माना है। वे कहते हैं कि संसार में दुःख की सत्ता ठोस

और स्थूल है। परन्तु कवयित्री बौद्धों के संघात या नैराश्यवाद में विश्वास नहीं करती। अर्थात् वह आत्मा की वास्तविक सत्ता से इन्कार नहीं करतीं। परन्तु वे बौद्धों के संतानवाद में बहुत अंश तक विश्वास करती हैं। संतानवाद में आत्मा और जगत् को अनित्य माना जाता है। महादेवी आत्मा को नित्य मानती हैं। उसके अमरत्व में आस्था रखती हैं। परन्तु क्षण-क्षण परिवर्तित दिखाई देने वाले जगत् की क्षण-भंगुरता को वे बौद्ध-मत के समान ही स्वीकार करती हैं। यह सत्य है कि आत्मा का अमरत्व तभी तक कायम रहता है, जब तक वह परमात्मा में लीन होकर मुक्ति लाभ नहीं कर लेती। वे कहती हैं—

'जब असीम से हो जायेगा
मेरी लघु सीमा का मेल,
देखोगे तब देव ! अमरता
खेलेगी मिटने का खेल !'

निर्वाण हो जाने के बाद आत्मा-परमात्मा नामक दो तत्व कहाँ रह जाते हैं ? संसार में पदार्थों का नहीं, उनके रूप का नाश होता है।

'स्निग्ध अपना जीवन कर क्षार
दीप करता आलोक प्रसार
जलाकर मृत पिंडों में प्राण
बीज करता असंख्य निर्माण,
सृष्टि का है यह अमिट विधान
एक मिटने में सौ वरदान।'

मृत्यु को उन्होंने जीवन का 'चरम विकास' कहा है। उनका विश्वास है कि यदि जीवन शाश्वत हो जाय तो वह ह्रासोन्मुख हो जाता है। अतएव विकास के लिए मृत्यु को उन्होंने आवश्यक माना है। मृत्यु से जीवन का सर्वदा लोप नहीं हो जाता। उसकी एक स्थूल शृंखला मात्र विच्छिन्न हो जाती है।

अपने दुःख की प्रतिच्छाया समस्त सृष्टि में देखने की वृत्ति हिन्दी-काव्य में नई नहीं है। ऊपर के विवेचन से सिद्ध है कि महादेवी का काव्य व्यक्तिगत मानसिक संघर्ष, अभाव और बुद्ध के दुःखवाद से प्रभावित है। दुःख को उन्होंने 'मधुर भाव' के रूप में स्वीकार किया है। उसमें उनकी प्रेयसी की भूमिका है, जो परोक्ष प्रिय के लिये अहर्निश आतुर होती रहती है। प्रिय और प्रियतम की इस कल्पित आँख-मिचौनी से उनका काव्य क्रीड़ामय

हो उठता है। वे कहती हैं—

'प्रिय चिरन्तन है सजन,
क्षण क्षण नवीन सुहागिनी मैं।'

जब उनकी पलकें लज्जानत होना सीख ही रही थीं, तभी उनमें किसी अज्ञात की प्रेम-पीड़ा हँस उठी थी—

'इन ललचायी पलकों पर
पहरा जब था व्रीड़ा का,
साम्राज्य मुझे दे डाला
उस चितवन ने पीड़ा का।'

तब से आज तक उनकी पीड़ा का अन्त नहीं हुआ, उनकी विरह-निशा का अस्त नहीं हुआ। वे कहती हैं—

'अलि विरह के पंथ में
मैं तो न इति अथ मानती री।'

इसीलिये उनका जीवन 'विरह का जलजात' बन गया है। जिसकी 'चितवन' ने उन्हें 'पीड़ा का राज्य' दे जीवन को झकझोर डाला है, उससे उनकी मनुहार है—

'जो तुम्हारा हो सके
लीला कमल यह आज
खिल उठे निरुपम तुम्हारी
देख स्मिति का प्रात।'

कभी कभी उनका भ्रान्त मन यह भी कल्पना कर लेता है कि वे जिसे खोज रही हैं, वह उनके हृदय में ही है—

'गूँजता उर में न जाने
दूर के संगीत सा क्या?
आज खो निज को मुझे
खोया मिला विपरीत क्या?
क्या नहा आई विरह निशि
मिलन मधु-दिन के उदय में?
कौन तुम मेरे हृदय में?'

पर उसी क्षण जैसे कवयित्री को अपनी वास्तविकता का भान होता है। वह पुनः अपने को अभावमय अनुभव करने लगती है तथा अपनी स्थिति से संतुष्ट होना चाहती है—

'एक करुण अभाव में
चिर तृप्ति का संसार संचित'

उसे अपनी कसक में माधुर्य अनुभव होने लगा है।

एक ही गीत में अनुभूति की विपरीत झलकियों से जान पड़ता है कि वह लिखना कुछ चाहती है, पर बेसुधमना होने के कारण कुछ और ही लिख जाती है। उसके गीतों में इस प्रकार की भाव-विषमता का यह अर्थ हो सकता है कि या तो वह एक कल्पना के पश्चात् दूसरी कल्पना की चिन्तना में व्यस्त रहती है, या उसका मन ही भूला भूला सा भटकता रहता है।

अपने कल्पित 'प्रिय' की कभी वह प्रतीक्षा करती है ('जो तुम आ जाते एक बार') और कभी उसे अपनी दशा दिखलाकर करुणा से आर्द्र करना चाहती है ('यह सजल मुख देख लेते, यह करुण मुख देख लेते।') उसे सपनों में बाँधने की आकांक्षा भी रह रह कर आकुल करती है और एकांत मिलन की अभिसार की साध भी सिहर उठती है। फिर भी उसका अभिमान आँसुओं की राह से बिलकुल गल नहीं गया। अपने प्रिय में अपना अस्तित्व मिटाना उसे सह्य नहीं है—

'सखि ! मधुर निजत्व दे
कैसे मिलूँ अभिमानिनी मैं ?'

'रत्नाकर' की गोपियों की भी यही वृत्ति है। उनका विश्वास है कि अगर 'ससीम' 'असीम' में मिल जायगा तो 'असीम' का उससे तो कुछ उत्कर्ष न होगा, प्रत्युत 'ससीम' ही बर्बाद हो जायेगा—

'जैहे बन-बिगरिनन बारिधिता बारिद की,
बूँदता बिलैहै बूँद बिबस बिचारी की।'

'अलौकिक प्रिय' के साथ प्रेम की यथासम्भव समस्त क्रीड़ाओं का प्रदर्शन महादेवी की रचनाओं में बिखरा हुआ है। उसका कथन है कि उसने सृष्टि के भीतर ही अपने प्रिय को पहचान लिया है। तभी वह आश्वस्त हो कहती है—

'जो न प्रिय पहचानती
कल्प युग व्यापी विरह को
एक सिहरन में सम्हाले
शून्यता भर तरल मोती
से मधुर सुध दीप बाले
क्यों किसी के आगमन के
शकुन स्पंदन मैं मनाती ?'

वह उनके उन्मन संदेश भी जानती हैं, इसीलिये नयनों में पावस और प्राणों में चातक बसाती हैं। परन्तु कवयित्री अपनी विरह-साधना का अन्त नहीं चाहती। प्रतीक्षा-रस में उनकी अटूट ममता है।

'इस अचल क्षितिज रेखा से
तुम रहो निकट जीवन के
पर तुम्हें पकड़ पाने के
सारे प्रयत्न हों फीके
तुम हो प्रभात की चितवन
मैं विधुर निशा बन जाऊँ
काटूँ वियोग पल रीते
संयोग समय छिप जाऊँ।'

ब्राउनिंग के समान वह भी अतृप्ति को जीवन मानती हैं। इसलिये उनके काव्य में विरह और मिलन की समानान्तर निकटता लक्षित होती है।

महादेवी के काव्य में प्रकृति से परिचय पाना शहराती ड्राइङ्ग-रूम (Drawing room) के फर्श पर वन-प्रांगण की हरी दूब को खोजने के समान अप्राकृत प्रयत्न है। वे मानव-मन की कवयित्री हैं। वाह्य-सृष्टि को काव्य में सिंगारना उनका काम नहीं है। वे तो प्रकृति से ही अपना शृङ्गार कराती हैं—

'तब रंजित कर दे ये शिथिल चरण
ले अशोक का अरुण राग,
मेरे यौवन को आज मधुर
ला रजनीगंधा का पराग,
यूथी की मीलित कलियों से
अलि दे मेरी कबरी सम्हाल!'

उन्होंने फूलों के नाम सुन रक्खे हैं, पढ़े भी हैं; पर कौन फूल कब कहाँ खिलता है, इसकी चिन्ता उन्हें नहीं रही। हरसिंगार, शेफाली, दुपहरिया का फूल भिन्न-भिन्न नहीं एक ही फूल है, इसे जानने का भी उन्हें अवकाश कहाँ? प्रकृति उनके काव्य को अलंकृत करने का कार्य अधिक करती है। वह उनकी भावनाओं की पृष्ठ-भूमि बनती है, स्वयं काव्य नहीं। उनके काव्य में तारक, ओस, बिजली, बादल आदि की बड़ी महिमा है। वे बार-बार गीतों में भिन्न-भिन्न प्रतीकों और नामों में झलक उठते हैं। वास्तव में प्रकृति में उन्होंने अपनी ही आशा, निराशा, आकांक्षा और उत्कण्ठा के चित्र आरोपित

किए हैं। वे कभी-कभी स्वयं विराट रूप धारण कर विराट की मिलन उत्कण्ठा में प्रकृति के उपकरणों को अपने शृङ्गार का साधन बनाती हैं।

'शशि के दर्पण में देख देख
मैंने सुलझाये तिमिर केश,'

प्रकृति में मन के न रमने के कारण वह उनके काव्य में पूरी तरह से बिम्बित नहीं हो पायी। फिर भी आश्चर्य है कि वे सृष्टि के कण-कण को पहचानने का दावा करती हैं। इसीलिए हमारा सन्देह दृढ़ होता है कि महादेवी का काव्य कल्पना की सुन्दर सृष्टि है; अनुभूति के साथ उनकी अभिव्यक्ति का बहुत कम तारतम्य है।

गीत-कर्त्री की दृष्टि से महादेवी को प्रसाद और निराला के बीच की शृङ्खला कहा जाता है। प्रसाद के गीतों में भाव-प्रवणता (Emotion) निराला के गीतों में चिन्तन (Intellect) और महादेवी के गीतों में दोनों का समावेश है। निराला के गीत-स्वर ताल की शास्त्रीय मर्यादा के साथ चलते हैं और साथ ही दृश्यों की शृङ्खला में भी जकड़े हुए रहते हैं। प्रसाद और महादेवी के गीतों में संगीत-शास्त्र का कोई बन्धन नहीं है। निराला में शब्दों के ह्रस्व-दीर्घ के विकार कम पाये जाते हैं, प्रसाद में अधिक। पर महादेवी में प्रसाद से कम और निराला से अधिक मिलते हैं। निराला में भावों को अन्विति के साथ गीत पूर्ण होता है। प्रसाद में भी प्रायः भाव विच्छिन्न नहीं हो पाता, पर महादेवी के गीतों में भावों की विच्छिन्नता पायी जाती है। उनका एक गीत एक ही भाव की पूर्ण परिणति नहीं होता। उसमें कई भाव झलक उठते हैं।

छायावादी युग की काव्य-कला महादेवी में पूर्ण वैभव के साथ दिखाई देती है। शब्द की अभिधा शक्ति का वहाँ ज़रा भी सम्मान नहीं है। लक्षणा, प्रतीक और व्यञ्जना से वह ओत-प्रोत है। कवयित्री प्रतीकों के प्रयोग में बहुत स्वच्छन्द है। एक प्रतीक एक ही अर्थ में सब जगह प्रयुक्त नहीं होता। कभी कभी भिन्न-स्थलों पर संदर्भ के अनुसार भिन्न अर्थ देता है। इसी से काव्य प्रायः दुर्बोध हो जाता है। प्रसाद और पन्त के समान वचन, लिंग आदि के प्रयोगों में वे व्याकरण के नियमों से बँधना नहीं चाहतीं।

अभी तक रचना-काल की दृष्टि से महादेवी के निम्न कविता-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं—१. नीहार, २. रश्मि, ३. नीरजा, ४. सान्ध्यगीत, ५. नीहार, रश्मि, नीरजा और सान्ध्यगीत का सम्मिलित रूप—'यामा' ६. दीप-शिखा। इन संग्रहों में क्रमिक रचनाओं में सम्भवतः आयु के अनुसार

भाव-विगोपन की प्रवृत्ति रही है, पर दीप-शिखा तक पहुँचते-पहुँचते इनका हृदय क्रमशः खुलता गया है और अभिव्यक्ति स्पष्ट होती गई है। 'नीहार' की उदासी, खीझ और झुँझलाहट 'दीप-शिखा' तक पहुँचते-पहुँचते दूर हो गई है और उसमें परिस्थिति का सर्वोच्च आस्वाद, अभाव का आत्म-सन्तोष प्रकाशित हो उठा है। 'दीप-शिखा' के आगे किस मनोराज्य की भूमि कवयित्री देखना चाहती है, यह भविष्य के गर्भ में है।

महादेवी का काव्य-शास्त्र

देवराज उपाध्याय

['महादेवी के काव्य-शास्त्रीय विचारों का सबसे बड़ा महत्व यह है कि उन्होंने काव्य को जीवन की विशाल और स्वभाविक पृष्ठ-भूमि पर रखकर समझने और समझाने की सिफ़ारिश की है। उनके सामने जीवन अपने पूर्ण व्यापकत्व के साथ उपस्थित है, यही कारण है कि एक ओर उन्होंने प्रगतिबाद की त्रुटियों का विश्लेषण किया है, वहाँ छायावाद की कमियों की ओर से आँखें नहीं मूँद ली।

आज के कवियों से उनकी यही शिकायत हैं कि उन्होंने जीवन को उसके सक्रिय संवेदन के साथ स्वीकार न करके उसको एक विशेष बौद्धिक दृष्टिकोण से छू भर दिया है और उन्होंने ललकारा है कि वे अध्ययन में मिली जीवन की चित्रशाला से बाहर आकर, जड़- सिद्धान्तों का पाथेय छोड़कर, अपनी सम्पूर्ण संवेदन-शक्ति के साथ जीवन में घुल मिल जावें।']

महादेवी मुख्यतः वाह्य-जगत की स्थूलता और अन्तर्जगत की सूक्ष्मता दोनों पर व्यापक दृष्टि से देखने वाली कवयित्री हैं। इनमें न तो किसी एक के लिये आग्रह है और न दूसरे के लिये निषेध, जब जिस तरह जिस किसी वस्तु का उनके हृदय पर जिस तरह की प्रतिक्रिया हुई है वही कुछ गीत की रागनियों के रूप में सामने आ गई है। उनमें जो कुछ है सहज है, स्वयमु- त्थित अन्तः-प्रेरित है, श्रम-साध्य नहीं, प्रयत्न-सापेक्ष नहीं, अतः उन्हीं के शब्दों में उनकी सम्पूर्ण कविता का रचना काल कुछ ही घंटों में सीमित किया जा सकता है, "प्रायः ऐसी कविताएँ कम हैं जिनके लिखते समय मैंने चौकीदार की सजग करने वाली या किसी अकेले जाते हुए पथिक के गीत की

कोई कड़ी नहीं सुनी।" चाहे जो हो, बुद्धि को नोच-नोच कर मस्तिष्क में जम कर बैठ गई रहने वाली बातों को अर्द्धनिशा के रोशनदान के सहारे कलम की नोंक से खुरच कर काव्य की पंक्तियाँ गढ़ी गई हों अथवा अन्तस की उमड़न अप्रत्याशित रूप में ही साकार हो गई हो, पर एक समय आता है जब कलाकार या कवि अपनी कृतियों पर विचार करने ही लगता है। किस मानसिक स्थिति ने सृजन की विवशता उपस्थित कर दी, उसकी मूल प्रेरणा का श्रोत कहाँ है, हृदय का वह केन्द्र जहाँ से काव्य-कृतियाँ अपना रूप धारण करती हैं कहाँ है, इन सब प्रश्नों पर विधायक कवियों का ध्यान जाना अनिवार्य है। कारियित्री और भावयित्री प्रतिभा के पृथकत्व को मान लेने से अथवा कवि और भावक की पृथक स्थिति स्वीकार कर लेने से आलोचना करने अथवा अलोच्य-कृति पर कुछ बातचीत कर लेने की सुविधा भले ही हो जाय, पर अन्ततः एक ऐसी सीमा आती है जहाँ दोनों का सम्मेलन हो जाता है। कवि और भावक परस्पर प्रेमालिंगन में आबद्ध हो एक दूसरे के प्रति अपने हृदय को खोल कर रख देते हैं। उस समय इन दो व्यक्तियों में अथवा एक ही व्यक्तित्व के दो खण्डों में परस्पर निवेदन होता है या स्वीकारोक्तियाँ होती हैं, उनमें सच्चाई होती है, मार्मिक स्पन्दन होता है और होती है विश्वासोत्पादकता।

आलोचक ऐसे हुए हैं जिन्होंने अपनी सारी प्रतिभा दूसरों की काव्य कृतियों की छानबीन, मूल्यांकन और महत्वनिरूपण में ही लगाई है, एक भी काव्य-कृति उनके नाम पर प्राप्त नहीं है, अथवा है भी तो यों ही सी निर्जीव-बेगार सी टाली हुई चीज़। इस वर्ग के आलोचकों द्वारा बहुत सी ज्ञातव्य बातें प्राप्त हुई हैं, काव्य के अनेक पहलुओं पर प्रकाश पड़ा है, पर इतना तो स्पष्ट हो है कि आलोच्य-वस्तु उनके लिये अज्ञात-कुलशील बालक की तरह रहीं हैं जिस पर वे एक दूरस्थित व्यक्ति की दृष्टि से देख रहे हैं। अज्ञातकुलशील बालक रहना अतिव्याप्त सा हो और जो कुछ मेरे भाव हैं उससे अधिक परिधि घेर लेता हो, पर इतना तो निश्चित है कि काव्य रूपी शिशु के साथ इनका वह रागात्मक दृष्टिकोण नहीं जो एक मातृ-हृदय का होता है। ज्यादा से ज्यादा यही कहा जा सकता है कि इनका दृष्टिकोण एक लापरवाह पिता का है जो निर्माण में एक स्थूल साधनमात्र होता है, माँ की तरह नहीं जो स्थूल और सूक्ष्म न जाने कितने साधनों से जीवन के सृजन की संरक्षिका होती है। यही कारण है कि इस श्रेणी के आलोचकों में वह सहजता या मार्मिकता या बन्धुत्व की विश्वासोत्पादकता नहीं होती।

पाठक का हृदय काव्य-शिशु के सम्बन्ध में कही गई बातों पर उस तत्परता के साथ विश्वास कर लेने पर तैयार नहीं होता जिस तरह माँ की बातों के लिये होता है। कवि के काव्य-शास्त्र में अर्थात् काव्य-सम्बन्धी विचारों में प्रत्यक्ष साक्षी (ex-Witness) की स्पष्टता रहती है और दृढ़ाधार होता है। कवि काव्य-सृजन के सूक्ष्म-से-सूक्ष्म व्यापार से साक्षात्रूपेण परिचित रहता है, अतः उसकी बातें तुरन्त ही हृदय में घर कर लेती हैं। यह बात भले ही सत्य हो कि इस तरह के आलोचक में विचार एक सुव्यवस्थित और श्रृंखलित ढंग से न कहे गये हों जिन्हें तर्क जाल से चारों ओर घेरने का प्रयत्न न किया गया हो, पर जो कुछ भी उन्होंने कहा है उसका महत्व इससे कम नहीं हो सकता। भावतंरगवाद (Romanticism) के उन्नायक कवि वर्ड्स्वर्थ, कॉलरिज, शेली इत्यादि ने काव्य तथा कला के सम्बन्ध में जो विचार प्रगट किये हैं वे किसी भी तटस्थ आलोचक से कम महत्वपूर्ण नहीं हैं और साहित्य के पाठकों के द्वारा कम आदर से नहीं देखे जाते।

महादेवी जी का काव्य-शास्त्र भी अंग्रेजी के इन्हीं भावतरङ्गवादी कवियों की तरह है। एक तो छायावादी काव्य जिसकी महादेवी प्रधान प्रतिनिधि हैं और भावतरङ्गवाद में अत्यधिक समानता है ही, यहाँ तक कि बहुत से लोगों ने इसे छायावाद न कह कर रोमांसवाद कहना ही अच्छा समझा है। जिस तरह अंग्रेजी के भावतरङ्गवादी कवियों ने अपने काव्य-संग्रहों के लिये लम्बी-लम्बी भूमिकाएँ लिख कर अपने काव्यात्मक दृष्टिकोण को स्पष्ट किया है उसी तरह पंत, महादेवी इत्यादि ने भी अपनी पुस्तकों की भूमिकाएँ लिखकर स्थूल की इतिवृत्तात्मकता के विरोध में खड़ी होने वाली सूक्ष्म सौन्दर्यानुभूति तथा प्रकृति के खण्ड-खण्ड को चैतन्य के पुलक स्पर्श से अनुप्राणित पाने वाली मनोवृत्ति के आधार पर रचित कविताओं को स्पष्ट किया है। इस तरह महादेवी ने 'आधुनिक कवि' और 'दीप-शिखा' की भूमिकाओं में जिन विचारों का प्रतिपादन किया है उससे हिन्दी आलोचना के प्रवाह को एक नूतन गति मिलने की सम्भावना है। अभी इनमें प्रतिपादित विचारों को गम्भीरता पूर्वक मनन करने की ओर लोगों की दृष्टि नहीं गई है पर जब भी इनका अध्ययन होने लगेगा तो मेरा विश्वास है, पता चलेगा, कि अपने काव्य की तरह महादेवी ने हिन्दी काव्य-शास्त्र के लिए भी नया और बहु-सम्भावना-गर्भित मार्ग का उद्घाटन किया है।

महादेवी जी अथवा छायावादी काव्य के प्रादुर्भाव के पूर्व हिन्दी में आलोचना की क्या अवस्था थी इसी प्रश्न पर विचार कीजिये। यह देखिये कि

उस समय आलोचक जब किसी काव्य का मूल्यांकन या उसके महत्व-निरूपण की ओर अग्रसर होता था तो उसके सामने सबसे बड़ा प्रश्न क्या रहता था। सब आलोचनाओं का मूल प्रश्न यही रहा है और रहेगा कि कविता की कसौटी क्या है ? उस पर विचार करने के लिए हम किस मापदण्ड से काम लें, पूर्ववर्ती आलोचक इस प्रश्न को इस ढंग से अपने सामने रखते थे। आलोच्य काव्यकृति के मूल्यांकन की कसौटी को आलोचक कहाँ ढूँढ़ें ? स्वयं उसका मस्तिष्क जिस कसौटी की रूप-रेखा निर्माण करता है उससे काम लिया जाय अथवा दूसरे आलोचक जिस परम्परा-विहित-रस-दृष्टि का आदर्श रख गये हैं उनके सहारे काव्य का मूल्यांकन किया जाय। दूसरे शब्दों में आलोचक अपने विचारों को प्रधानता दे अथवा परम्परागत सिद्धान्तों को। आलोचना का यही रूप पद्मसिंह जी शर्मा तथा मिश्रबन्धुओं तक था। आलोचक एक बड़ी ऊँची भूमि पर खड़े होकर कवि से एक बड़े ही बुजुर्गाना लहज़े में बातें करता था मानों कवि एक तुच्छ जीव हो जिसे अपने से ख़ास दूरी पर रखना ठीक है। कवि ने काव्य-रचना की ओर बस उसका कर्त्तव्य समाप्त हो गया। उसकी एक सीमा खींच दी गई है, वह उस सीमान्त रेखा से आगे नहीं बढ़ सकता। उसके आगे आलोचक का आधिपत्य है। वह चाहे अपने शासन-क्षेत्र में अपनी सोच-समझ से परिस्थिति के अनुकूल नये नियमों को लागू करे अथवा अपने पूर्ववर्ती शासकों के नियमोंको ही चलने दे। उसी क्षेत्र पर आलोचक की ही वैजयन्ती फहरायेगी,कवि की नहीं। आलोचक शासक है, कवि शासित। स्व०शुक्ल जी में थोड़ी सी उदारता थी। सामयिक अन्य क्षेत्र में प्रचलित विचार धाराओं के प्रति उनका हृदय प्रांगण बन्द नहीं था। उन्होंने काव्यालोचन के क्षेत्र में अन्य-अन्य वर्गों को भी थोड़ा स्थान दिया, धर्म को, लोकसंग्रह को, नीति को। उन्होंने थोड़ा कवियों को भी साथ लिया, कवियों को कहना ठीक न होगा। कवि तुलसी को कहना अधिक ठीक होगा। उन्होंने कहा कि कविता पर विचार करते समय यह देख लेना बुरा नहीं है कि सगुण-धारा के भक्त कवि तुलसी के काव्य से उसको समर्थन मिलता है या नहीं।

इस समय आलोचना के क्षेत्र में महादेवी इत्यादि जैसी भावतरङ्गवादी विचारक आये और उन्होंने कहा कि आज तक काव्य-क्षेत्र के सामने आलोचना के प्रश्न को जिस ढंग से रखा गया है वह भ्रामक और त्रुटिपूर्ण है। उन्होंने कहा कि काव्य-शास्त्र के सामने मुख्य प्रश्न यह नहीं है कि काव्य की कसौटी आलोचक के अन्दर पाई जाय या बाहर। मुख्य प्रश्न यह है कि काव्य

का सच्चा मापदण्ड कवि की रचना के अन्दर से ही ढूँढ़ निकाला जाय या कहीं बाहर से। काव्य-शास्त्र का मुख्य प्रश्न यही है और इसी आधार पर आलोचना की लड़ाई का निपटारा होना चाहिये। हमें दो ही बातें देखनी चाहिए कि कवि की मौलिक प्रेरणा में कहाँ तक स्पष्टता है, दृढ़ता है, स्फूर्ति है, निर्भीकता है और कहाँ तक उसकी अभिव्यक्ति के साथ न्याय हुआ है। अथवा हमें काव्यकी आलोचना करते हुए यह भी देखना चाहिये कि यह मूल प्रेरणा कहाँ तक सत्य और ठीक है और इसमें कलात्मक रूप धारण करने की कहाँ तक स्वाभाविक अनुरूपता है और अभिव्यक्ति में जो कौशल-प्रदर्शन है वह कहाँ तक काव्य के जीवित सिद्धान्तों के अनुरूप है।

महादेवी जी ने जो साहित्य और काव्य सम्बन्धी विचार प्रकट किये हैं उनसे यही निष्कर्ष निकाला जा सकता है। यह निष्कर्ष निकालना कहाँ तक ठीक है इसका विचार अभी ही होगा। पर यदि ऐसी बात है तो यह आलोचना के क्षेत्र में एक महान् क्रान्तिकारी परिवर्तन है। इसका अर्थ होता है कि आलोचना का संचालन-सूत्र आलोचक के हाथ से छिन कर कवि के हाथों में आ रहा है। आज तक वहाँ का सम्राट आलोचक रहा है, पर अब राजमुकुट कवि के सिर पर बाँधा जा रहा है। आज के प्रजातन्त्रीय-युग में जिस तरह यह विचार-धारा फैलती जा रही है कि संसार की सम्पत्ति पर उन्हीं लोगों का अधिकार है जिनके श्रम से उसकी उत्पत्ति होती है और उन्हीं को उनके उपभोग, अथवा लाभालाभ प्राप्ति करने का अधिकार है, उसी तरह काव्य के महत्त्व-निरूपण में भी कवि व्यक्ति की प्रधानता होनी चाहिये, ऐसा नहीं कि कवि बेचारा काव्य की रचना करे और उसका उपभोक्ता हो आलोचक।

"कविः करोति काव्यानि, स्वादं जानन्ति पण्डिताः।"

यदि कोई काव्य की आलोचना करता है तो उसे कवि बनना पड़ेगा। शेक्सपियर की रचना के साथ न्याय करने के लिए अपने में, कल्पित ही सही, पर कुछ शेक्सपियरत्व तो लाना ही पड़ेगा। यह कवि की विजय है; उसके जन्म-सिद्ध अधिकारों की घोषणा है जो अंग्रेजी के रोमांटिक कवियों के कण्ठ-स्वर से निस्सृत हुई थी और हिन्दी में महादेवी प्रमुख छायावादी कवियों की रागिनी से।

महादेवी आपसे कहेगी कि यदि आप साहित्य के साथ न्याय करना चाहते हैं तो आप कविता और साहित्य के स्वाभाविक नियमों में ही उसकी यथार्थ कसौटी खोजिए। एक किसी कवि विशेष, मसलन तुलसी की रचना में नहीं, साहित्य तो प्रकृति के ज़र्रे ज़र्रे, वायु की सरसराहट में, पत्तियों के

कलरव में, बालक के मुस्कान में, और क्रोधाभिभूत मानव के अकाण्ड ताण्डव में छिपा है। वहीं आपको सच्चे काव्य और सच्चे साहित्य की कसौटी मिलेगी। जिस काव्य की आलोचना करने आप जा रहे हैं, उस काव्य में भी नहीं, उस कवि में भी नहीं, पर साधारण कवि में—उस कवि में जिसके अभिलेख मानवता के पृष्ठ पर अमिट अक्षरों में अङ्कित हैं। "साहित्य का आधार कभी आंशिक जीवन नहीं होता है, सम्पूर्ण जीवन होता है। साहित्य में मनुष्य की बुद्धि और भावना इस प्रकार मिल जाती है जैसे धूप-छाँही वस्त्र में दो रंगों के तार जो अपनी-अपनी भिन्नता के कारण ही अपने रंगों से भिन्न एक तीसरे रंग की सृष्टि करते हैं। हमारी मानसिक वृत्तियों की ऐसी सामञ्जस्यपूर्ण एकता साहित्य के अतिरिक्त और कहीं भी सम्भव नहीं। उसके लिए हमारा न अन्तर्जगत् त्याज्य है और न बाह्य, क्योंकि उसका विषय सम्पूर्ण जीवन हैं, आंशिक नहीं" (आधुनिक कवि, पृष्ठ ४) कविता क्या है, कवि कौन है ? इन्हीं मौलिक प्रश्नों को ठीक हल करना चाहिये, तभी हमारी साहित्यिक बुद्धि-तुला निश्चित हो सकेगी। यदि इन मौलिक प्रश्नों की समस्या को सुलझा सकें तो तब हमारा निर्णय अचूक होगा। अतः आप पायेंगे कि महादेवी ने कविता क्या है, साहित्य क्या है—इन प्रश्नों की छानबीन में अधिक परिश्रम किया है और अपने कुछ सिद्धान्त निकाले हैं।

महादेवी के कविता के मूलोद्देश्य के बारे में जो विचार हैं उनको अंग्रेजी के एक वाक्य के द्वारा अभिव्यक्त किया जा सकता है – Poetry is born of aesthetic mother and utilitarian father अर्थात् कविता की उत्पत्ति सौन्दर्यवादी माँ और उपयोगितावादी पिता से हुई है। अतः यह दोनों के गुण और दोषों की अधिकारिणी रही हैं। सत्य काव्य का साध्य और सौन्दर्य उसका साधन है। 'दीपशिखा' के 'चिन्तन के कुछ क्षण' में की प्रथम पंक्ति में ही कह कर मानों महादेवी ने अपने काव्य-संबन्धी व्यापक मंतव्य को स्पष्ट कर दिया है।

अंग्रेजी रोमांटिक आलोचकों में हेज़लिट ने कविता की मूल-प्रवृत्ति को deepest and most universal spring of humun nature कहा है और अकाट्य शब्दों में घोषणा की है कि कविता में ही हमारा वास्तविक जीवन पूंजीभूत रहता है और वही जीवन है। मनुष्य में काव्य के रसास्वादन की जहाँ तक शक्ति है वहीं तक ही उसमें जीवन है। साधारण मानव के व्यक्तित्व में कवि का शाश्वत निवास रहता है, उसी के नाते वह आलोचक हो सकता है। कवि जब तक आलोचक के हृदय को छूकर

स्पन्दित नहीं कर देता, तब तक उसके कथन का कुछ अधिक मोल नहीं रह जाता। आलोचक चाहे राजनीतिज्ञ हो, नीतिवादी हो, साम्यवादी, कम्यूनिस्ट हो उसका कवि ही उसे सच्चा उपभोक्ता तथा व्याख्याता बना सकेगा।

कहने का यह अर्थ है कि महादेवी ने आलोचना की समस्या को इस ढंग से हमारे सामने रखा जहाँ आज तक के निरादृत कवि की प्रतिष्ठा बढ़ी। इस दृष्टि को अपनाने से हमारा काव्य-शास्त्र समृद्ध होगा—इसमें सन्देह नहीं।

महादेवी के काव्य-शास्त्रीय विचारों का सबसे बड़ा महत्व यह है कि उन्होंने काव्य को जीवन की विशाल और स्वाभाविक पृष्ठभूमि पर रखकर समझने और समझाने की सिफ़ारिश की है। काव्य में जीवन की माँग शुक्ल जी ने भी कम नहीं की है, पर जीवन शब्द से उनका अर्थ होता था 'रामचरितमानस' में अभिव्यक्त जीवन से अथवा अपने दुर्बल क्षणों में वे जीवन का अर्थ अपने अर्थों में समझे गये जीवन से करते थे। पर महादेवी के सामने जीवन अपने पूर्णव्यापकत्व के साथ उपस्थित है। यही कारण है, कि एक ओर उन्होंने प्रगतिवाद की त्रुटियों का विश्लेषण किया है वहाँ छायावाद की कमियों की ओर से आँखें नहीं मूँद लीं। उन्होंने छायावाद के सम्बन्ध में कहा है कि "छायावाद के कवि को एक नये सौन्दर्य-लोक में ही यह रागात्मक दृष्टिकोण मिला, जीवन में नहीं, इसी से वह अपूर्ण है" यह छायावाद की बड़ी कड़ी आलोचना है। शुक्ल जी ने भी तुलसी की 'कुछ खटकने वाली बातों' की ओर हमारा ध्यान आकर्षित नहीं किया है सो बात नहीं, पर वे छोटी मोटी त्रुटियाँ हैं जिनकी अवस्थिति से काव्य पर कोई विशेष अपकर्षक प्रभाव नहीं पड़ता। जहाँ तक मौलिक दृष्टिकोण का प्रश्न है, जिसने तुलसी काव्य के रूप में साकारता प्राप्त की है उसके प्रति वे नतमस्तक ही रहे हैं। पर महादेवी ने छायावाद की मौलिक त्रुटि की ओर निर्देश किया है। आज के कवियों से भी उनकी यही शिकायत है कि उन्होंने जीवन को उसके सक्रिय संवेदन के साथ स्वीकार न करके उसको एक विशेष बौद्धिक दृष्टिकोण से छू भर दिया है और उन्होंने ललकारा है कि वे "अध्ययन में मिली जीवन की चित्रशाला से बाहर आकर, जड़ सिद्धान्तों का पाथेय छोड़ कर, अपनी सम्पूर्ण संवेदन शक्ति के साथ जीवन में घुल-मिल जावें।"

महादेवी की काव्य-साधना

प्रकाशचन्द्र गुप्त

['कवयित्री के मन में एक हूक उठती है, वह गाने लगती है—इससे कुछ मतलब नहीं क्या ? इन गीतों में एक कहीं कुछ दूर की पुकार है, पवन का एक झोंका, लहरों की एक करवट, तारों का कुछ संदेश ।

'जब असीम से हो जावेगा
मेरी लघु सीमा का मेल—।'

तम के झकझोरों से अपने क्षीण दीपक को अंचल में ढाँप कर नचाने का प्रयत्न कर रही रजनी-बाला किसी अनंत प्रतीक्षा में लीन ।

साधक की चिर-खोज से निरन्तर उनका काव्य आप्लावित है ।

चिर-अतृप्ति की प्यास से उनका काव्य आक्रान्त है ।

कुछ खोजते हुए का भाव निरन्तर उनकी कविता में है । तड़ित् के समान एक शब्द या वाक्य का आलोक इस काव्याकाश में पलभर के लिए हो जाता है, फिर वही गहनतम अँधेरा; और क्षीण दीपक की जुगनू-सी ज्योति में किसी अनजाने प्रियतम की खोज और प्रतीक्षा । चिर-विरह और निराशा ही उनके काव्य के प्राण और आधार हैं, किन्तु चिर-मिलन का भाव भी अनायास ही गीतों में पुलक उठता है ।']

सुन्दर मख़मल के कोमल कालीनों से भरा कमरा, मन्द-मन्द स्मित हास्य बखेरता दीपक, बाहर तारों से भरा अनन्त आकाश, गुन-गुन करती कवयित्री की वाणी—ऐसी कल्पना हमारे मन में उठती है । कम से कम श्रीमती महादेवी वर्मा के कविता-संसार का तो यह ठीक ही चित्र लगता है ।

घुल-घुल कर गलने वाली शमा, मज़ार पर जलाया दीपक, ओस के आँसू, कोई अनन्त प्रतीक्षा, अनन्य विरह, आपकी कविता का ध्यान करते ही ये चित्र हमारी कल्पना में घूम जाते हैं।

'नीहार', 'रश्मि', 'नीरजा', 'सान्ध्यगीत' और 'दीपशिखा' आपकी यात्रा के चरणचिह्न हैं। छायावादी पन्त से प्रभावित 'नीहार' के झिलमिल उदय से अब तक आपके काव्य का प्रचुर विकास और प्रसार हो चुका है। 'रश्मि' और 'नीरजा' में आपकी काव्य-प्रेरणा पूर्ण वयःप्राप्त और प्रौढ़ हो चुकी है। 'सान्ध्य-गीत' क्या सचमुच आपके काव्य-जीवन का सान्ध्य-गीत होगा? क्योंकि आपके काव्य की 'दीपशिखा' कुछ मन्द और हल्की पड़ रही है। आपके गीतों में पच्चीकारी अधिक और भावना कम हो चली है। आपका मौन अधिकाधिक गहरा और गम्भीर होता जा रहा है। इधर आपका ध्यान देश और समाज की समस्याओं की ओर बरबस खिंचा है और इसका प्रभाव आपके साहित्य पर भी पड़ेगा ही।

आज श्रीमती महादेवी वर्मा का आसन हिन्दी काव्य-जगत् में बहुत ऊँचा है। 'नीहार' के बाद से ही आपकी प्रतिभा का स्वतन्त्र विकास हुआ और अब आपके काव्य के अनेक गुण हमको अनायास ही स्मरण हो आते हैं—अतिरञ्जित भावना, कल्पना, निराशा, सुन्दर शब्द-विन्यास और रेखा-चित्र, अमिट वेदना, एक अनन्त खोज; इन गुणों की आधुनिक हिन्दी-काव्य पर स्पष्ट छाप है।

'नीहार' में श्रीमती महादेवी वर्मा के काव्य की रूप-रेखा बन रही है। एक अव्यक्त पीड़ा इन छन्दों में भी है, किन्तु उसका कोई स्थिर रूप नहीं। कवयित्री के मन में एक हूक उठती है, वह गाने लगती है—इससे कुछ मतलब नहीं क्या? इन गीतों में एक कहीं कुछ दूर की पुकार है, पवन का एक झोंका, लहरों की एक करवट, तारों का कुछ सन्देश :

> 'जब असीम से हो जायेगा
> मेरी लघु सीमा का मेल—'

इस पुकार को 'छायावाद' कहा गया है। पन्त के 'मौन-निमन्त्रण' में इस छायावाद का सुन्दर, सुगढ़ स्वरूप हमें देखने को मिलता है, इस कविता का तत्कालीन तरुण गीतकारों पर गहरा प्रभाव पड़ा। चतुर्दिक् इसकी प्रतिध्वनि सुनाई पड़ी। विस्मय-भाव ही इस छायावाद का प्रधान गुण था :

> 'झकोरों से [illegible]रोहक सन्देश
> कह रहा हो छाया का मौन

सुख आहों का दीन विषाद
पूछता हो, आता है कौन ?'

अथवा —

'अवनि-अम्बर की रुपहली सीप में
तरल मोती-सा जलधि जब काँपता,
तैरते घन मृदुल हिम के पुञ्ज-से,
ज्योत्स्ना के रजत पारावार में,
... ...

सुरभि बन जो थपकियाँ देता मुझे
नींद के उच्छ्वास-सा वह कौन है ?'

श्रीमती महादेवी वर्मा के काव्य में गीत-भावना प्रधान है। गीति-काव्य अन्तमुखी और अहम् में लीन होता है। हिन्दी का आधुनिक गीति-काव्य क्यों अन्तमुखी है, इसके कारण देश की सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था में मिलेंगे। 'एक बार' में श्रीमती वर्मा भारत की दशा पर क्रन्दन कर उठी हैं :

'कहता है जिनका व्यथित मौन
हम-सा निष्फल है आज कौन ?
निर्धन के धन-सी हास-रेख
जिनकी जग ने पाई न देख,
उन सूखे ओठों के विषाद
में मिल जाने दो हे उदार !
फिर एक बार बस एक बार !'

अत: आपने जीवन की पीड़ा से भागकर गीत में शरण ली, किन्तु पीड़ा गीत में बिंधी ही रही। गीत का निर्झर अवश्य अजस्र वेग से बह निकला :

'चुभते ही तेरा अरुण बान।
बहते कन-कन से फूट-फूट,
मधु के निर्झर से सजल गान !'

आप स्वयं कहती हैं—'हिन्दी काव्य का वर्तमान नवीन युग गीत-प्रधान ही कहा जायगा। हमारा व्यस्त और वैयक्तिक प्राधान्य से युक्त जीवन हमें काव्य के किसी और अङ्ग की ओर दृष्टिपात करने का अवकाश ही नहीं देना चाहता। आज हमारा हृदय ही हमारे लिए संसार है। हम अपनी प्रत्येक

साँस का इतिहास लिख रखना चाहते हैं, अपने प्रत्येक कंपन को अंकित कर लेने के लिये उत्सुक हैं और प्रत्येक स्वप्न का मूल्य पा लेने के लिए विकल हैं।

'नीरजा' और 'सान्ध्य गीत' में आपका गायन बहुत मीठा और भीना हो गया है, जैसे गीत दुःख से बोझिल आत्म-विस्मृत-सा हो गया है। आपने अपने प्राणों की जीवन-बाती जलाई है, किन्तु वह मंद-मंद जलती है :

'मधुर-मधुर मेरे दीपक जल !
युग-युग प्रतिदिन प्रतिक्षण प्रतिपल
प्रियतम का पथ आलोकित कर !
सौरभ फैला विपुल धूप बन;
मृदुल मोम सा घुल रे मृदु तन;
दे प्रकाश का सिन्धु अपरिमित
तेरे जीवन का अणु गल-गल !
पुलक-पुलक मेरे दीपक जल !'

इन गीतों का अपना विशेष गुण एक मधुर पीड़ा-भार है, जो 'नीरजा' और 'सान्ध्य-गीत' में कुछ हद तक अश्रु-धार भीग कर बह चुका है। कम से कम उसकी टीस अब उतनी असह्य नहीं। 'रश्मि' की भूमिका में कवयित्री ने अपने दुःखवाद का कुछ संकेत दिया है—

"सुख और दुःख के धूपछाँहीं डोरों से बुने हुए जीवन में मुझे केवल दुःख ही गिनते रहना क्यों इतना प्रिय है, यह बहुत लोगों के आश्चर्य का कारण है। संसार जिसे दुःख और अभाव के नाम से जानता है, वह मेरे पास नहीं है। जीवन में मुझे बहुत दुलार, बहुत आदर और बहुत मात्रा में सब कुछ मिला है, परन्तु उस पर दुःख की छाया नहीं पड़ सकी। कदाचित यह उसी की प्रतिक्रिया है कि वेदना मुझे इतनी मधुर लगने लगी है।

'इसके अतिरिक्त बचपन से ही भगवान् बुद्ध के प्रति एक भक्तिमय अनुराग होने के कारण उसकी संसार को दुःखात्मक समझने वाली फिलसफी से मेरा असमय ही परिचय हो गया था।

'अवश्य ही उस दुःखवाद को मेरे हृदय में एक नया जन्म लेना पड़ा, परन्तु आज तक उसमें पहले जन्म के कुछ संस्कार विद्यमान हैं, जिनसे मैं उसे पहिचानने में भूल नहीं कर पाती।

'दुःख मेरे निकट जीवन का ऐसा काव्य है जो सारे संसार को एक सूत्र में बाँध रखने की क्षमता रखता है।......विश्व-जीवन में अपने जीवन को,

विश्व-वेदना में अपनी वेदना को, इस प्रकार मिला देना जिस प्रकार एक जल-बिन्दु समुद्र में मिल जाता है, कवि का मोक्ष है।"

महादेवी वर्मा के काव्य की यह भावना कवयित्री की सहजप्रिय और बोधगम्य पीड़ा भी हो सकती है जो गीतों को, शैली के अमर शब्दों में, मीठा बनाती है, किन्तु हमें मानना होगा कि आधुनिक हिन्दी-काव्य का निराशावाद युग-धर्म से प्रेरित होकर संक्रान्ति-कालीन समाज की वेदना भी व्यक्त करता है।

'रश्मि' के गीतों में यह दुःख पतिंगे के समान जल-जल उठता है। इस दुःख की अभिव्यक्ति में एक अधीरता, आतुरता और अस्थिरता सी है।

'मृग मरीचिका के चिर पथ पर,
सुख आता प्यासों के पग धर,
रु हृदय के पट लेता कर'

'नीरजा' और 'सान्ध्य-गीत' में यह दुःखवाद शान्त, स्निग्ध और कोमल रूप धारण कर चुका है। आप कहती हैं :

'मुखर पिक हौले बोल,
हठीले 'हौले हौले बोल!'

आपका दुःखवाद यहाँ 'नीरजा' में बन्द भौंरे के समान केवल मन्द, मधुर, मत्त गुञ्जन कर रहा है। 'सांध्य-गीत' के वक्तव्य में आप लिखती हैं—'दुःखातिरेक की अभिव्यक्ति आर्त्त-क्रन्दन या हाहाकार द्वारा भी हो सकती है, जिसमें संयम का नितान्त अभाव है, उसकी अभिव्यक्ति नेत्रों के सजल हो जाने में है, जिसमें संयम की अधिकता के साथ आवेग के भी अपेक्षाकृत संयत हो जाने की सम्भावना रहती है, उसका प्रकाशन एक दीर्घ निःश्वास में भी है, जिसमें संयम की पूर्णता भावातिरेक को पूर्ण नहीं रहने देती, और उसका प्रकटीकरण निःस्तब्धता द्वारा भी हो सकता है जो निष्क्रिय बन जाती है। वास्तव में गीत के कवि को आर्त्त-क्रन्दन के पीछे छिपे हुए संयम से बाँधना होगा, तभी उसका गीत दूसरे के हृदय में उसी भाव का उद्रेक करने में सफल हो सकेगा।'

इस वक्तव्य की सहायता से हम आपके दुःखवाद का इतिहास समझ सकेंगे। क्रन्दन, सजल नयन, दीर्घ निःश्वास, फिर निःस्तब्धता—यह विकास का स्वाभाविक क्रम है।

'दीपशिखा' के गीतों में भाषा मोती के समान स्वच्छ और निर्मल है, उसके शब्द-चित्र अनायास ही हृदय मथ डालते हैं। किन्तु इस प्रौढ़ काव्य-प्रेरणा

के पीछे किसी प्रबल झंझावात का अनुभव भी अवश्य है।

हम श्रीमती महादेवी वर्मा के काव्य को एक अनोखी चित्रशाला के रूप में भी देख सकते हैं। आपके छन्द अधिकतर शब्द-चित्र हैं। आपकी अलंकृत भाषा और प्रकृति-साधना शब्द-चित्रों में ही व्यक्त हुई है। आपके विचारों की अभिव्यक्ति सहज ही रूपक में होती है, क्योंकि आपकी अन्तरात्मा काव्य-सिक्त है :

'नयन की नीलम-तुला पर मोतियों से प्यार तोला;
कर रहा व्यापार कब से मृत्यु से यह प्राण भोला !'

प्रकृति-बाला के अगणित, अनुपम चित्र आपकी कविता में हैं। इनमें निरीक्षण की मात्रा कम हो सकती है, किन्तु चिन्तन की नहीं। ये चित्र कल्पना-प्रधान हैं। हम आपके प्रकृति-चित्र को एक विशाल तम के पट-रूप में देखते हैं और उस पटभूमि पर झिलमिलाते तारकदीप हैं अथवा चाँदनी की स्मित हँसी, क्यों अँधेरा ही आपको प्रिय है :

'करुणामय को भाता है
तम के परदों में आना,
हे नभ की दीपावलियों !
तुम पल भर को बुझ जाना।'

किन्तु,

'तममय तुषारमय कोने में
छेड़ा जब दीपक-राग एक,
प्राणों-प्राणों के मन्दिर में
जल उठे बुझे दीपक अनेक !'

आपकी चित्रशाला में प्रकृति के अनेक रेखा-चित्र दृढ़, सुष्ठु रेखाओं में अंकित हैं :

'कनक-से दिन, मोती-सी रात,
सुनहली साँझ, गुलाबी प्रात;
मिटाता रँगता बारम्बार,
कौन जग का यह चित्राधार ?
शून्य नभ में तम का चुम्बन,
जला देता असंख्य उडुगन;
बुझा क्यों उनको जाती मूक
भोर ही उजियाले की फूँक ?

गुलालों से रवि का पथ लीप
जला पश्चिम में पहला दीप,
विहँसती संध्या भरी सुहाग,
दृगों से झरता स्वर्ण-पराग ;
उसे तम की बढ़ एक झकोर,
उड़ाकर ले जाती किस ओर ?'

तम के झकझोरों से अपने क्षीण दीपक को अंचल में ढाँपकर बचाने का प्रयत्न कर रही रजनी-बाला—किसी अनन्त प्रतीक्षा में लीन—प्रकृति का यह रूप आप निरन्तर देखती हैं।

श्रीमती महादेवी वर्मा के गीतों का एक बड़ा आकर्षण उनकी किन्हीं अनमोल साँचों में गढ़ी भाषा है। भाषा की दृष्टि से आप आज हिन्दी के किसी भी कवि से पीछे नहीं। पन्त जी की भाषा क्लिष्ट और संस्कृत-भार से आक्रान्त है। 'निराला' के शब्दों में अबाध वेग अवश्य हैं, किन्तु उनकी भाषा में यह पच्चीकारी नहीं। अन्य कवियों में इस प्रकार चुन-चुनकर मोतियों की जड़ाई नहीं मिलती। भगवतीचरण वर्मा और बच्चन सर्व-साधारण के अधिक निकट हैं। किन्तु इस मधुर निर्झरिणी का मदिर कलकल निनाद अद्वितीय है। यह शब्दों की शिल्पकला आपकी अपनी विशेषता है।

यह भाषा अलंकार-भार से झुकी अवश्य है। किन्तु बड़े चतुर कारीगर के गढ़े ये अलंकार हैं। एक-एक शब्द चुन-चुनकर इस शिल्पी ने सजाया है :

'दुख से आविल, सुख से पंकिल;
बुद्‌बुद् से स्वप्नों से फेनिल—'

'युग युग से अधीर' कवयित्री की भाषा है। आपके अधिकतर शब्द अमिश्रित संस्कृत से निकले हैं और आपकी ध्वनियाँ सदैव कोमल हैं। हिन्दी-काव्य-परम्परा में बिहारी, देव, केशव और मतिराम इसी श्रेणी के शिल्पी थे। शब्दों के इस मदिर आसव से बेसुध पाठक ध्वनि-चमत्कार में लीन रह जाता है। इन शब्द-चित्रों के पीछे क्या है, वह नहीं पूछता।

महादेवी वर्मा की कविता भावना-प्रधान और कल्पना प्रभात है। कोई निर्मम बुद्धिवाद इस काव्य की पटभूमि नहीं। कुछ खोजते हुए का भाव निरन्तर इस कविता में है। तड़ित् के समान एक शब्द या वाक्य का आलोक इस काव्याकाश में पल-भर के लिए हो जाता है, फिर वही गहनतम अँधेरा; और क्षीण दीपक की जगनू-सी ज्योति में किसी अनजाने प्रियतम की खोज और प्रतीक्षा।

चिर-विरह और निराशा ही इस काव्य के प्राण और आधार हैं, किन्तु चिर मिलन का भाव भी अनायास ही गीत में पुलक उठता है :

'तुम मुझमें प्रिय ! फिर परिचय क्या।
रोम-रोम में नन्दन पुलकित ;
साँस-साँस में जीवन शत-शत ;
स्वप्न-स्वप्न में विश्व अपरिचित ;
मुझमें नित बनते मिटते प्रिय !
स्वर्ग मुझे क्या, निष्क्रिय लय क्या ?'

'रश्मि' में आप कहती हैं :

'मैं तुमसे हूँ एक, एक है
जैसे रश्मि प्रकाश ;
मैं तुमसे हूँ भिन्न, भिन्न ज्यों
घन से तड़ित् विलास।'

इस भावना को हम महादेवी का रहस्यवाद कह सकते हैं। साधक की चिर-खोज से निरन्तर यह काव्य अप्लावित है :

'पथ देख बिता दी रैन
मैं प्रिय पहचानी नहीं !
तम ने धोया नभ-पंथ
सुवासित हिमजल से ;
सूने आँगन में दीप
जला दिये झिलमिल से ;
आ प्रात बुझा गया कौन
अपरिचित, जानी नहीं
मैं प्रिय पहचानी नहीं !'

चिर-अतृप्ति की प्यास से यह काव्य आक्रान्त है :

'तुम्हें बाँध पाती सपने में
तो चिर जीवन प्यास-बुझा
लेती उस छोटे क्षण अपने में !'

इस अनन्य साधना के बाद कवयित्री ने यह निष्कर्ष निकाला है कि मोम के समान गल-गलकर ही साधक जीवन सार्थक करता है और अपने प्रिय से मिलता है, और मर मिटने में ही चिर-मिलन की निद्रा है :

'तम में हो चल छाया का क्षय ;
सीमित की असीम में चिर लय ;
एक हार में हों शत-शत जय ;
सजनि ! विश्व का कण-कण मुझको
आज कहेगा चिर सुहागिनी ।'

इस प्रकार जहाँ आपकी कविता का एक छोर आधुनिक छायावाद को छूता है, दूसरा हिन्दी के भक्त और रहस्यवादी कवियों की काव्य-परम्परा को भी । आप हमारी परम्परागत काव्य-साधना को नई रूप-रेखा देकर आगे बढ़ाती हैं :

'है युगों की साधना से
प्राण का क्रन्दन सुलाया;
आज लघु जीवन किसी
निःसीम प्रियतम में समाया !'

किन्तु समाज की व्यवस्था पर जो आघात शुरू के गीतों में था, वह बीच में दूर हो गया था और आत्म-विस्मरण का भाव ही उनके काव्य का प्रधान गुण था । आपका काव्य बहिर्जगत् की विषमता भूल कर ब्रह्म में निलय होना चाहता था, किन्तु केवल अहम् के चतुर्दिक चक्कर काट कर आपकी प्रेरणा को संतोष न मिल सका । 'वंग-दर्शन' उसको बाह्य-जगत् की ओर लाया है ।

महादेवी की प्रणयानुभूति

विश्वम्भर 'मानव'

['प्रेम का पहला लक्षण है अंतर में एक प्रकार की कोमलता का जग पड़ना। जहाँ आकर्षण ने जन्म लिया नहीं कि व्यक्ति मधुरता मिश्रित किसी शीतल विह्वलता का अत्यन्त तीव्र अनुभव करने लगता है। उस समय एक से एक कोमल, एक से एक मधुर, एक से एक काव्यमयी भावनाएँ न जाने अन्तः संज्ञा के किस स्तर के उद्गम में उमड़ कर ओठों तक आती हैं जिनमें से कुछ व्यक्त हो जातीं और कुछ मूक रहकर प्रेमास्पद के इंगित को निहारती रहती हैं।

महादेवी जी की प्रणयानुभूति अलौकिक है। युग-युग की वियुक्त आत्मा की व्यथा को व्यक्त करने की आकुलता और उसकी अभिव्यक्ति की अनिर्वचनीय मधुरता के बीच ही महादेवी का मन अभी तक भ्रमण करता रहा है।']

जैसे अतल सागर के हृदय से उठने वाली लहरों, सीमाहीन अवकाश के अन्तर से बहने वाली हिलोरों, सूर्य के नयन-कोर से बरसने वाली किरणों और सुधानिधि के आनन से झरने वाली रजत-रेखाओं की कोई सीमा नहीं, उसी प्रकार मन के केन्द्र-बिंदु से उगने वाली भावनाओं की कोई इति भी नहीं। विश्लेषण, अनुमान और अनुभव से इतना सिद्ध है कि इन चेतना-रश्मियों की उद्गम-वृत्ति किसी न किसी रूप में आनन्दमयी है। यह 'आनन्द' प्राणी के मानस में स्नेह-रस बन कर संख्यातीत लहर-बुद्बुद्-आवर्तों में परिवर्तित हो जाता है। मानव का मन ही नहीं, बाह्य-सृष्टि भी यही दुहराती है। कहीं उषा मुस्कराती, शतदल खिलते और मधुर मकरन्द पान करते हैं; कहीं खग

कूजते, पंख आकाश-पथ मापते और फिर दिनान्त में चारा लेकर नीड़ों की ओर लौट आते हैं; कहीं सन्ध्या घिरती, ज्योत्स्ना फूटती और कुमुदिनी खिल पड़ती है; कहीं मेघ घिरते, गर्जन होता और मयूर नृत्य करते हैं; कहीं गिरिवर पिघलते, नदियाँ उमड़तीं और समुद्र का हृदय भरता है; कहीं नयन मिलते, आकर्षण बढ़ता और प्रतीक्षा होती है; कहीं दीनता बरसती, बरौनियाँ भीगतीं और सेवा-पथ स्वीकार करना पड़ता है; कहीं स्वतन्त्रता छिनती, देशानुराग जन्म लेता और प्राणों की आहुतियाँ दी जाती हैं। द्वेष, क्रोध यहाँ तक कि हत्या तक के जो उदाहरण सुनाई पड़ते हैं उनके मूल में भी प्रायः प्रेम रहता है।

प्रेम जीवन की सब से व्यापक वृत्ति है। प्रकृति और प्राणीमात्र से ऊँचा उठकर यही प्रेम जब इनके स्रष्टा की ओर मुड़ जाता है तब वही लौकिक से अलौकिक होकर एक अनिर्वचनीय आनन्द की अनुभूति जगाता है। महादेवी जी की प्रणयानुभूति अलौकिक है—अर्थात् प्रेम का वह मधुर संबंध जो प्रेमी और प्रेमिका के मध्य चलता है, उनकी आत्मा ने केवल उस परम पुरुष से स्थापित किया है। इसके अतिरिक्त मन की वह ममता जो माता के हृदय की विभूति है, वह अनुराग जो बहिन के अंतर में भाई के प्रति लहराता है, वह करुणा जो किसी भी दीन पर अनायास अपने अंचल की शीतल छाया डालती है, वह मुग्धता जो प्राकृतिक दृश्यों में लीनता का कारण बनती है अन्यत्र प्रदर्शित हुई है। कविताओं में तो वे एक प्रणयिनी के रूप में ही दिखाई देती हैं, पर वे माँ के रूप में, बहिन के रूप में, स्वामिनी और प्रकृति-प्रेमिका के रूप में भी अन्यतम हैं–यह उनके संस्मरणों के संकलनों अर्थात 'अतीत के चलचित्र' और 'स्मृति की रेखाएँ' से जाना जा सकता है। अब 'स्मृति की रेखाओं' की आत्मा में झाँकिये।

१—भक्तिन और मेरे बीच में सेवक-स्वामी का संबन्ध है। यह कहना कठिन है, क्योंकि ऐसा कोई स्वामी नहीं हो सकता जो इच्छा होने पर भी सेवक को अपनी सेवा से न हटा सके और ऐसा कोई सेवक भी नहीं सुना गया जो स्वामी से चले जाने का आदेश पाकर अवज्ञा से हँस दे।

२—एक युग से अधिक समय की अवधि में मेरे पास एक ही परिचारक, एक ही ग्वाला, एक ही धोबी और एक ही ताँगे वाला रहा है। परिवर्तन का कारण मृत्यु के अतिरिक्त और कुछ हो सकता है इसे न वे जानते हैं न मैं।

३—तब से मुन्नू की माई 'हम तौ आज नैहरे जाब' कहकर प्रायः यहाँ

चली आती है । मेरा घर उसका एक मात्र नैहर है यह सोचकर मन व्यथित होने लगता है ।

४—मन में सोचा अच्छा भाई मिला है । बचपन में मुझे लोग चीनी कहकर चिढ़ाया करते थे । सन्देह होने लगा उस चिढ़ाने में कोई तत्त्व भी रहा होगा । मेरे पास रुपया रहना ही कठिन है, अधिक रुपये की चर्चा ही क्या ? पर कुछ अपने पास खोज-ढूँढकर और कुछ दूसरों से उधार लेकर मैंने चीनी के जाने का प्रबंध किया । वह जन्म का दुखियारा, मातृ-पितृहीन और बहिन से बिछुड़ा हुआ चीनी भाई अपने समस्त स्नेह के एकमात्र आधार चीन में पहुँचने का आत्म-तोष पागया है, इसका कोई प्रमाण नहीं—पर मेरा मन यही कहता है ।

५—गर्मियों में जहाँ तहाँ फेंकी हुई आम की गुठली जब वर्षा में जम उगती हैं तब उसके पास मुझ से अधिक सतर्क माली दूसरा नहीं रहता । घर के किसी कोने में चिड़िया जब घोंसला बना लेती है तब उसे मुझसे अधिक सजग प्रहरी दूसरा नहीं मिल सकता । जिसका दूध लग जाने से आँख फूट जाती है वह थूहर भी मेरे सयत्न लगाए आम के पार्श्व में गर्व से सिर उठाये खड़ा रहता है । धँसकर न निकालने वाले काँटों से जड़ा हुआ भटकटैया सुनहरे रेशम के लच्छों में ढके और उजले कोमल मोतियों से जड़े मक्का के भुट्टे के निकट साधिकार आसन जमा लेता है ।

इस प्रकार एक ओर आध्यात्मिक अन्वेषण और अलौकिक प्रणय-लीनता है। अपनी सत्ता को अभी तक साभिमान बनाये रखने पर भी महादेवी जी ने दूसरी ओर प्रकृति की तुच्छ से तुच्छ वस्तु और समाज में 'छोटे' की संज्ञा पाने वाले अनादृत व्यक्तियों के सुख-दुःख में अहर्निश जीवंत भाग लेकर अपने को भुला दिया है । वे केवल उन व्यक्तियों में से नहीं हैं जो कल्पना से भारतीय हाहाकार को चित्रित कर क्रान्ति या प्रगति के अग्रदूत कहलाते हैं, वरन् उन सच्ची आत्माओं में से हैं जो शीत-घाम-वर्षा में अपने पैरों से घूमकर झोपड़ियों और परित्यक्त पथों पर अपनी आँखों से देखकर अनिवार्य होने पर भी अपने स्वास्थ्य की चिन्ता न करते हुए, अपने ही हाथों से वास्तविक दीनों और व्यथितों की सेवा करती फिरती हैं । एक दार्शनिक की आत्मा में करुणा की ऐसी सजलता भरकर विधि ने जिस अपूर्व भारतीय महिला की सृष्टि की है उसके समान केवल वही प्रतीत होती हैं । इतना जानते हुए भी जो इन्हें हृदय से पलायनवादिनी कहते हैं वे कितने प्रगल्भ हैं । पलायन के संस्कार उनमें हैं ही नहीं । पर यदि कोई यह सोचता हो

कि काव्य-सृष्टि भी कवि को उसी विषय पर करनी होगी जिसे वह या उसका दल चुनकर दे तब उससे बड़ा अज्ञ और कोई नहीं है।

गीतों का कथा-भाग

महादेवी जी के गीतों के मूल में एक क्षीण-सी कथा-धारा बहती है। ये कविताएँ उन मुक्तकों से भिन्न कोटि की हैं जिनमें एक छन्द या रचना का दूसरे छन्द या रचना से कोई संबंध नहीं होता जैसे बिहारी के दोहे या उर्दू की ग़ज़लें। जहाँ रुचि अथवा स्थिति से शासित होने पर कवि कभी प्रेम, कभी प्रकृति, कभी समाज-सुधार और कभी देश-भक्ति पर लिखता है वहाँ उसकी कोई भी रचना निरपेक्ष होती है। आधुनिक हिन्दी कवियों के बहुत से गीत-संकलन इसी कोटि के हैं। पर 'प्रसाद' की 'आँसू' पुस्तिका एक भिन्न ही प्रकार की वस्तु है। उसके छन्दों के तरल-मोती एक विशिष्ट प्रेमिका की निष्ठुरता का अभिषेक करते हैं। महादेवी जी का प्रत्येक गीत वैसे अपने में पूर्ण है, पर वह एक विस्तृत भाव-माला का पुष्प है, अतः उसे सापेक्ष दृष्टि से देखना ही अधिक संगत होगा। उनकी रचनाओं को समझने के लिये कम से कम दो बातों का ध्यान रखना चाहिये। पहली बात तो यह है कि उनके गीत उज्ज्वल प्रेम के गीत हैं, अत: उनका उच्चारण करने के पूर्व फ्रायड को हृदय से निकाल देना चाहिए। दूसरी बात यह है कि ये गीत एक दूसरे से संबंधित हैं। 'नीहार' में आकर्षण और पीड़ा की अनुभूति, 'रश्मि' में दार्शनिक सिद्धांतों, 'नीरजा' में विरह-व्यथा, 'सांध्य-गीत' में आत्म-तोष और 'दीप-शिखा' में साधना की गति का प्रतिपादन है। अतः जैसा अभी कहा है किसी भी गीत को बीच से उखाड़ कर पढ़ने की अपेक्षा उनके सभी गीतों को एक बार पढ़कर उनकी कल्पना-भूमि और प्रणय-धारा को एक बार हृदयंगम कर लेना चाहिए। अच्छा होता वे अपने गीतों के शीर्षक दे देतीं। इससे उनके पाठकों को सुविधा होजाती। पर किसी भी कारण से यह कार्य यदि उन्हें रुचिकर प्रतीत नहीं हुआ तब उनके दार्शनिक विश्वास और अनुभूति संबंधी कुछ बातों को स्मरण रखना चाहिए।

काल-सीमा-हीन अवकाश में कोई अनादि अनन्त सो रहा (निष्क्रिय) था। एकाकीपन के भार से अकुलाकर उसने अपनी कल्पना से रंगीन (सत, रज, तम मिश्रित) स्वप्नों (जगत की विभिन्न वस्तुओं) की सृष्टि की, जिनका उद्भव, विकास और लय समुद्र में लहरों के समान उसी में होता रहता है। लहरें समुद्र होते हुए भी जैसे एक विशेष आकार में बँधने से अपने को समुद्र से भिन्न और वियुक्त समझें और किसी की आकुल खोज में

सिहरती रहें, उसी प्रकार व्यापक चेतना जब 'नाम', 'रूप' में बँध गई तब अपने को स-सीम समझने लगी और असीम के अन्वेषण के लिए विह्वल हो उठी।

'मैं वही हूँ' यह ज्ञान होने पर भी मैं उसमें छुऊँ न, थोड़ी दूर बनी रहूँ, यह अभीष्ट हुआ, क्योंकि मोक्ष, निर्वाण या लीन होने पर अपना अस्तित्व ही मिट जायगा और तब वेदना की मधुरता की उस अनुभूति का जो केवल एकाकार न होने की स्थिति में ही संभव है, भान कैसे होगा? इसी से युग-युग की वियुक्त आत्मा की व्यथा को व्यक्त करने की आकुलता और उसकी अभिव्यक्ति की अनिर्वचनीय मधुरता के बीच ही महादेवी का मन अभी तक भ्रमण करता रहा है। इतनी सी कहानी कल्पनाओं के शत-शत रंगीन रूप धारण कर 'यामा' और 'दीपशिखा' में दुहराई गयी है।

संयम

प्रेम पर लेखनी चलाने वाले प्रायः सभी कवियों में कहीं न कहीं असंयम आ गया है। इस सम्बन्ध में संस्कृत, फ़ारसी, अंग्रेज़ी, बँगला, उर्दू, हिन्दी सभी भाषाओं की एक सी दशा है। उदाहरण देकर उत्तेजना उत्पन्न करना मुझे अभीष्ट नहीं, नहीं तो प्रत्येक भाषा के श्रेष्ठतम कवियों में यह दुर्बलता देखी जा सकती है। मनुष्य अन्त में मनुष्य ही है, यही कह कर सन्तोष करना पड़ता है। हिन्दी में महात्मा तुलसीदास ही एक ऐसे कवि निकले जो प्रेम-प्रसंगों का निर्वाह संयम के साथ कर गए। प्रत्येक मनोविकार अपने मूल रूप में अत्यन्त आवेशपूर्ण होता है यह सत्य है। पर ऐसी नग्नता और आवेश की महत्ता मनोवैज्ञानिक के लिए हो तो हो, कवि के लिए नहीं है। कवि को अपनी बात संयम के साथ कहनी चाहिए। क्रोध में मनुष्य जिस समय जिह्वा पर से अपना शासन उठा लेता है उस समय वह अपने को कितना ही बड़ा वाग्वीर समझता हो पर सुनने वाले उसे अशिष्ट और असभ्य ही कहते हैं। यही क्रोध जब संयम के साथ व्यक्त होता है तब उपयुक्त ही नहीं अधिक शोभन भी प्रतीत होता है। यही दशा प्रत्येक मनोविकार की है। हिन्दी के आधुनिक कवियों ने यद्यपि रीतिकाल की शृङ्गार-प्रियता और अश्लीलता की प्रतिक्रिया में अपनी रचनाओं की सृष्टि की थी, पर उनमें भी मैथिलीशरण गुप्त जैसे एकाध कवि को छोड़ वासना की अभिव्यक्ति की कमी नहीं रही। इधर जब से प्रगतिवाद ने ज़ोर पकड़ा है तब से यथार्थवाद के नाम पर पूरी नग्नता कविता में प्रवेश कर गई है। ऐसी परिस्थितियों में जीवित रहकर और केवल प्रेम पर निरन्तर लिखने पर भी महादेवी जी ने

अपने अन्तर की जिस सात्विकता या संयम-वृत्ति का परिचय दिया है वह उनके व्यक्तित्व की महत्ता की परिचायक ही नहीं, काव्य-गरिमा का आधार-स्तम्भ भी है।

एक आक्षेप

पंडित रामचन्द्र शुक्ल, उनके शिष्यों, अनुयायियों और प्रशंसकों, प्रगति-वाद के कवियों, समीक्षकों और समर्थकों तथा और भी कई साहित्य-प्रेमियों ने अपना यह मत प्रकट किया है कि महादेवी जी अनुभूति के आधार पर नहीं अनुमान के आधार पर लिखती हैं। आध्यात्मिक-चेतना के पक्ष में तर्क के लिए संस्कृत के दार्शनिक ग्रन्थ और प्रमाण के लिए प्रागऐतिहासिक काल से लेकर अब तक ऋषियों और साधु-सन्तों की जीवनियाँ खुली पड़ी हैं पर समाजवादी ऐसी बातों पर ध्यान देने ही क्यों लगे? वहाँ तो शास्त्र के नाम पर एकमात्र अर्थशास्त्र या फिर कामशास्त्र है। मुझे पूर्ण आशंका है कि पश्चिम की अविकल धारणाओं के आधार पर यदि समाजवाद ने इस देश में अपने पैर जमाए और उसमें भारतीय परिस्थितियों के अनुकूल परिवर्तन न हुए तो आगे के कुछ वर्ष घोर नास्तिकवाद के वर्ष हैं। ऐसी दशा में आध्या-त्मवाद की रचनाओं के विपरीत प्रचार आवश्यक हो उठा है। कवि छोटे-मोटे आक्षेपों के प्रति उदासीन ही देखे गये हैं। पर कोई बात जब सीमा का अतिक्रमण कर जाती है तब कवि भी कुछ कहने को विवश हो जाता है। उर्दू के प्रसिद्ध कवि 'ग़ालिब' की ग़ज़लों पर जब यह आक्षेप किया गया कि वे अर्थहीन हैं तब उसने विरक्ति के शब्दों में लिखा था :

'न सताइश की तमन्ना न सिले की परवाह,
गर नहीं हैं मेरे अशआर में मानी न सही।'

इसी प्रकार महादेवी के काव्य पर जो आक्षेप किए गए हैं उनका उत्तर उन्होंने अपने ढंग से काव्य-ग्रंथों की भूमिकाओं में देने का प्रयत्न किया है। पर अनुभूति की यथार्थता वाले सन्देह का समाधान उन्होंने काव्य के माध्यम से ही किया है। पहिले तो लोगों की धारणा पर उन्हें आश्चर्य होता है:—

'जाने क्यों कहता है कोई,
मैं तम की उलझन में खोई?
मैं कण-कण में ढाल रही अलि! आँसू के मिस प्यार किसी का।
मैं पलकों में पाल रही हूँ यह सपना सुकुमार किसी का!'

—दीपशिखा

पर जब इस बात को सुनते-सुनते कान पक उठते हैं तब प्रति प्रश्न-पद्धति

पर उत्तर देती हुई प्रश्न करने वालों से अत्यन्त सहजभाव से अपने अनुभवों का कोई अन्य समाधान चाहती हैं :—

'जो न प्रिय पहचान पाती !
दौड़ती क्यों प्रति शिरा में प्यास विद्युत सी तरल बन ?
क्यों अचेतन रोम पाते चिर व्यथामय सजग जीवन ?
किस लिए हर साँस तम में
सजल दीपक-राग गाती ?
चाँदनी के बादलों से स्वप्न फिर फिर घेरते क्यों ?
मदिर सौरभ से सने क्षण दिवस-रात बिखरते क्यों ?
सजग स्मित क्यों चितवनों के
सुप्त प्रहरी को जगाती ?
कल्प - युग - व्यापी विरह को एक सिहरन में सँभाले,
शून्यता भर तरल मोती से मधुर सुधि - दीप वाले,
क्यों किसी के आगमन के
शकुन स्पन्दन में मनाती ?
मेघ - पथ में चिन्ह विद्युत के गए जो छोड़ प्रिय - पद,
जो न उनकी चाप का मैं जानती सन्देश उन्मद,
किसलिए पावस नयन में
प्राण में चातक बसाती ?'

—दीपशिखा

मनोदशाएँ

प्रेम का विषय जितना रोचक है, उतना विवादास्पद, उतना ही विषम। प्रेम की दशा में स्त्रियाँ कैसा अनुभव करती हैं यह सदा से मनुष्य की उत्सुकता का प्रधान विषय रहा है। नारी जो अनादि काल से मनुष्य के लिए पहेली बनी हुई है, उसके मूल में प्रमुख बात यह है कि वह पुरुष की अपेक्षा अधिक भावमयी होते हुए भी कहती कम है। फिर जिस प्रकार वह अनुभव करती है उसी प्रकार व्यक्त भी नहीं करती। कभी-कभी तो बिल्कुल उल्टी बात कहती और विपरीत आचरण करती है। मनुष्य जो बाहरी व्यवहार को प्रमुखता देता है और जल्दी ही सब कुछ जानना चाहता है उसके सम्बन्ध में भ्रान्त धारणाएँ बना लेता है। स्त्रियों के हृदय की हलचल का जो अधूरा ज्ञान हमें अभी तक प्राप्त है उसका दूसरा कारण यह है कि उस हृदय का विश्लेषक अभी तक अधिकतर पुरुष-हृदय रहा है। नारी-हृदय के

प्रेम का विश्लेषण ठीक से नारी-हृदय ही कर सकता है। साहित्य के क्षेत्र में स्त्री-लेखिकाओं को संख्या अभी तक बहुत ही न्यून रही है, इसी से यह काम अपूर्ण ही पड़ा है। परिणाम यह होता है कि स्त्रियों के सम्बन्ध में हृदय के बहुत से विश्लेषण निजी धारणाओं के विकृत परिणाम-मात्र होते हैं। प्रमाण यह है कि इधर कवि ने अपना सारा जीवन दैवी-प्रेम की अनुभूति में व्यतीत कर दिया और उधर फ्रॉयड का अनुयायी अपने ही अनुमान लगाए चला जा रहा है !

प्रेम, क्योंकि अनुभूति-साध्य विषय है, अतः उसमें कौन कितना गहरा उतर गया है यह काव्य में उसकी अपनी अंतर्दशाओं और शरीर पर उनकी प्रतिक्रियाओं के चित्रण से जाना जासकता है। आधुनिक हिन्दी कविता में व्यक्तिगत सुख दुःख से सम्बन्धित मनोविकारों के विश्लेषण और वर्णन की ओर बहुत ध्यान दिया गया है। इस दिशा में श्री जयशङ्कर प्रसाद को अत्यधिक सफलता मिली। मनोविकारों को मूर्त रूप देने और उनके सूक्ष्म से सूक्ष्म सूत्रों तथा गहरे से गहरे पटलों को देखने-दिखाने में उन्हें विशेष आनन्द आता था। महादेवी मनोभावों में डूबने के साथ ही साथ उनके कायिक प्रतिवर्तनों की सजीव मूर्तियाँ भी अत्यन्त कौशल से प्रस्तुत करती हैं।

किशोरावस्था और यौवन के संगम के कुछ ऐसे विलक्षण पल होते हैं जो प्रत्येक बालिका के शरीर और मन में नवीन परिवर्तन उत्पन्न करते हैं। उन परिवर्तनों और अनुभूतियों का अर्थ उस समय वह मुग्धा स्वयं नहीं समझ पाती। हिन्दी में रीति-काल के कवियों ने इस दशा के बड़े मादक वर्णन किये हैं। पर प्राचीन भावज्ञों में विद्यापति ने इस अवस्था का चित्र खींचते खींचते रस का सागर ही लहरा दिया है। भावुक पुरुष ही प्रणय की इस भूमि के दर्शन रस-लोलुपता की दृष्टि से करते कराते हैं या स्त्रियाँ भी ऐसा अनुभव करती हैं, यह मैं कभी कभी सोचा करता था। आशा नहीं करता था कि महादेवी जी भी किसी लजीली मुग्धा का चित्र खींचेंगी। सहसा एक दिन इस रचना पर दृष्टि पड़ी:—

'सजनि तेरे दृग बाल !
चकित से विस्मित से दृग बाल—
आज खोये से आते लौट,
कहाँ अपनी चंचलता हार ?
झुकी जातीं पलकें सुकुमार,
कौनसे नव रहस्य के भार ?

सरल तेरा मृदु हास !
अकारण वह शैशव का हास—
बन गया कब कैसे चुपचाप,
लाज भीनी सी मृदु मुस्कान
तड़ित् सी जो अधरों की ओट,
झाँक हो जाती अन्तर्धान !
सजनि वे पद सुकुमार !
तरंगों से द्रुतपद सुकुमार—
सीखते क्यों चंचल गति भूल,
भरे मेघों की धीमी चाल ?
तृषित कन-कन को क्यों अलि चूम,
अरुण आभा सी देते ढाल ?
मुकुर से तेरे प्राण !
विश्व की निधि से तेरे प्राण—
छिपाये से फिरते क्यों आज,
किसी मधुमय पीड़ा का न्यास ?
सजल चितवन में क्यों है हास,
अधर में क्यों सस्मित निःश्वास ?'

—रश्मि

(प्रेम का पहिला लक्षण है अन्तर में एक प्रकार की कोमलता का जग पड़ना। जहाँ आकर्षण ने जन्म लिया नहीं कि व्यक्ति मधुरता मिश्रित किसी शीतल विह्वलता का अत्यन्त तीव्र अनुभव करने लगता है। उस समय एक से एक कोमल, एक से एक मधुर, एक से एक काव्यमयी भावनाएँ न जाने अन्त:संज्ञा के किस स्तर के उद्गम से उमड़कर ओठों तक आती हैं जिनमें से कुछ व्यक्त हो जातीं और कुछ मूक रहकर प्रेमास्पद की इङ्गित को निहारती रहती हैं। उस समय इच्छा होती है कि हमारे पास जो कुछ है वह अपने नेही के चरणों पर न्योछावर कर दें। किसी प्रकार हम केवल उसकी एक स्निग्ध चितवन और मधुर मुस्कान के अधिकारी हो सकें। उसे प्रसन्न देखने की इच्छा और भी अनेक रूप धारण करती है। उनमें से एक है अपने शरीर को उपयुक्त वेश-भूषा से संयुक्त करना। शृङ्गार, जो मन के उत्साह और आल्हाद का सूचक है, अपने ही को नहीं दूसरे को भी प्रसन्न करने के लिए किया जाता है। यह सरस उदाहरण एक बार फिर उद्धृत करना पड़ रहा है :—

(१) लौकिक श्रृङ्गार :

'रंजित करदे यह शिथिल चरण ले नव अशोक का अरुण राग,
मेरे मंडन को आज मधुर ला रजनीगंधा का पराग;
यूथी की मीलित कलियों से
अलि दे मेरी कबरी सँवार !
लहराती आती मधुर - बयार !'

—सान्ध्यगीत

(२) आध्यात्मिक श्रृङ्गार :

'शशि के दर्पण में देख-देख,
मैंने सुलझाये तिमिर केश,
गूँथे चुन तारक - पारिजात,
अवगुंठन कर किरणें अशेष;
क्यों आज रिझा पाया उसको
मेरा अभिनव श्रृङ्गार नहीं?'

—सान्ध्यगीत

महादेवी जी के काव्य में दुःखपक्ष की प्रधानता है। उसका अधिकांश विरह-वेदना समन्वित है। इसीसे उसमें आँसुओं के उल्लेख की प्रचुरता है। इच्छा होती है मैं महादेवी को आंसुओं की रानी—देवी-महादेवी कहूँ। उनके काव्य में प्रवाहित पीड़ाधारा में आंतरिक वृत्ति के देर तक निमग्न होते ही एक प्रकार की मनोव्यथा का अनुभव पाठक को होने लगता है। इन पंक्तियों को फिर देखिये:—

'पुलक तुलक उर, सिहर सिहर तन,
आज नयन आते क्यों भर भर ?
सकुच सलज खिलती शेफाली,
अलस मौलश्री डाली डाली,
बुनते नव प्रवाल कुंजों में
रजत श्याम तारों से जाली
शिथिल मधु पवन गिन गिन मधुकण,
हरसिंगार झरते हैं झर झर !
आज नयन आते क्यों भर भर ?'

—नीरजा

ज्योत्स्ना धौत वासंती निशा है। मलय-पवन बह रहा है। नायिका

उद्यान में है। पुष्पों की भीनी गंध, समीर का रोमांचकारी स्पर्श और उजली चाँदनी का रम्य-दर्शन उसके प्राण, तन और नयन में मादकता भर कर संज्ञाहीनता का आह्वान कर रहे हैं। ऊपरी दृष्टि से देखने पर ये पंक्तियां मधुऋतु की रजनी का सामान्य वर्णन सा प्रतीत होती हैं। पर कवयित्री एक एक साँस में न जाने कितनी बातें सोच रही है? शेफाली उसकी ही आँखों के सामने सकुचा रही है, लजा रही है, खिल रही है। उसे तो ऐसा अवसर कभी नहीं मिला कि किसी की समीपता प्राप्त कर के वह भी एक पल को सकुचा पाती, लजा लेती, खिल उठती। सारा यौवन प्रतीक्षा में ही ढल गया, मन के सारे अरमान आँसू बन कर ही बिखर गए, समस्त जीवन केवल सूनेपन में ही परिवर्तित होगया। डाली डाली पर मौलश्री आज अलसा कर शयन कर रहो है। मधु-पवन का उसे मादक परस मिला है। इतने पर भी वह न अलसायेगी? पर उसके जीवन में विद्युत् स्पर्श तो बहुत दूर, दर्शन भी दुर्लभ हो उठा है। कभी होगा भी अथवा नहीं, इसका ही अब क्या भरोसा है! कुंजों के नीचे झरते हरसिंगार की शय्या पर तम और चाँदनी आलिंगन-पाश में बद्ध पड़े हैं। और यह मधु-पवन! इसे देखो, इस लोभी ने इतने मधु का संचय किया है कि उसके भार से इससे चला भी नहीं जाता। पर कितना अजान; कितना निष्ठुर है अपना प्रेमी जो हृदय के मानस को सूखते देख रहा है और आता नहीं। अंतर भर उठता है, शरीर सिहर उठता है और आँसू की बूँदें बरौनियों में उलझ कर रह जाती हैं। पर इससे लाभ? सब व्यर्थ है! सब विषादपूर्ण! सब सारहीन! विरह सत्य है! प्रतीक्षा सत्य है!! व्यथा सत्य है!!!

चिंतन और साधना की दृष्टि से महादेवी जी को एकान्त, घोर निस्तब्धता और तम अत्यंत प्रिय हैं। तन्मयता के लिए इन तीनों की स्थिति अनिवार्य है। यद्यपि प्रत्येक आलोचक ने उनपर यह आक्षेप किया है कि उनका काव्य कल्पना-प्रसूत है, पर उनकी कुछ रचनाओं को ध्यान से पढ़ने पर यह आरोप मुझे सारहीन प्रतीत होता है। मेरी यह धारणा है कि वे चुपचाप किसी प्रकार की साधना में लीन हैं। साधना के प्रकट होने पर उसकी शक्ति क्षीण हो जाती है और सच्चा साधक यह चाहता भी नहीं कि वह उसका प्रदर्शन करे। अतः इस संबंध में उनसे कुछ जानना कठिन ही है। उनकी 'स्मृति की रेखाएँ' से प्रकट होता है कि उन को सबसे अधिक निकट से जानने का सौभाग्य 'भक्तिन' उपाधिधारिणी उनकी किसी सेविका को प्राप्त है। पर उसकी जैसी विद्याबुद्धि है वह भी उस संस्मरण से प्रकट है ही। संस्मरणों से

यह भी प्रत्यक्ष है कि रातके पल वे केवल सोनेमें नष्ट नहीं करतीं। कभी कभी तो जगते जगते प्रभात होजाता है। 'स्मृति की रेखाएँ' में एक स्थान पर उन्होंने शीतलपाटी पर आसीन 'योगदर्शन' के अध्ययन की चर्चा की है। 'दीपशिखा' के पांचवें, तेईसवें, उन्तीसवें, बयालीसवें और पचासवें गीत किसी प्रकार भी काल्पनिक नहीं होसकते। उनके परिणाम क्रियात्मक ही हैं, नहीं तो अर्थ की संगति बैठ ही नहीं सकती। इन्हीं सब बातों के आधार पर मेरा अनुमान है कि वे अपने एकान्त क्षणों में कभी कभी उस लीनता को प्राप्त होती हैं जो जीव का चरम लक्ष्य और सिद्धि है।

इच्छा :

इस असीम तम में मिलकर
मुझको पल भर सो जाने दो। —नीहार

आ मेरी चिर मिलन-यामिनी!
तममयि! घिर आ धीरे धीरे! —नीरजा

कारण :

करुणामय को भाता है
तम के परदे में आना। —नीहार

मेरी प्रिय निशीथ-नीरवता में आता चुपचाप
मेरे निमिषों से भी नीरव है उसकी पदचाप —नीरजा

क्रिया :

मैं आज चुपा आई 'चातक',
मैं आज सुला आई 'कोकिल',
कंटकित 'मौलश्री', 'हरसिंगार'
रोके हैं अपने श्वास शिथिल! —सांध्यगीत

चल पलक हैं निर्निमेषी,
कल्प पल सब तिमिर-वेषी,
आज स्पन्दन भी हुई उर के लिए अज्ञात-देशी!
—दीपशिखा

फल :

सजनि कौन तम में परिचित-सा, सुधि-सा, छाया-सा आता?
—रश्मि

मेरे नीरव मानस में
वे धीरे धीरे आये! —नीहार

पीछे निर्देश कर चुके हैं कि महादेवी जी के काव्य में मिलन के चित्र विरल हैं। 'रश्मि' की एक रचना में वे अपने को उस अज्ञात प्रियतम से घिरा पाती हैं। उस प्रकार के आभासों में श्रवण, नयन, घ्राण और स्पर्श सभी इन्द्रियों को थोड़ी देर के लिए तृप्ति प्राप्त होती है :—

श्रवण-सुख —

तब बुला जाता मुझे उस पार जो
दूर के संगीत-सा वह कौन है ?

नयन-सुख—

तब चमक जो लोचनों को मूँदता,
तड़ित की मुस्कान में वह कौन है ?

घ्राण और स्पर्श-सुख—

सुरभि बन जो थपकियाँ देता मुझे
नींद के उच्छ्वास सा वह कौन है?

'दीपशिखा' में हमने उनके ही मुख से सुना है कि 'रात की पराजय-रेख धोकर उषा ने किरण-अक्षत और हास-रोली' से स्वस्तिवाचन करते हुए उनका विजय-अभिषेक किया है। अब वे मिलन-मन्दिर में प्रवेश करने वाली हैं। उस नर्म-कथा, उस मर्म-गाथा, उस रहस्य-वार्त्ता के कुछ स्वर दूसरों के कानों तक भी शीघ्र पहुँच पाएँगे ऐसी आशा लिए हम बैठे हैं।

कवयित्री महादेवी वर्मा

डाक्टर इन्द्रनाथ मदान

['महादेवी का जीवन विचित्र परिस्थितियों के प्रभावों से पूर्ण है। सम्पन्न और शिक्षित परिवार में जन्म, चित्रकला और संगीत की शिक्षा का प्रबन्ध, बुद्ध की करुणा की गहरी छाया, दार्शनिक-चिन्तन, पति से पृथक् एकाकी जीवन, सेवा-भावना का अत्यधिक उज्ज्वलरूप आदि ने मिलकर उनके व्यक्तित्व को ऐसा रूप दे दिया है कि हिन्दी ही नहीं भारत और विश्व में कोई स्त्री कलाकार उनकी कोटि में नहीं आ सकती। जीवन के पट में ऐसे बहुरंगी धागों का संयोग अन्यत्र नहीं मिल सकता।']

आधुनिक कवियों में श्रीमती महादेवी वर्मा का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। वह इसलिए नहीं कि वे स्त्री हैं, वरन् इसलिए कि उन्होंने आधुनिक काव्य की कला और साज-श्रृङ्गार में सर्वाधिक योग दिया है। छायावाद के प्रवर्त्तक स्वर्गीय बाबू जयशंकर 'प्रसाद' और उसके उन्नायक सर्वश्री पं० सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' तथा सुमित्रानन्द पंत के बाद उन्हीं की गणना होती है! महादेवी जी ने इन कवियों की अपेक्षा छायावादी काव्य को सबसे अधिक देन यह दी है कि काव्य उनके कण्ठ से विशुद्ध अनुभूतिमय होकर फूटा है और उनकी कल्पना अनुभूति से ऐसी घुल-मिल गई है कि यह धोखा होना कि अनुभूति है या कल्पना, असम्भव नहीं है। हृदय की सूक्ष्मतम भावनाओं को जितनी सफलता के साथ देवी जी ने व्यक्त किया है, उतनी सफलता के साथ अन्य कोई कवि शायद ही कर सका हो। उनके काव्य में कला का विकास न होकर हृदय की सचाई की झलक है। प्रसाद, निराला और पंत तीनों ही बाह्य-विषय-परक कविता लिखने की ओर विशेष उन्मुख

रहे हैं—प्रसाद 'कामायनी' लिख कर, निराला जी 'तुलसीदास' लिखकर और पंत जी इधर की प्रगतिशील कविताओं का सृजन करके। परन्तु महादेवी जी ने आरम्भ से लेकर अंत तक आत्मपरक कवितायें ही अधिक लिखी हैं। उनकी वाणी गीति-काव्य के माध्यम से मुखरित हुई है, जिसमें वेदना और सुकुमार कल्पना का अनिवार्य सहयोग रहता है। गीति-काव्य के लिए आवश्यक है कि एक कोमल मर्मस्पर्शी उद्गार नवनीत-सदृश कोमल, कसक-भरे शब्दों में स्वाभाविक रूप से फूट पड़े और उसकी वेदना पाठक और श्रोता के हृदय में घर करती चली जाय। महादेवी जी में यह गुण है कि उनके गीत सीधे हृदय पर प्रभाव डालते हैं। वे वनफूल की भाँति अकृत्रिम हैं और उनमें कहीं बनावट नहीं है। छायावादी काव्य में प्रसाद ने यदि प्रकृति-तत्त्व को मिलाया, निराला जी ने मुक्त छंद दिया, पंत जी ने शब्दों को ख़राद पर चढ़ा कर सुडौल और सरस बनाया तो महादेवी जी ने उसमें प्राण डाले, उसकी भावात्मकता को समृद्ध किया। इसका यह अर्थ नहीं है कि प्रसाद, निराला और पंत ने भाव-पक्ष की उपेक्षा की। नहीं, ऐसा कहना कवियों के प्रति घोर अन्याय होगा। उनकी कविता में भाव-पक्ष का उज्ज्वलतम रूप निखर कर सम्मुख आया है। हमारे कहने का तात्पर्य केवल इतना ही है कि महादेवीजी ने कला-पक्ष की अपेक्षा हृदय-पक्ष पर अधिक आग्रह रखा है। उस बीच में कोई स्वाभाविक भावना यदि स्वतः ही नवीन छंद में निस्सृत हो गई है तो वह महादेवी जी का जान-बूझ कर छंद-परिवर्तन करना या नवीन प्रयोग करना नहीं कहा जा सका; जैसा कि प्रसाद, पंत तथा निराला में हुआ है। प्रसाद जी ने तो प्रवर्त्तक के नाते ही काव्य में अनेक परिवर्तन किये हैं। उदाहरणार्थ, जैसा कि प्रसाद जी के काव्य का अध्ययन करते समय देख चुके हैं, उनका 'प्रेम-पथिक' लिया जा सकता है जिसे उन्होंने ब्रजभाषा से खड़ी बोली में और बदले हुए छंदों में लिखा। पन्त जी ने तो स्पष्ट ही 'पल्लव' की भूमिका में भी शब्दों की कोमलता-कठोरता, स्त्रीलिंग-पुल्लिंग में प्रयोग और ब्रज तथा खड़ी बोली के अन्तर के साथ नवीन छंदों की ओर भी अंगुलि-निर्देश किया है। निराला जी तो हिन्दी मे छंद के सम्राट् के नाते विख्यात हैं। उनकी कविता 'बंधनमय छंदों की छोटी राह' छोड़ कर बही है। परन्तु महादेवी जी में ऐसा कहीं नहीं हुआ। उन्होंने तो केवल आत्म-प्रकाशन पर लक्ष्य रखा है और इस बीच में यदि नवीन शब्दों—प्रतीकों—और छंदों के नमूने आ गए हैं तो वह स्वाभाविकता-वश। उससे उनका ऐसा आग्रह नहीं है कि वे कोई पांडित्य प्रदर्शन या नेतृत्व की चेष्टा कर रही हैं। इतना

होने पर भी उनके विषय में यह कहना अत्युक्ति न होगी कि उनके छन्दों—विशेष कर गीतों—का बेहद अनुकरण हुआ है और कई बार हमें यह कहने को बाध्य होना पड़ता है कि नवीन प्रयोग के प्रति उदासीन रहने वाली इस कवयित्री का जो इतना अधिक अनुकरण हुआ उसका कारण यह है कि उनकी कविता में दर्द या टीस अधिक है, जो उनके युग की मूल-भावना रही हैं और जिसको लेकर छायावाद जन्मा, पनपा और समृद्ध हुआ है। महादेवी जी की कविता में वेदना और करुणा का ऐसा साम्राज्य है कि जिसकी शोभा-श्री पर सौ-सौ स्वर्गों का सुख निछावर है। वेदना के ताप से गलकर उनके हृदय की द्रवीभूत अनुभूति पारे की भाँति तरल होकर बह निकली है।

लेकिन महादेवी जी की कविता की इस विशेषता का मूल कारण है—उनका जीवन। उनका जन्म अत्यन्त सम्पन्न परिवार में हुआ है। पिता बाबू गोबिंद प्रसाद वर्मा एम० ए०, एल-एल० बी०, ऐडवोकेट और माता श्रीमती हेमरानी देवी विदुषी तथा कलाप्रिय नारी हैं। शिक्षा के प्रति उनके विचार बड़े उदार हैं। इसीलिए महादेवी जी की स्कूली शिक्षा के साथ घर पर उन्हें चित्र-कला और संगीत की शिक्षा देने का भी प्रबन्ध किया गया था। इस प्रकार उच्च विचारों के पिता तथा कविता और भावुकता की मूर्ति माता द्वारा संगीतकला, चित्र-कला, और काव्य-कला के विकास की सुविधायें पाकर हमारी कवयित्री ने अपने बाल्य-जीवन के सुखद दिवस समाप्त किए। तभी ११ वर्ष की छोटी उम्र में शादी हो गई। उसके बाद उनको महात्मा गौतम बुद्ध के जीवन और उनके दार्शनिक सिद्धान्तों का अध्ययन करने का अवसर मिला। बुद्ध के प्रभाव से उनका जीवन ही बदल गया। उन्होंने निश्चय किया कि वे विवाहित जीवन नहीं बितायेंगी और बौद्ध-भिक्षुणी होकर रहेंगी। घर वाले इस बात पर राज़ी न थे। उन्होंने अधिक विरोध न करके अपना अध्ययन चालू रखा। अन्त में प्रयाग यूनिवर्सिटी से संस्कृत में एम० ए० पास करने के बाद आपने अपने भिक्षुणी होने के स्वप्न को सेवा द्वारा पूरा करना चाहा। वे तब से पति से पृथक् रह कर प्रयाग महिला विद्यापीठ की प्रधान आचार्या के रूप में कार्य कर रही हैं। समय मिलने पर विशेष रूप से छुट्टियों में—वे गाँवों में जाकर वहाँ दवा-दारू भी करती हैं। अत्यन्त सादा जीवन बिताते हुए वे साहित्य-साधना में निरत हैं। पर उनका कथन है कि साहित्य-सेवा उनके सम्पूर्ण जीवन की साधना नहीं है। वे साहित्य-साधना तब करती हैं, जब उन्हें विद्यापीठ के कार्यों से अवकाश मिल जाता है। तभी उन्होंने कहा है—"मेरी सम्पूर्ण कविता का रचना-काल कुछ घंटों में ही

सीमित किया जा सकता है। प्रायः ऐसी कवितायें कम हैं, जिनके लिखते समय मैंने रात में चौकीदार की सजग वाणी या किसी अकेले जाते हुए पथिक के गीत की कोई कड़ी नहीं सुनी।" इस प्रकार उनका जीवन मूलतः सेवा का है—रचनात्मक कार्यकर्त्ता का है।

जैसा कि हम पहले कह चुके हैं कविता के संस्कार उन्हें अपनी माँ के द्वारा प्राप्त हुए हैं। उन्होंने अपने सम्बन्ध में लिखा है—"माँ से पूजा-आरती के समय सुने हुए मीरा, तुलसी आदि के तथा स्वर-चित पदों के संगीत पर मुग्ध होकर मैंने ब्रज-भाषा में पद-रचना आरम्भ की थी। मेरे प्रथम हिंदी-गुरु भी ब्रजभाषा के ही समर्थक निकले, अतः उल्टी-सीधी पद-रचना छोड़कर मैंने समस्या-पूर्तियों में मन लगाया। बचपन में जब पहले-पहल खड़ी बोली की कविता से मेरा परिचय पत्रिकाओं द्वारा हुआ तब उसमें, बोलने की भाषा में ही, लिखने की सुविधा देखकर मेरा अबोध मन उसी ओर उत्तरोत्तर आकृष्ठ होने लगा। गुरु उसे कविता ही न मानते थे, अत: छिपा-छिपा कर मैंने रोला और हरिगीतिका में भी लिखने का प्रयत्न किया। माँ से सुनी एक करुण कथा का प्रायः सौ छंदों में वर्णन कर मैंने मानों खण्ड-काव्य लिखने की इच्छा भी पूरी कर ली। बचपन की वह विचित्र कृति कदाचित खो गई है। उसके उपरान्त बाह्य-जीवन के दुःखों की ओर मेरा विशेष ध्यान जाने लगा था। पड़ोस की एक विधवा वधू के जीवन से प्रभावित होकर मैंने 'अबला' 'विधवा' आदि शीर्षकों से उस जीवन के जो शब्द-चित्र दिए थे वे उस समय की पत्र-पत्रिकाओं में भी स्थान पा सके। पर जब मैं अपनी विचित्र कृतियों तथा तूलिका और रंगों को छोड़कर विधिवत् अध्ययन के लिए बाहर आई तब सामाजिक जागृति के साथ राष्ट्रीय जागृति की किरणें फैलने लगी थीं, अतः उनसे प्रभावित होकर मैंने भी 'शृङ्गारमयी अनुरागमयी भारत जननी भारत माता', 'तेरे उतारूँ आरती माँ भारती' आदि जिन रचनाओं की सृष्टि की वे विद्यालय के वातावरण में ही खो जाने के लिए लिखी गई थीं। उनकी समाप्ति के साथ ही मेरा कविता का शैशव भी समाप्त होगया। इस समय से मेरी प्रवृत्ति एक विशेष दिशा की ओर उन्मुख हुई, जिसमें व्यष्टिगत दुःख समष्टिगत गंभीर वेदना का रूप ग्रहण करने लगा और प्रत्यक्ष का स्थूल रूप एक सूक्ष्म चेतना का आभास देनें लगा।...करुणा-बहुल होने के कारण बुद्ध सम्बन्धी साहित्य भी मुझे बहुत प्रिय रहा है।"

अभिप्राय यह है कि महादेवी का जीवन विचित्र परिस्थितियों के प्रभावों से पूर्ण है। सम्पन्न और शिक्षित परिवार में जन्म, चित्रकला और

संगीत की शिक्षा का प्रबंध, बुद्ध की करुणा की गहरी छाया, दार्शनिक चिन्तन, पति से पृथक् एकाकी जीवन, सेवा-भावना का अत्यधिक उज्ज्वल रूप आदि ने मिल कर उनके व्यक्तित्व को ऐसा रूप दे दिया है कि हिन्दी ही नहीं भारत और विश्व में कोई स्त्री-कलाकार उनकी कोटि में नहीं आ सकती। जीवन के पट में ऐसे बहुरंगी धागों का संयोग अन्यत्र नहीं मिल सकता। इसीलिए महादेवी जी अपने क्षेत्र में अकेली हैं।

महादेवी जी की कविता के अब तक निम्नलिखित संग्रह निकल चुके हैं:—'नीहार', 'रश्मि', 'नीरजा', 'सांध्य-गीत' और 'दीप-शिखा'। 'नीहार', 'रश्मि', 'नीरजा', तथा 'सान्ध्यगीत' की १८५ कविताएँ एक ही संग्रह 'यामा' में संकलित की गई हैं। इस प्रकार आज 'यामा' और 'दीपशिखा' दो वृहद् संग्रह उनके काव्य के उपलब्ध हैं। इन काव्य-ग्रंथों में संग्रहीत गीतों से जहाँ महादेवी जी के आध्यात्मिक-चिंतन और रहस्यमयी भावना का पता चलता है, वहाँ उनके 'अतीत के चल चित्र' 'स्मृति की रेखाएँ' आदि गद्य कृतियों से उनके यथार्थवादी स्वरूप के दर्शन होते हैं। इन रेखा-चित्रों और संस्मरणों में महादेवी की आत्मा छायावाद की सुन्दर भूमि से यथार्थ की कठोर भूमि पर उतर आई है। लेकिन उनकी संवेदना इतनी सरल और पावन है कि जिन व्यक्तियों को लेकर ये रेखाचित्र लिखे गये हैं, उनसे महादेवी जी का रागात्मक संबंध हो गया है। उनकी दयनीय दशा का चित्र खींचते हुए महादेवी जी ने व्यंग का भी सहारा लिया है, जो कि आज के गद्य की एक प्रमुख आवश्यकता है। गद्य इन सब के अनुकूल पड़ता है, इसीलिए महादेवी जी ने गद्य को अपनाया है। परन्तु वहाँ भी उनकी गहन दृष्टि का प्रकाश है। हिन्दी के प्रसिद्ध समालोचक और निबंधकार बाबू गुलाबराय एम. ए. ने एक बार लिखा था कि वे गद्य में महादेवी जी का लोहा मानते हैं। महादेवी जी के गद्य की प्रौढ़ता का इससे बड़ा प्रमाण-पत्र और क्या हो सकता है। उनके विचारक रूप की झाँकी यदि पानी हो, तो 'शृंखला की कड़ियाँ' और 'महादेवी का विवेचनात्मक गद्य' देखिए। पहले में नारी को लेकर समाज के संबंध में वस्तुस्थिति के चित्रण के साथ वैज्ञानिक विवेचन किया गया है। दूसरे में साहित्य की समस्याओं—छायावाद, रहस्यवाद, गीतिकाव्य आदि—पर कवयित्री ने अपने गंभीर विचार प्रकट किए हैं। आधुनिक साहित्यिक समस्याओं पर लिखे ये लेख महादेवी जी के अपने चिन्तन और विशिष्ट दृष्टिकोण को व्यक्त करते हैं।

आइए, अब हम तनिक उनके काव्य की मूल विशेषताओं का अनुशीलन

करें । हम कह चुके हैं कि महादेवी जी का व्यक्तित्व हिन्दी साहित्य में अपनी निजी विशेषता रखता है । भक्ति-काल में जो स्थान मीरा को प्राप्त था वही छायावाद में महादेवी जी को प्राप्त है और इसी को देखकर लोग उन्हें आधुनिक युग की मीरा कहते हैं । इस विषय में कुछ मत-भेद भी है । कुछ आलोचकों की राय में उन्हें मीरा से उपमा देना चाहिए और कुछ की राय में नहीं । हम उस विवाद में नहीं पड़ना चाहते । तब भी इस विषय पर अपनी सम्मति देने का लोभ संवरण हम नहीं कर सकते । जहाँ तक दुःख-दर्द और पीड़ा-कसक का सम्बन्ध है वहाँ तक मीरा और महादेवी में कोई अंतर नहीं है । मीरा भी राजकुमारी थीं और उन्होंने भी 'मेरो दर्द न जाने कोय' की पुकार लगाई थी । महादेवी यद्यपि राजघराने में पैदा नहीं हुई परन्तु ऐसे सम्पन्न घराने में अवश्य पैदा हुई हैं, जहाँ सब प्रकार के सुख और सुविधाएँ प्राप्त हो सकती हैं । उन्होंने भी अपने लिए कहा है कि 'अश्रुमय कोमल कहाँ तू आ गई परदेशिनी री !' यों व्यथा और पीड़ा का संसार दोनों के पास है । अंतर है परिस्थितियों और शिक्षा-दीक्षा का । मीरा रहस्यवादी सन्तों की परम्परा के संस्कार लेकर आई थीं और रैदास की कृपा से उन्होंने सहज ज्ञान का प्रकाश प्राप्त किया था । महादेवी जी बीसवीं सदी के वैज्ञानिक युग में पैदा हुई हैं, जहाँ वे भिक्षुणी भी नहीं बन पाईं । उनकी शिक्षा भी बड़े-बड़े ऊँचे भवनों में हुई है । मीरा ने अपने को 'गिरधर गोपाल' के समर्पित कर दिया था और 'अँसुवन जल सींचि-सींचि प्रेम बेलि बोई' थी । उनका प्रियतम सगुण साकार था । महादेवी ने भी असीम के प्रति अपने को समर्पित किया है और आँसू उन्होंने भी कम नहीं बहाए हैं । उनका प्रियतम निर्गुण निराकार है । मीरा की कविता में त्रिकुटी, अनहदनाद, सुरत-निरत, ज्ञान-दीपक, सुषुम्ना की सेज, सुन्न महल, हंस और अगम देश की चर्चा होने पर भी रहस्य भावना गौण है क्योंकि उनके भावों का प्रेरक ब्रज का छलिया गिरधर नागर था । महादेवी जी में ऐसे प्रतीक नहीं मिलते क्योंकि आज का युग इन प्रतीकों का नहीं है और न इनके लिए अवकाश ही है । इसलिए महादेवी में नवीनता भी है और उनकी वेदना कुछ अस्पष्टता से व्यक्त होने पर भी तीखेपन में मीरा से कम नहीं है । हाँ मीरा की-सी सीधी अभिव्यक्ति महादेवी जी में नहीं है । उसका कारण यह भी है कि अपनी व्यथा का वैसा प्रदर्शन आज के युग में किसी स्त्री द्वारा नहीं हो सकता । लेकिन महादेवी जी के विचार और कल्पनाएँ भी मीरा में नहीं मिलेंगी । इस प्रकार भेद के होते हुए भी दोनों में कुछ ऐसी समानताएँ हैं कि हम महादेवी को मीरा के

साथ रख सकते हैं। हिंदी के प्रसिद्ध आलोचक श्री नंददुलारे वाजपेयी के शब्दों में महादेवी जी और मीरा दार्शनिक दृष्टि से एक परम्परा की अनुयायिनी प्रतीत होती हैं।

महादेवी जी मीरा हैं या नहीं—इसे छोड़ भी दें तब भी उनका स्वतन्त्र व्यक्तित्व इतना प्रखर है कि उनका महत्त्व किसी प्रकार उपेक्षणीय नहीं है। उनके प्रखर व्यक्तित्व की सबसे बड़ी भावना है—उनकी कविता में दुःखवाद का प्रभाव। यह दुःखवाद, यह पीड़ा का संसार, उनके जीवन में अनजाने ही बस गया हैं। और जब वह बस गया है तो महादेवी जी उसे सँजोए चली जा रही है क्योंकि वह उनके उस प्रियतम की देन है जो विश्व के प्रति साँस में अपना स्वर मिलाए हुए है। उनका हृदय प्रतिक्षण किसी अभाव का अनुभव करता है, उसी की खोज में मस्त रहता है। वह सर्वदा शून्यता का अनुभव करती रहती हैं। परन्तु उस सूनेपन की भी वह साम्राज्ञी हैं और उसमें प्राणों का ही दीपक जलाकर दीवाली मनाती रहती हैं।[1] यह सूनेपन की दीवाली मनाने का आयोजन उन्होंने इसलिए किया है कि कभी उस प्रियतम से उनका मूक-मिलन हुआ था। परन्तु आज वह सब सपना हो गया है। आज तो उस मूक-मिलन द्वारा बने पीड़ा के साम्राज्य में ही उन्हें रहना है जो क्षितिज के पार है, जहाँ मिटना ही निर्वाण है तथा नीरव रोदन ही जहाँ पहरेदार है।[2] पीड़ा को ग्रहण करने के कारण उनके जीवन का लौकिक सुख-स्वप्न नष्ट हो गया है। लौकिक सुख-स्वप्न के नष्ट हो जाने से उल्लास और उत्साह के केन्द्र हृदय में विषाद और निराशा ने घर कर लिया है। उनकी यह पीड़ा, जिसने विषाद और निराशा से हृदय को भर दिया है, स्वयं

१—अपने इस सूनेपन की मैं हूँ रानी मतवाली,
प्राणों का दीप जलाकर करती रहती दीवाली !

२—पीड़ा का साम्राज्य बस गया,
उस दिन दूर क्षितिज के पार,
मिटना था निर्वाण जहाँ,
नीरव रोदन था पहरेदार !

कैसे कहती हो सपना है,
अलि ! उस मूक-मिलन की बात ?
भरे हुए अब तक फूलों में
मेरे आँसू उनके हास !

आई है—उनके अपने जीवन से, और उसका माध्यम रहा है वह प्रियतम। जब उनकी प्यार से ललचाई पलकों पर व्रीड़ा का पहरा था तभी उस चितवन ने उन्हें पीड़ा का साम्राज्य दे डाला और परिणाम यह हुआ कि उस सोने के सपने को देखे युग बीत गए तथा उनकी आँखों के कोश रीते होगए, परंतु फिर उस सोने के सपने को देखने का सुयोग न मिला।[1]

लेकिन यह पीड़ा उन्हें अत्यन्त प्रिय है और वे इसे छोड़ना नहीं चाहतीं। बात यह है कि विरही के लिए पीड़ा का ही एक मात्र सहारा होता है। यदि वह भी न रहे तो फिर उसका जीना मुश्किल हो जाता है। शेख़सादी से एक बार किसी ने पूछा था कि तुम इस पीड़ा को क्यों अपने साथ चिपकाए फिरते हो, छोड़ क्यों नहीं देते? शेख़सादी ने उस प्रश्नकर्ता को उत्तर दिया था कि पीड़ा ही मेरा जीवन है, यदि इसे छोड़ दूँगा तो मैं मर जाऊँगा। महादेवी जी की कुछ ऐसी स्थिति है। वे भी पीड़ा को अत्यन्त प्यार से सँभाल कर रखना चाहती हैं। दुःख की फिलासफी उनको बुद्ध के जीवन से मिली है और वहीं से करुणा का स्रोत भी उनके जीवन में फूटा है। परन्तु वह उनके काव्य में अपना निजीपन बनाए हुए दिखाई देता है। वे दुःख को सुख से अधिक महत्त्व देती हैं और उनका विश्वास है कि दुःख ही मानव मात्र को परस्पर निकट लाने का साधन है। उनका कथन है—'दुःख मेरे निकट जीवन का ऐसा काव्य है जो सारे संसार को एक सूत्र में बाँध रखने की क्षमता रखता है। हमारे असंख्य सुख हमें चाहे मनुष्यता की पहली सीढ़ी तक भी न पहुँचा सकें किन्तु हमारा एक बूँद आँसू भी जीवन को अधिक मधुर, अधिक उर्वर बनाए बिना नहीं गिर सकता। मनुष्य सुख को अकेले भोगना चाहता है परन्तु दुःख सबको बाँटकर। विश्व-जीवन में अपने जीवन को, विश्व-वेदना में अपनी वेदना को इस

१—इन ललचाई पलकों पर
पहरा था जब व्रीड़ा का,
साम्राज्य मुझे दे डाला
उस चितवन ने पीड़ा का!
उस सोने के सपने को
देखे कितने युग बीते!
आँखों के कोश हुए हैं
मोती बरसा कर रीते!

प्रकार मिला देना जिस प्रकार एक जल-बिन्दु समुद्र में मिल जाता है, कवि का मोक्ष है।" निस्सन्देह उनका यह कथन यथार्थ है। दुःख से जीवन में जो बल आता है उससे आत्मा उज्ज्वल बनती है। उपास्यदेव की आराधना में जितना ही कष्ट अनुभव होगा उतनी ही आत्मा उसके निकट पहुँचेगी। 'नीहार' और 'रश्मि' में उनका यही दुःखवाद तीव्र रूप में प्रकट हुआ है।

सम्भवतः महादेवी जी को पीड़ा इसलिए प्रिय है, करुणा इसलिए अच्छी लगती है कि इससे जीवन की साधना पूरी होती है। यही आनन्द की चरमावस्था तक ले जाने का साधन है। तभी वे अमरों के लोकों को ठुकरा देती हैं; और अपने मिटने के अधिकार को बचाये रखना चाहती हैं। क्योंकि जिस लोक में अवसाद नहीं, वेदना नहीं, जलन नहीं, ऐसे लोक को लेकर क्या होगा? उनके लिए ऐसा लोक व्यर्थ है।[1] दूसरी बात यह है कि वे जलन को ही अपने लिए वर चुकी हैं। इससे प्रेमी की भी महत्ता है, क्योंकि वे जलती हैं तो उनके प्रेमी की पीड़ा का साम्राज्य तो बना है, यदि वह न जलेंगी तो उस पीड़ा के साम्राज्य में अन्धकार छा जायगा। इसलिए वे नहीं चाहती कि अपने अस्तित्व को मिटा दें।[2] महादेवी के काव्य की यह एक बड़ी विशिष्टता है कि प्रत्येक साधक अन्त में मिलन चाहता है और मिलन में उस दुःख का पर्यवसान चाहता है जिस दुःख ने कि उसे मिलन की स्थिति तक पहुँचाया है, परन्तु वे दुःख का पर्यवसान नहीं चाहतीं। वे उस मानिनी नायिका की तरह हैं, जो प्रियतम की एक भूल पर रूठ जाती है और सौ-सौ बार मनाने पर भी नहीं मानती तथा जिसके जीवन में वह

१—ऐसा तेरा लोक, वेदना
    नहीं, नहीं जिसमें अवसाद,
  जलना जाना नहीं, नहीं—
    जिसने जाना मिटने का स्वाद,
  क्या अमरों का लोक मिलेगा
    तेरी करुणा का उपहार,
  रहने दो हे देव! अरे यह
    मेरा मिटने का अधिकार।

२—चिन्ता क्या है, हे निर्मम, बुझ जाये दीपक मेरा,
  हो जायेगा तेरा ही, पीड़ा का राज्य अँधेरा।

एक भूल सदा के लिए तीर बनकर समा जाती है। इसलिए आज महादेवी जी ने यह दृढ़ निश्चय कर लिया है कि उनके प्राणों की क्रीड़ा कभी शेष न होगी और वे पीड़ा में प्रियतम को और प्रियतम में पीड़ा को देखेंगी—

पर शेष नहीं होगी यह,
मेरे प्राणों की क्रीड़ा।
तुमको पीड़ा में ढूँढा
तुममें ढूँढूँगी पीड़ा।

पीड़ा और प्रियतम परस्पर ऐसे घुल-मिल गए हैं कि दोनों में कोई अन्तर ही नहीं रह गया है। इसलिए वे पीड़ा को ही सर्वस्व मान कर अपना और प्रियतम का मिलन नहीं चाहतीं; विरह में ही उन्हें आनन्द आता है— 'मिलन का मत नाम ले मैं विरह में चिर रहूँ।' क्यों ऐसा चाहती हैं उसका उत्तर यह है कि विरह अतृप्ति है और जब तक अतृप्ति है, अभाव है, तभी तक उन्हें उल्लास और आनन्द की प्रेरणा मिलती है। मिलन होने पर जीवन में कोई हलचल न रहेगी। तब जीवन बिलकुल मूक हो जायगा, भावना हीन-सा जड़, और यह महादेवी जी को स्वीकार नहीं है। उनका विश्वास है कि कामनाओं की चिर-तृप्ति जीवन को निष्फल कर देती है और हमारी प्यास बुझते ही विरक्ति का स्वरूप ले लेती है। बादलों का सजल होना इसी में है कि सारा जल बरसा कर रीते हो जायँ और सुख की पूर्णता इसी में है कि उससे मन फिर जाय[1]।

लेकिन इतना होने पर भी महादेवी जी का एक स्वप्न अवश्य है, जिसकी स्निग्धता से वे परिचित हैं और उनका विश्वास है कि उनका आज का विषाद कभी सुख में बदल जायगा। उनका वह स्वप्न है—"जिस प्रकार जीवन के उषाकाल में मेरे सुखों का उपहास-सा करती हुई विश्व के कण-कण से एक

१—चिर तृप्ति कामनाओं का
कर जाती निष्फल जीवन
बुझते ही प्यास हमारी,
पल में विरक्ति जाती बन।
पूर्णता यही भरने की
ढुल कर, देना सूने घन;
सुख की चिर पूर्ति यही है
उस मधु से फिर जावे मन।

करुणा की धारा उमड़ पड़ी है उसी प्रकार संध्या-काल में जब लंबी यात्रा से थका हुआ जीवन अपने ही भार से दब कर कातर क्रन्दन कर उठेगा, तब विश्व के कोने-कोने में एक अज्ञात पूर्व सुख मुसकरा उठेगा।" 'नीरजा' में पहुँच कर महादेवी जी अपने उक्त कथन की सार्थकता सिद्ध करती प्रतीत होती हैं। यहाँ वे दुःख के साथ सुख का अनुभव कभी-कभी कर लेती हैं। अब उनका विषाद मिट-सा चला है। यही भावना 'सान्ध्यगीत' में और परिष्कृत रूप में व्यक्त हुई है। अब उन्हें अपने हृदय में उस अज्ञात प्रियतम की झलक स्पष्ट प्रतीत होती है। उन्हें एक करुण अभाव में चिरतृप्ति का संसार संचित दिखाई देता है, एक लघु क्षण निर्वाण के सौ-सौ वरदान देने वाला जान पड़ता है और उन्हें जान पड़ता है कि वेदना के सौदे में उन्होंने किसी निधि को पा लिया है[1]। आज उनके प्राणों में दूर के संगीत की भाँति कोई गूँजता है और उन्हें अपने को खोकर कुछ खोई हुई वस्तु मिल गई है। विरह की निशा मिलन के मधु-दिन में स्नात होकर आई है। आज उनके हृदय में कोई आकर बस-सा गया है[2]। यही कारण है कि वे आज अपने हृदय को अथवा आत्मा को दीपक की भाँति मधुर-मधुर जलने का आदेश देती हैं। 'नीहार' में उनका कथन था कि हे नभ की दीपावलियो! तुम पल भर के लिए बुझ जाना क्योंकि करुणामय को तम के परदे में आना भाता है।[1] लेकिन 'नीरजा' में प्रियतम के पथ के आलोक के लिए उनको अपनी-आत्मा को दीप की भाँति प्रज्वलित रखना है।[2] 'सांध्य-गीत'

१—एक करुण अभाव में चिर-तृप्ति का संसार संचित
एक लघु क्षण दे रहा निर्वाण के वरदान शत-शत,
पा लिया मैंने किसे इस वेदना के मधुर क्रय में, कौन तुम मेरे हृदय में?

२—गूँजता उर में न जानें दूर के संगीत-सा क्या,
आज खो निज को मुझे खोया मिला विपरीत-सा क्या,
क्या नहा आई विरह-निशि मिलन मधु-दिन के उदय में,
कौन तुम मेरे हृदय में?

१—हे नभ की दीपावलियो
तुम पल भर को बुझ जाना,
करुणामय को भाता है,
तम के परदे में आना।

२—मधुर-मधुर मेरे दीपक जल
युग-युग, प्रति दिन, प्रतिक्षण, प्रतिपल
प्रियतम का पथ आलोकित कर।

में भी उन्हें यही भावना आगे ले जाती है और विरह की घड़ियाँ उन्हें मधुर मधु की यामिनी सी जान पड़ती हैं—'विरह की घड़ियाँ हुईं अलि, मधुर मधु की यामिनी- सी।' 'दीप-शिखा' में तो साधना के प्रारंभ से लेकर सिद्धि प्राप्त करने तक की सभी स्थितियों के दर्शन हो जाते हैं। उन्होंने अपनी साधना का दिग्दर्शन कराते हुए लिखा है कि मैं दीप के समान अविराम मिटती हुई स्वजन के समीप-सी आ रही हूँ। [3] संभवतः इसीलिए उनका चितेरा दीपक तूलिका रख कर सो गया है। ठीक भी है, मिलन का प्रभात आए और कल्पना साकार हो जाए तथा चित्र में प्राणों का संचार हो जाए तब साधना की पूर्ति के अंतिम क्षण का आगमन समझ लेना चाहिए। [1] इस प्रकार पीड़ा उनके काव्य में साधना का माध्यम रही है, जिसके द्वारा वे मिलन की स्थिति तक पहुँचती हैं।

अब तक हमने यह देखा है कि किस प्रकार महादेवी जी के काव्य में पीड़ा और करुणा तथा वेदना का साम्राज्य है और कैसे उस वेदना को वे अपना बना कर रखना चाहती हैं। उनके काव्य की इस मूल विशेषता के पश्चात् हमारा ध्यान सहसा उनके माधुर्य भाव की ओर चला जाता है। मीरा की भाँति वे भी माधुर्य-भाव की उपासिका हैं। माधुर्य भाव में प्रिया और प्रियतम का संबन्ध माना जाता है। भगवान् को साधकों ने कभी माता, कभी पिता, कभी स्वामी, कभी सखा, कभी प्रियतमा और कभी प्रियतम के रूप में देखा है। इन सभी रूपों में प्रियतम-प्रियतमा का रूप सबसे अधिक आनन्दप्रद है, क्योंकि इसमें परस्पर के भाव-प्रकाशन में किसी प्रकार का व्यवधान नहीं रहता। गोपियों की कृष्णोपासना भी इसी रूप की थी इसीलिए वे कृष्ण के अधिक निकट थीं। महादेवी जी भी माधुर्य-भाव से ही अपने प्रियतम को भजती हैं। वे नारी हैं, और नारी के लिए इससे अधिक स्वाभाविक मार्ग दूसरा नहीं हो सकता। यह भी एक कारण है कि उन्होंने अपने ब्रह्म को प्रियतम का रूप दिया है। वे अपने प्रियतम को

३—दीप सी मैं

आ रही अविराम मिट-मिट स्वजन ओर समीप सी मैं।

१—सजल है कितना सवेरा !

कल्पना निज देख कर साकार होते

और उसमें प्राण का संचार होते

सो गया रख तूलिका दीपक चितेरा !

बहुधा 'प्रिय' कह कर पुकारती हैं। वैसे उसके सौंदर्य का वर्णन करते समय 'सुन्दर' 'चिर-सुन्दर' और उसकी उपेक्षा को बताते हुए 'निठुर' 'निर्मोही' 'निर्मम' आदि कह कर भी संबोधित करती हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि वे समयानुकूल संबोधन करती हैं। परन्तु महादेवी की विशेषता यह है कि वे सर्वत्र गंभीर रहती हैं। कभी उनको गोपियों की भाँति प्रियतम से छेड़-छाड़ या हास-परिहास करने का ध्यान नहीं आता। बात यह है कि वे सूक्ष्म-ब्रह्म की उपासिका हैं, जहाँ कि उनकी कोई प्रतिद्वंद्विनी नहीं है और जहाँ असीम-पथ पर उन्हें स्वयं आगे बढ़ना है। इसीलिए उनकी पूजा भी स्वयं मन के भीतर होती है। किसी मंदिर में उनका प्रियतम नहीं है, जहाँ वे मीरा की भाँति नाच सकें। वे तो बाह्य पूजा के विधान को भी स्वीकार नहीं करतीं। उनकी दृष्टि में पूजा या अर्चन व्यर्थ है। जब उनका लघुतम जीवन ही उस असीम का सुन्दर मंदिर है, जब उनकी श्वासें नित्य प्रिय का अभिनंदन करती रहती हैं, जब पद-रज धोने के लिए लोचनों के जल-कण उनके पास हैं, जब पुलकित रोम भी अक्षत हैं और पीड़ा ही चंदन है, जब स्नेह भरा मन झिलमिलाते दीप की भाँति जलता रहता है, जब दृग-तारक ही कमल पुष्प का काम देते हैं, जब हृदय की धड़कन ही धूप बन कर उड़ती रहती है, जब अधर 'प्रिय प्रिय' जपते हैं और पलकों का नर्तन ताल देता है, तब बाह्याडंबर की क्या आवश्यकता है?[१] इसीलिए वे शून्य मंदिर में स्वयं प्रियतम की प्रतिमा बन जाना चाहती हैं और उनके गीले नयन आरती करना चाहते हैं।[२] यह सब देख कर लगता है कि

१—क्या पूजा क्या अर्चन रे?

उस असीम का सुन्दर मंदिर मेरा लघुतम जीवन रे!
मेरी श्वासें करती रहतीं नित प्रिय का अभिनंदन रे!
पद-रज को धोने उमड़े आते लोचन में जल कण रे!
अक्षत पुलकित रोम मधुर मेरी पीड़ा का चंदन रे!
स्नेह-भरा जलता है झिलमिल मेरा यह दीपक-मन रे!
मेरे दृग के तारक में नव उत्पल का उन्मीलन रे!
धूप बने उड़ते रहते हैं, प्रतिपल मेरे स्पन्दन रे!
प्रिय-प्रिय जपते अधर ताल देता पलकों का नर्तन रे!

२—शून्य मंदिर में बनूंगी आप मैं प्रतिमा तुम्हारी।
मेरे गीले नयन बनेंगे आरती।

महादेवी जी पर भक्तों और निर्गुणिये संतों का प्रभाव पर्याप्त मात्रा में पड़ा है। जहाँ इस प्रकार के निवेदन हैं, वहाँ उनकी भक्तों और संतों से प्रभावित भक्ति-भावना का ही प्रकाशन अधिक है, रहस्य-भावना कम। उन्होंने मधुरतम व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा करके प्रति आत्म-निवेदन किया है। उस आत्म-निवेदन में उनकी आत्मा स्वकीया की भाँति अपने प्रियतम के पथ में आँखें बिछाए रहती है और निरंतर उसकी पूजा-अर्चन का विधान किया करती है।

महादेवी जी की कविता में तीसरा विशेष तत्त्व है उनके द्वारा गृहीत प्रकृति का स्वरूप। छायावाद में प्रकृति का कई रूपों में उपयोग हुआ है। कहीं वह सचेतन मानवी बनकर सम्मुख आई, कहीं स्वतंत्र चित्रण के केन्द्र के रूप में और कहीं मानव-मन में उठती सुख-दुःखात्मक अनुभूतियों के व्यक्तिकरण में सहायता देने के लिए। यह अंतिम रूप ही प्रमुख है, जिसमें मानव ने प्रकृति के साथ तादात्म्य स्थापित किया है। प्रकृति मानों एक अंग है, जिसके द्वारा भावनाएँ सरलता से व्यक्त हो जाती हैं। आज ही नहीं, रीतिकाल में भी, जब कि प्रकृति ज़ड़ बन कर रह गई थी—उसका यह रूप किसी न किसी प्रकार सम्मुख आता ही रहा। छायावाद तो प्रकृति को सचेतन करने के लिए आया ही था। छायावाद में कहीं तो यह हुआ है कि भावनाएँ ही प्रकृति का माध्यम हुई हैं और कहीं प्रकृति-वर्णन से ही भावनाएँ व्यक्त हुई हैं और कहीं दोनों का समानुपात हुआ है। स्वतंत्र प्रकृति-चित्रण इस काल में कम ही हुए हैं। जो हुए हैं, वे भी कला-विन्यास के लिए। महादेवी जी ने प्रकृति के स्वतंत्र चित्रण बहुत कम किए हैं। प्रकृति के स्वतंत्र चित्रण के लिए 'यामा' में उनकी एक ही कविता है—हिमालय के ऊपर। उसमें भी उनकी अन्तमुखी वृत्ति उभर आई है। प्रकृति के रूपों, दृश्यों और भावों को महादेवी जी ने एक चेतन व्यक्तित्व दे दिया है। इसे यों कहें कि प्रकृति उनके साथ ही उनके प्रियतम के प्रति आत्म-निवेदन में सहायक होकर समर्पित हो गई है, तो अधिक संगत होगा। यही रूप उनके काव्य में अधिक प्रमुखता रखता है। वैसे वे भी अन्य कवियों की भाँति ब्रह्म की ओर जाती हुई प्रकृति के सौंदर्य से आकर्षित होकर उसमें कुछ देर को खो जाती हैं। लेकिन ऐसी कविताओं में भी, अंतिम पंक्ति से वे अपने जी की जलन भी व्यक्त कर ही देती हैं। बात यह है कि मन की व्यथा का व्यक्तीकरण उन्हें इतना प्रिय है कि उसे वे बचा नहीं सकतीं, सर्वत्र उसकी छाया आ ही जाती है। 'रश्मि' की 'रश्मि' नाम की कविता को ही लें तो उसमें प्रभात के

स्वतन्त्र और सुन्दर चित्र मिलेंगे। लेकिन उसके अन्त में कवयित्री ने लिखा है कि नींद अपने स्वप्न-पंख फैला कर क्षितिज के पार उड़ गई है और अध-खुले दृगों के कंज-कोश पर विस्मृति का खुमार छाया हुआ है। यही नहीं, प्रभातकाल की स्वर्ण-वेला में यह हृदय-चितेरा अश्रु-हास लेकर सुधि-विहान रँग रहा है। महादेवी जी की कविता में प्रकृति के रूपक बहुत मिलते हैं। 'रूपसि तेरा घन केश-पाश' में पावस का, 'धीरे धीरे उतर क्षितिज से आ वसंत रजनी' में वसन्त की रात्रि का, 'लय गीत अमर, पद ताल अमर' में प्रकृति का अप्सरा के रूप में चित्रण आदि प्रकृति के ऐसे सांगरूपक हैं, जिनमें प्रकृति का मानवीकरण किया गया है और प्रकृति का स्वरूप नेत्रों के सम्मुख प्रत्यक्ष हो गया है। इन से भी अधिक प्रकृति का स्वरूप वहाँ खुला है, जहाँ प्रकृति के साथ कवयित्री ने अपने जीवन को एकाकार कर दिया है। इस दृष्टि से 'प्रिय ! सांध्य गगन मेरा जीवन' वाला गीत अत्यंत उत्कृष्ट है। सांध्य-गगन के सौंदर्य के साथ अपने जीवन का ऐसा उत्कृष्ट सामंजस्य स्थापित किया गया है कि कलाकार की प्रशंसा किए बिना नहीं रहा जा सकता। कवयित्री कहती हैं कि मेरा जीवन सांध्य-गगन की भाँति है। यह गोधूलि बेला के कारण धुँधला क्षितिज मेरे हृदय का विराग है। सांध्य नभ की लालिमा सा ही मेरा सुहाग है, संध्या की शून्य छाया के समान ही राग हीन मेरी काया है, और रँगीले वन ही मेरे सुधि भरे स्वप्न हैं। इस प्रकार संध्या और मेरे जीवन में कोई अंतर नहीं है।[1] इन पूर्ण रूपकों के अतिरिक्त ऐसे खंड-रूपकों की भरमार है जहाँ प्रकृति के कुछ चित्र लेकर अपनी भावनाओं को व्यक्त किया गया है। 'विरह का जलजात जीवन ! विरह का जलजात!' और 'मैं नीर भरी दुख की बदली' आदि गीतों में ऐसे ही रूपक व्यक्त हुए हैं।[2] इस प्रकार महादेवी जी में प्रकृति के रंगीन चित्र असंख्य हैं पर वे सब

१—प्रिय ! सांध्य गगन, मेरा जीवन !
यह क्षितिज बना धुँधला विराग
नव अरुण अरुण मेरा सुहाग,
छाया सी काया वीतराग,
सुधि-भीने स्वप्न रँगीले घन !

२ (क)—विरह का जलजात जीवन विरह का जल जात।
वेदना में जन्म, करुणा में मिला आवास,
अश्रु चुनता दिवस इसका अश्रु गिनती रात !

या तो उनकी भावना से रँगे हैं या उनमें उनकी भावना व्याप्त है। तात्पर्य यह है कि प्रकृति महादेवी जी के जीवन में एकाकार होकर उनमें विरह-मिलन की अनुभूतियों के चित्रण में सहायक हो गई है।

इस सब के साथ वर्तमान हिंदी कविता में रहस्यवाद की वे एकमात्र कवयित्री हैं। जहाँ रहस्यवाद की चर्चा होती है, वहाँ हमारा ध्यान सहसा दार्शनिक और साधक ज्ञानियों की ओर चला जाता है। परन्तु महादेवी जी साधक नहीं हैं, आराधक हैं, जैसा कि हम उनके माधुर्य-भाव की विवेचना करते समय देख चुके हैं। इस आराधना के कारण उनका कवि सदैव शिशु की भावुकता से अभिभूत रहा है। इसलिए उनकी अनुभूति कभी फीकी नहीं पड़ी। 'दीप-शिखा' के गीतों में भी, जहाँ चिंतन अधिक गहरा हो गया है, वे अपने उसी सहज आकर्षक रूप में विद्यमान हैं। उन्होंने स्वयं एक स्थान पर लिखा है—"मानवीय संबंधों में जब तक अनुराग-जनित आत्मविसर्जन का भाव नहीं घुल जाता तब तक वे सरस नहीं हो पाते और जब तक मधुरता सीमातीत नहीं हो जाती तब तक हृदय का अभाव दूर नहीं होता। इसी से इस (प्राकृतिक) अनेकरूपता के कारण पर एक मधुरतम व्यक्तित्व का आरोपण कर उसके निकट आत्म-निवेदन कर देना इस काव्य का (रहस्यवादी काव्य का) दूसरा सोपान बना, जिसे रहस्यमय रूप के कारण ही रहस्यवाद का नाम दिया गया।" जब कि उसके प्रथम रूप के बारे में वे कहती हैं कि "छायावाद की प्रकृति घट, कूप आदि में भरे जल की एकरूपता के समान अनेक रूपों में प्रकट एक महाप्राण बन गई, अतः अब मनुष्य के अश्रु, मेघ के जल-कण, और पृथ्वी के ओस-बिन्दुओं का एक ही कारण, एक ही मूल्य है।" स्पष्ट है प्रकृति में मानवी-भावों की छाया या उसके साथ मानव-भावना का तादात्म्य महादेवी जी की सम्मति में छायावाद है और जब प्रकृति में एक मधुरतम व्यक्तित्व का आरोप कर उसके प्रति आत्मनिवेदन किया जाता है, तब रहस्यवाद हो जाता है। अर्थात् रहस्यवाद छायावाद की दूसरी सीढ़ी है। यहाँ इस विवाद में न पड़ कर हम केवल महादेवी जी के काव्य में उनके कथनानुसार रहस्यवाद की छानबीन करेंगे।

(ख)—मैं नीर भरी दुख की बदली !
विस्तृत नभ का कोई कोना,
मेरा कभी न अपना होना,
परिचय इतना इतिहास यही
उमड़ी कल थी मिट आज चली ?

जैसा कि हम कह चुके हैं—उनके काव्य में चिन्तन का प्राधान्य है और चिन्तन दार्शनिकता की ओर ले जाता है, जिसके भवात्मक प्रकाशन को रहस्यवाद कहते हैं। आत्मा और परमात्मा दोनों एक हैं। आत्मा परमात्मा से बिछुड़ गई है और माया के आवरण में अपने शुद्ध स्वरूप को न देख सकने के कारण परमात्मा का अनुभव नहीं कर सकती, यदि साधना द्वारा माया का आवरण हटा दिया जाय तो परमात्मा का साक्षात्कार हो जाता है, आदि क्रमशः आत्माके परमात्मा तक पहुँचने के साधन हैं। रहस्यवादी कवि भी इस प्रक्रिया का सहारा लेता है। वह सृष्टि में सर्वत्र उसी की छाया देखकर पूछ उठता है कि न जाने वह कौन है, जो तारों में हँसता, विद्युत् में चमकता, ओस-बिन्दुओं में रोता है। उस 'कौन' के लिए उसकी आत्मा जिज्ञासा-भाव से पीड़ित हो उठती है। प्रकृति के परिवर्तन में उसे उसी का भाव जान पड़ता है[1]। इसके साथ साथ वह अपने प्रियतम के पथ की ओर निरन्तर बढ़ता जाता है और उस पथ पर चलते हुए उसे विरह की तीव्र वेदना सहनी पड़ती है। यह विरह की तीव्र वेदना ही रहस्यवादी कवि के काव्य का प्राण होती है। ऐसे स्थलों पर वह लौकिकता के रूपकों को अपनाने के लिए बाध्य होता है। महादेवी जी ने स्वयं इस सम्बन्ध में कहा है कि रहस्यवाद में मर्मस्पर्शी व्यंजना के लिए लौकिकता का इतना आधार अत्यन्त आवश्यक होता है। उनके शब्दों में 'जायसी की परोक्षानुभूति चाहे जितनी ऐकान्तिक रही हो परन्तु उनकी मिलन-विरह की मधुरस्पर्शी अभिव्यंजना क्या किसी लोकोत्तर लोक से रूपक लाई थी? हम चाहे आध्यात्मिक संकेतों से अपरिचित हों परन्तु उनकी लौकिक कला-रूप सप्राणता से हमारा पूर्ण परिचय है। कबीर की ऐकान्तिक रहस्यानुभूति के सम्बन्ध में भी यही सत्य है।' सारांश यह कि कबीर और जायसी की भाँति ही महादेवी जी की रहस्यानुभूति भी लौकिक रूपकों द्वारा व्यक्त हुई है। वे भी अपने को उसी एक मात्र सत्ता की चिर-विरहिणी समझती हैं और

१—जब कपोल-गुलाब पर शिशु प्रात के
सूखते नक्षत्र-जल के विन्दु से
रश्मियों की कनक धारा में नहा
मुकुल हँसते मोतियों का अर्घ्य दे,
स्वप्नशाला में यवनिका डाल जो
तब दृगों को खोलता वह कौन है?

उसी की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करती हैं। वे उससे भिन्न नहीं हैं क्योंकि जैसे सिन्धु को वीचि-विलास अपना कुछ परिचय नहीं दे सकते उसी प्रकार कवयित्री के बुद् बुद् प्राण भी उसी महासमुद्र में लीन होते और उसी से प्रकट होते हैं[1]। उनकी आत्मा का परमात्मा से वही सम्बन्ध है जो विधु-बिम्ब से चन्द्रमा का सम्बन्ध होता है। इसीलिए उनका कथन है कि उस किरण को कौतूहल के बाण खींचकर विश्व में ले आते हैं और जब ओस से धुले पथ में तेरा छिपा आह्वान आता है तो वही किरण अपना अधूरा खेल भूलकर तुम्हीं में अन्तर्धान हो जाती है[2]। यह अनुभव करके ही कवयित्री अपना परिचय नहीं देना चाहती। जब वह प्रियतम एक ही हैं तब फिर परिचय कैसा ? चित्र का रेखाओं से, राग का स्वर से, असीम का सीमा से और काया का छाया से जो सम्बन्ध है वही आत्मा और परमात्मा का सम्बन्ध है फिर परिचय देना व्यर्थ है।[1] जब इस स्थिति का अनुभव हो जाता है तब व्यथा न जाने कहाँ चली जाती है। नयन श्रवण-मय और श्रवण नयन-मय हो जाते हैं, रोम रोम में एक नया ही स्पन्दन होने लगता है और छाले प्रसन्नता से फूल बन जाते हैं।[2] सीमा असीम में मिट जाती

१—सिन्धु को क्या परिचय दें देव, बिगड़ते वीचि विलास?
क्षुद्र हैं मेरे बुद-बुद प्राण तुम्हीं में सृष्टि तुम्हीं में नाश।

२—तुम हो विधु के बिम्ब और मैं
मुग्धा रश्मि अजान
जिसे खींच लाते स्थिर कर
कौतूहल के बाण।
ओस धुले पथ में छिप तेरा जब आता आह्वान।
भूल अधूरा खेल तुम्हीं में होती अन्तर्धान।

१—चित्रित तू मैं हूँ रेखाक्रम,
मधुर राग तू मैं स्वर-संगम, तू असीम मैं छाया का भ्रम,
क्या छाया में रहस्यमय! प्रेयसि प्रियतम का अभिनय क्या ?
तुम मुझ में प्रिय फिर परिचय क्या ?

२—नयन श्रवण-मय श्रवण नयन-मय आज हो रहे कैसी उलझन,
रोम रोम में होता री सखी एक नया उर का सा स्पन्दन,
पुलकों से भर फूल बनाए जितने प्राणों के छाले हैं,
मुस्काता संकेत भरा नभ अलि, क्या प्रिय आने वाले हैं ?

है और असीम सीमा में बँध जाता है। बिरह की रात तब मिलन का प्रात बन जाती है।।[3] तब साधिका बन्दिनी होकर भी बंधनों की स्वामिनी हो जाती है—'बन्दिनी बनकर हुई मैं बंधनों की स्वामिनी सी।' यही वह स्थिति होती है जब वह गा उठती है कि 'बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ।' तब समस्त विश्व का सुख दुःख प्रियतम के कारण मधुर बन जाता है[4] और साधिका का स्पर्श पाते ही काँटे कलियाँ और प्रस्तर रसमय हो जाते हैं—'मेरे पद छूते ही होते काँटे कलियाँ, प्रस्तर रसमय'। सारांश यह है कि महादेवी जी में रहस्यवाद का स्वाभाविक विकास है और वे कबीर और जायसी के बाद हिन्दी में रहस्यवाद की परम्परा को आगे बढ़ानेवाली एकमात्र कवयित्री हैं। मीरा की-सी तीखी और सरल अनुभूति उनमें नहीं है, परन्तु कल्पना के मधुर संयोग से उन्होंने जिस भावना-लोक में अपने प्रियतम के साथ आँख-मिचौनी खेली है और प्रकृति के सौंदर्य के माध्यम से उससे साक्षात्कार किया है, वह मीरा से उन्हें ऊँचा उठा देता है। रहस्यवाद की ऐसी स्वाभाविक कविता हिन्दी में तो है ही नहीं, विश्व की अन्य भाषाओं में है। लोगों को उनकी अस्पष्टता के प्रति बड़ी शिकायत है, परन्तु यह महादेवी की नहीं युग की विशेषता है। छायावाद की प्रतीकात्मक पद्धति के कारण अस्पष्टता सभी में है। महादेवी जी में अस्पष्टता का एक कारण यह भी है कि साधना की जिस ऊँची भूमिका से उनका आत्म-निवेदन हुआ है वह साधारण पाठक को एकदम बुद्धि-गम्य नहीं होता। उनके नारी-हृदय ने संयम की रेखा को नहीं लाँघा है। यह भी एक कारण है जिससे वे कुछ अधिक स्पष्ट नहीं हैं। इतना होने पर भी यदि हम उनके जीवन और साधना-पथ को समझ लें तो हमें उनकी कविता समझने में कोई कठिनाई न होगी।

महादेवी जी का कलापक्ष भी उतना ही सुन्दर है जितना कि भावपक्ष। वह इसलिए नहीं कि उन्होंने प्रसाद, पंत, निराला आदि की भाँति कोई नई क्रांति की है। उसकी सुन्दरता उनकी स्वाभाविकता में है। उनकी दृष्टि में कविता हृदय की अनुभूति है। पालिश करने से उसका स्वरूप परिवर्तित हो जाता है। इसलिए वे जो रचनाएँ लिखती हैं, एक ही बार लिखती हैं, उसे

३—चिर मिलन की रात को अब
तू विरह का प्रात रे कह।

४—मधुर मुझको हो गये सब
मधुर प्रिय की भावना ले।

'संशोधन', 'खराद' या 'पालिश' की कसौटी पर नहीं कसतीं। यही कारण है कि उनमें कृत्रिमता का आभास नहीं मिलता और वे हृदय से उद्भूत भावों और अनुभूतियों की एकरूपता प्रदर्शित करती हैं। इस अकृत्रिमता के कारण ही उनकी भाषा अत्यन्त परिष्कृत, अत्यन्त मधुर और अत्यन्त कोमल है। स्वाभाविकता का उन्होंने इतना ध्यान रखा है कि मात्राओं की पूर्ति और तुक के आग्रह के लिए कुछ शब्दों का अङ्ग-भङ्ग भी हो गया है। 'बातास' का 'बतास', 'आधार' का 'अधार', 'ज्योति' का 'ज्योती', 'कर्णधार' का 'कणा-धार' लिखने में उन्होंने कभी संकोच नहीं किया। उनकी कविता में कहीं-कहीं अंत्यानुप्रास भी नहीं मिलते हैं; परन्तु तुक और शब्दों के ऐसे प्रयोग उनके काव्य की गति को मन्द नहीं करते वरन् उसमें स्वाभाविकता ला देते हैं।

दूसरी बात उनकी अभिव्यक्ति में यह है कि वह सूक्ष्मतम भावनाओं को वाणी देने के कारण संकेतात्मक है। उसमें शब्दों के लाक्षणिक प्रयोग, अमूर्त वस्तुओं के लिए मूर्त योजनाएँ, भावों और प्राकृतिक रूपों के मानवीकरण आदि छायावादी शैली की सभी विशेषतायें पाई जाती हैं। उनके काव्य में शब्द-चित्र भी अधिक मिलते हैं। इसका कारण यह है कि वे चित्रकार भी हैं। उनकी अन्तिम कृति 'दीप-शिखा' में प्रत्येक कविता की पृष्ठभूमि के लिए एक-एक चित्र दिया गया है। 'यामा' में भी ऐसे ही चित्र हैं। इन चित्रों की विशेषता ऐसे रंगों का विधान है, जो दृश्य या रूप को ज्यों का त्यों उतार दे। चित्रकार की तूलिका और कवि की वाणी दोनों के संयोग से उनकी कविता खिल उठती है। एक आलोचक ने यह ठीक ही लिखा है कि महादेवी जी के यहाँ एक ओर चित्रकला की गोद में काव्य-कला खेलती है और दूसरी ओर काव्य-कला की अमूर्तता रेखा और रंग के सहारे चित्रित (मूर्त) हो गई है। उनके चित्रों में दीपक, शतदल और काँटे तथा बादल आदि का प्रयोग वैसे ही है जैसे उनके गीतों में।

महादेवी जी ने गीतिकाव्य ही अधिक लिखा है और अंतर्मुखी भाव-नाओं को व्यक्त करने के लिए गीतिकाव्य ही उपयुक्त होता है। इन गीतों में उनके हृदय का हर्ष-विषाद सहज रूपमें व्यक्त होउठा है। महादेवीजी ने लिखा है "गीत का चिरन्तन विषय रागात्मिका वृत्ति से सम्बन्ध रखने वाली सुख दुःखात्मक अनुभूति से ही रहेगा। साधारणत: गीत व्यक्तिगत सीमा में सुख-दुःखात्मक अनुभूति का वह शब्द-रूप है, जो अपनी ध्वन्यात्मकता में गेय हो सके।" अपने गीतों के सम्बन्ध में उन्होंने यह उचित ही लिखा है।

वास्तव में उनके गीत निराला जी की भाँति ताल-स्वर के सीमित बंधन में बंद नहीं हैं, वे अपनी ध्वन्यात्मकता में ही गेय हैं, जिनमें संगीत-काव्य का अनुयायी है और मानव-वृत्तियों के चित्रों को गति और सौन्दर्य दे देता है। गीतों की जो परम्परा वैदिक काल से लेकर उपनिषद् काल और महाकाव्य काल तक किसी न किसी रूप में चलती रही, उसका प्रथम स्वर हमारी भाषा में विद्यापति द्वारा गूँजा। उसके बाद कबीर की प्रेम-भक्ति की वाणी भी पदों द्वारा जनता तक पहुँची। सूर और तुलसी ने भी उस परम्परा को आगे बढ़ाया। लेकिन उसका चरम विकास मीरा में मिलता है। मीरा के गीत हृदय की कसक के सहारे स्वरों में ध्वनित हुए हैं। मीरा के बाद गीत का स्वाभाविक रूप महादेवी में ही मिलता है। यों छायावादी युग में प्रसाद; निराला, पंत तथा अन्य कवियों के सुन्दर गीत भी मिल सकते हैं, परन्तु गीतिकाव्य का ऐसा विकास उनमें नहीं है, जो महादेवी जी की कला को छू सके। उनके गीत निसर्ग सुन्दर हैं और उनमें अपनी निजी विशेषता है और वह है उनकी स्वाभाविक गति और भाव-भंगिमा। महादेवी इस क्षेत्र में अद्वितीय हैं। इसके कारण उनका कला-पक्ष अनूठा और अपूर्व हो उठा है, जिसने उनकी भावनाओं को सदा के लिए अमर बना दिया है।

महादेवी जी अभी तक साधना के पथ पर हैं। 'नीहार' के धुँधलेपन में 'रश्मि' के सुनहले प्रकाश पर जो 'नीरजा' खिली थी यह 'सान्ध्यगीत' की ध्वनि से 'दीप-शिखा' तक अपनी सजल सरस अनुभूति और कल्पना की पंखुड़ियों से सौंदर्य विकीर्ण कर इस नारी की आत्मा की व्यथा को विश्व के कण-कण के माध्यम में से उस अनन्त, असीम के चरणों तक पहुँचाती रही। भविष्य में वे प्रभात के अनुकूल मिलन की भूमिका बाँध कर हमें अपने आनन्द का भी उसी प्रकार सन्देश देंगी, जैसे विषाद का संदेश दिया है, यह आशा है। तब उन्हें न जलन रहेगी, न पीड़ा और न दीपक की भाँति तिल-तिल कर प्रिय के लिये मिटना ही पड़ेगा। तब उनके काव्य से आशा और उत्साह का स्वर्गीय गान फूटेगा और तब वे 'शलभ मैं शापमय वर हूँ, किसी का दीप निष्ठुर हूँ' की पुकार न लगाकर केवल यही गीत गायेंगी।

> 'सजल सीमित पुतलियाँ पर चित्र अमिट असीम का वह,
> चाह एक अनन्त बसती प्राण किन्तु ससीम-सा यह,
> रज कणों से खेलती किस विरज विधु की चाँदनी मैं?
> प्रिय चिरन्तन है सजनि, क्षण-क्षण नवीन सुहागिनी मैं!'

महादेवी की आलोचक-दृष्टि

डॉक्टर नगेन्द्र

['महादेवी साहित्य को एक शाश्वत सत्य मानती हैं। अनेकता में एकता ढूंढ़ने वाली उनकी दृष्टि जीवन और साहित्य के सनातन सिद्धान्तों और मूल्यों को लेकर चलती है, जो परिवर्त्तनों के बीच भी अक्षुण्ण रहते हैं।

उनकी आलोचना-शैली चिन्तन की शैली है, जिसमें विचार और अनुभूति का संयोग है। वे जैसे बौद्धिक तथ्यों को पचा-पचा कर हमारे समक्ष रखती हैं। निदान बौद्धिक-तीक्ष्णता तो उनके विवेचन में इतनी नहीं मिलती, परन्तु संश्लेषण सर्वत्र मिलता है।']

जैसा मैंने एक और स्थान पर भी कहा है, महादेवी के काव्य में हमें छायावाद का शुद्ध अमिश्रित रूप मिलता है। छायावाद की अंतर्मुखी अनुभूति, अशरीरी प्रेम जो बाह्य-तृप्ति न पाकर अमांसल सौंदर्य की सृष्टि करता है, मानव और प्रकृति के चेतन संस्पर्श, रहस्य-चिन्तन (अनुभूति नहीं), तितली के पंखों और फूलों की पंखड़ियों से चुराई हुई कला, और इन सबके ऊपर स्वप्न-सा पुरा हुआ एक वायवी वातावरण—ये सभी तत्व जिसमें घुले मिलते हैं, वह है महादेवी की कविता। महादेवी ने छायावाद को पढ़ा नहीं है, अनुभव किया है। अतएव साहित्य का विद्यार्थी उनकी विवेचना का आप्त-वचन के समान ही आदर करेगा।

आज एक साथ ही महादेवी जी की लेखनी से उद्भूत विवेचनात्मक गद्य यथेष्ट रूप में हमारे सामने उपस्थित है। यामा, दीपशिखा और आधुनिक कवि की विस्तृत भूमिकायें, पत्रिकाओं में प्रकाशित 'चिन्तन के क्षणों में' और अब पुस्तकाकार प्राप्त उनके कतिपय लेख काव्य के सनातन सत्यों का जितना

स्वच्छ उद्घाटन करते हैं, उतना ही आधुनिक साहित्य की गतिविधि का निरूपण भी।

साहित्य-दर्शन

महादेवी के साहित्य-दर्शन का आधार है भारतीय आदर्शवाद, जो जीवन और जगत् में एक सत्य की अखण्ड सत्ता मानता है। जगत् के खण्ड-खण्ड में अखण्डता प्राप्त कर लेना ही सत्य है और उसकी विषमताओं में सामञ्जस्य देखना ही सौन्दर्य है। महादेवी इन्हीं दो तथ्यों को साहित्य के साध्य और साधन मानती हैं।

'......सत्य काव्य का साध्य और सौन्दर्य उनका साधन है। एक अपनी एकता में असीम रहता है और दूसरा अपनी अनेकता में अनन्त, इसी से साधन के परिचय-स्निग्ध खण्ड रूप से साध्य की विस्मयभरी अखण्ड स्थिति तक पहुँचने का क्रम आनन्द की लहर पर लहर उठाता हुआ चलता है।'

स्पष्ट शब्दों में, इसका अर्थ यह हुआ कि सौन्दर्य का सम्बन्ध रूप से होने के कारण वह हमारे निकट है, हमारा उससे स्नेह-परिचय है। रूपों की परिचित अनेकता की 'भावना' करता हुआ साहित्यकार जब क्रमशः उनकी मौलिक एकता की ओर बढ़ता है तो उसे एक विशिष्ट सामञ्जस्य-दृष्टि प्राप्त हो जाती है। यही सामञ्जस्य-दृष्टि साहित्य की मूल प्रेरणा है और स्वभावतः आनन्दरूपा है, क्योंकि आनन्द का अर्थ भी तो हमारी अन्तर्वृत्तियों का सामञ्जस्य ही है। 'रसो वै सः' को मानने वाला भारतीय- साहित्यशास्त्र मूलतः इसी आनन्दरूप सामञ्जस्य या अखण्डता पर आधृत हैं। इसी से वह एक ओर साधारणीकरण के मौलिक तत्व तक पहुँच सका और दूसरी ओर क्रोध, शोक, जुगुप्सा और भय आदि में भी सात्विक आनन्द की उपलब्धि कर सका।

यहीं आकर साहित्य की उपयोगिता का भी प्रश्न हल हो जाता है। जिसका साध्य सत्य है, साधन सौन्दर्य है और प्रक्रिया आनन्दरूप, उस साहित्य की उपयोगिता जीवन की चरम उपयोगिता है। परन्तु उसका माध्यम स्थूल-विधि-निषेध न होकर आन्तरिक सामञ्जस्य ही है। इस प्रकार साहित्य एक ओर सिद्धान्तों का व्यवसाय होने से बच जाता है, दूसरी ओर सस्ता मनोरञ्जन होने से। इस रूप में स्वभावतः ही महादेवी साहित्य को एक शाश्वत सत्य मानती हैं। अनेकता में एकता ढूँढने वाली उनकी दृष्टि जीवन और साहित्य के सनातन सिद्धान्तों और मूल्यों को लेकर चलती है, जो परिवर्तनों के बीच भी अक्षुण्ण रहते हैं।

"यह सत्य है कि संस्कृति की बाह्य रूप-रेखा बदलती रहती है, परन्तु मूल-तत्त्वों का बदल जाना तब तब सम्भव नहीं होगा जब तक उस जाति के पैरों के नीचे से वह विशेष भूखण्ड और उसे चारों ओर से घेर लेने वाला विशेष वायुमण्डल ही न हटा लिया जाय।"

अतएव यह स्पष्ट है कि महादेवी कविता को गणित के अंकों में घटित होने वाला एक तथ्य-मात्र न मान कर, मूल रूप में रहस्यानुभूति ही मानती हैं। उपर्युक्त उद्धरण में एकता की स्थिति को विस्मय-भरी कहने का यही तात्पर्य है। एक स्थान पर उन्होंने अपना मन्तव्य असंदिग्ध शब्दों में व्यक्त ही किया है—

"व्यापक अर्थ में तो यह कहा जा सकता है कि प्रत्येक सौन्दर्य या प्रत्येक सामञ्जस्य की अनुभुति भी रहस्यानुभूति है। यदि एक सौन्दर्य-अंश या सामञ्जस्य-खण्ड हमारे सामने किसी व्यापक सौन्दर्य का द्वार खोल देता तो हमारे अन्तर्गत का उल्लास से आलोकित हो उठना सम्भव नहीं।"

वास्तव में कविता के ही नहीं जीवन के विषय में भी उनकी यही रहस्यात्मक भावना है। "मनुष्य चाहे प्रकृति के जड़ उपादानों का संघात विशेष माना जावे और चाहे किसी व्यापक चेतना का अंशभूत, परन्तु किसी भी अवस्था में उसका जीवन इतना सरल नहीं है कि उसकी पूर्ण तृप्ति के लिए गणित के अंकों के समान एक निश्चित सिद्धान्त दे सकें।" इसलिए उनका दृष्टिकोण विदेश के भूतवादी दार्शनिकों के दृष्टिकोण से जो जीवन को काम या केवल अर्थ पर केन्द्रित मान कर चलते हैं, मूलतः भिन्न है। उनकी दृष्टि समन्वयवादी है जो काम और अर्थ के आंशिक महत्त्व को तो मुक्त-कण्ठ से स्वीकार करती है परन्तु जीवन को समग्रतः इनकी ही इकाइयों में बंधा स्वीकार नहीं करती। भौतिक यथार्थवाद को वे पूर्णतः स्वीकार तो करती हैं, परन्तु निरपेक्ष रूप में नहीं, आध्यात्मिक आदर्श के साथ। जीवन की खण्ड विविधता ही भौतिक यथार्थ है, अखण्ड एकता ही अध्यात्मिक आदर्श। पहिला पदार्थ या अर्थ-काम के घटकों में आँका जा सकता है, दूसरा अनुभूति का ही विषय होने के कारण निश्चय ही थोड़ा-बहुत रहस्यमय है।" इसीलिये एक ओर महादेवी जी साहित्य के व्याख्यान में भौतिक वातावरण को उचित महत्व देती हैं, दूसरी ओर वह सामञ्जस्य या एकता की आध्यात्मिक कसौटी का उपयोग करती हैं।

इसी प्रकार वे काव्यानन्द को भी ऐन्द्रिय संवेदनों में न ढूँढ कर प्राण-चेतना के उस सूक्ष्म धरातल पर ढूँढती हैं जहाँ बुद्धि और चित्त, ज्ञान और

अनुभूति का पूर्ण सामञ्जस्य हो जाना है, जो चिन्तन का धरातल है, जहाँ भट्टनायक या अभिनव के शब्दों सतोगुण, तमस् और रजस् पर विजयी होता है। यहाँ आकर उनकी स्थिति एक ओर अति-बुद्धिवादी और दूसरी ओर अति-रसवादी साहित्यकारों से भिन्न हो जाती है।

सामञ्जस्य की यह दृष्टि, दूसरे शब्दों में संतुलन और संयम की दृष्टि है जिसमें किसी भी प्रकार के अतिचार को, जीवन-प्रवाह के उन असाधारण क्षणों को जहाँ संतुलन और संयम तट के मृत्तिका खण्डों की तरह बह जाते हैं, स्थान नहीं। यह दृष्टि या तो जीवन के साधारण धरातल पर ही रुक जाती है और या फिर एक-दम पूर्ण स्थिति—वाल्मीकि, व्यास, शेक्सपियर पर ही रुकती है। इसलिए यह अमृत-दृष्टि बायरन जैसे विषपायियों के प्रति, जो सामञ्जस्य और संतुलन की अवस्था तक नहीं पहुँच पाये हैं, सदैव कितनी क्रूर रही है। एक ओर सामञ्जस्य-द्रष्टा रवीन्द्र माईकेल को क्षमा नहीं कर पाये थे, और दूसरी ओर सामञ्जस्य-द्रष्टा महादेवी उग्र या अंचल को क्षमा नहीं कर सकतीं। इनकी शक्ति को ये लोग आत्म-घातिनी शक्ति कह कर छोड़ देंगे। परन्तु क्या यह उचित है? सत्य यह है कि यह सामञ्जस्य नैतिक बन्धनों से सर्वथा मुक्त नहीं हो सका, इसलिये एक स्थान पर जाकर उसमें भेद-बुद्धि उत्पन्न हो ही जाती है। महादेवी के साहित्यिक मान नैतिकता के बोझ से काफ़ी दबे हुए हैं, इसमें सन्देह नहीं। और इसमें उनका स्त्रीत्व बाधक हुआ है, जो मर्यादा से बाहर जीवन की मुक्ति खोजने का अभ्यासी नहीं है। और, वास्तव में अभी महादेवी जी की दृष्टि पूर्ण सामञ्जस्य की अधिकारिणी भी नहीं हो पायी। क्योंकि उसमें पुरुषत्व से भिन्न नारीत्व की इतनी प्रखर चेतना वर्तमान है कि वह पुरुष को आततायी प्रतिद्वन्द्वी के अतिरिक्त और कुछ कठिनाई से ही समझ पाती हैं। महादेवी जैसे उन्नत व्यक्तित्व में यह भाव अवश्य किसी ग्रन्थि की ही अभिव्यक्ति है जो अभी उलझी रह गई है।

सामयिक समस्या

इन सिद्धान्तों का उपयोग उन्होंने आधुनिक हिन्दी-साहित्य के विवेचन में किया है और यहाँ हमें महादेवी जी का सक्रिय आलोचक रूप मिलता है। छायावाद और प्रगतिवाद से सम्बद्ध लगभग सभी महत्वपूर्ण प्रसङ्गों पर उन्होंने सम्यक् प्रकाश डाला है जो संक्रान्ति की इस कुहरवेला में फैली हुई अनेक भ्रांतियों को दूर कर देता हैं। इन प्रसङ्गों में से मुख्यतम प्रसङ्ग छायावाद को लेकर आइये बहस की जाय—

छायावाद

'मनुष्य का जीवन चक्र की तरह घूमता रहता है। स्वच्छन्द घूमते-घूमते थक कर वह अपने लिए सहस्र बन्धनों का आविष्कार कर डालता है और फिर बन्धनों से ऊबकर उनको तोड़ने में सारी शक्तियाँ लगा देता है।'

'छायावाद के जन्म का मूल कारण भी मनुष्य के इसी स्वभाव में छिपा हुआ है। उसके जन्म से प्रथम कविता के बन्धन सीमा तक पहुँच चुके थे और सृष्टि के वाह्याकार पर इतना अधिक लिखा जा चुका था कि मनुष्य का हृदय अपनी अभिव्यक्ति के लिए रो उठा।'

'स्वच्छन्द छन्द में चित्रित उन मानव अनुभूतियों का नाम छायावाद उपयुक्त ही था, और मुझे तो आज भी उपयुक्त ही लगता है।'

'छायावाद का कवि धर्म के अध्यात्म से अधिक दर्शन के ब्रह्म का ऋणी है जो मूर्त्त और अमूर्त्त विश्व को मिला कर पूर्णता पाता है।'

'बुद्धि के सूक्ष्म धरातल पर कवि ने जीवन की अखण्डता का भावन किया, हृदय की भाव्य-भूमि पर उसने प्रकृति में बिखरी हुई सौन्दर्य सत्ता की रहस्यमयी अनुभूति की, और दोनों के साथ स्वानुभूत सुख-दुःखों को मिलाकर एक ऐसी काव्य-सृष्टि उपस्थित कर दी जो प्रकृतिवाद, हृदयवाद, अध्यात्मवाद, छायावाद और अनेक नामों का भार सँभाल सकी।'

'छायावाद करुणा की छाया में सौन्दर्य के माध्यम से व्यक्त होने वाला भावात्मक सर्ववाद ही है।'

इस प्रकार महादेवी जी के अनुसार—

१. छायावाद की मूलचेतना है सर्ववाद और इसकी भाव-भूमि है मुख्यतः प्रकृति, क्योंकि सर्ववाद की व्यञ्जना का मुख्य माध्यम वही है।

२. इस सामान्य चेतना पर कवि के व्यक्तिगत सुख-दुःख की चेतना का गहरा प्रभाव है। वास्तव में सिद्धान्त में समष्टिवादी होती हुई भी यह चेतना व्यवहार में व्यष्टिवादी ही है।

३. सर्ववाद निसर्गतः ही करुणा को जन्म देता है, अतएव जन्म से ही छायावाद पर करुणा की छाया है।

४. उसका उद्गम-स्थान हमारी प्राण चेतना का वह सूक्ष्म धरातल है जहाँ बुद्धि और चित्त का संयोग होता है। अर्थात् छायावाद चिन्तन के क्षणों की उद्भूति है। अतएव वह स्वभावतः ही अन्तर्मुखी कविता है।

५. छायावाद में मूर्त्त और अमूर्त्त के सामञ्जस्य की पूर्णता है।

उपर्युक्त विवेचन मेरी अपनी धारणाओं के इतना निकट है कि इसमें

विशेष आपत्ति के लिए स्थान नहीं है। फिर भी ऐसा अवश्य लगता है कि महादेवी जी ने छायावाद की तन्वी कविता पर दर्शन का बोझ कुछ अधिक लाद दिया है। अपने मूल-रूप में छायावाद द्विवेदी-युग की स्थूल प्रवृत्तियों के विरोध में जगी हुई जीवन के प्रति एक रोमानी प्रतिक्रिया थी—स्थूल उपयोगिता के स्थान पर जिसमें एक रहस्योन्मुखी भावुकता थी। सामयिक परिस्थितियों के अनुरोध से जीवन से रस और मांस ग्रहण न कर सकने के कारण वह एक तो वाञ्छित शक्ति का सञ्चय नहीं कर पायी, दूसरे एकान्त अन्तर्मुखी हो गई। इस प्रकार उसके आविर्भाव में मानसिक दमन और अतृप्तियों का बहुत बड़ा योग है, इसको कैसे भुलाया जा सकता है।

महादेवी जी ने कविता की तात्विक परिभाषा में छायावाद को कुछ ऐसा फिट कर दिया है कि वह कविता के परिपूर्ण क्षणों की वाणी ही लगता है—यह स्वभावतः असत्य है। छायावाद की अपनी सीमाएँ हैं। उसकी कविताओं में जितनी सूक्ष्मता है उतनी शक्ति नहीं, जितनी सुकुमारता है उतनी तीव्रता नहीं, जितना अरूप-चिन्तन है उतना मांसल रस नहीं आ सका—इसका निषेध कैसे किया जा सकता है। हमारे दो प्रतिनिधि कवि पन्त और महादेवी जीवन में पूरी तरह उतर ही नहीं पाये। जब जीवन की भूख तड़पती थी तब तो वे परिस्थितिवश उसे झुठलाते रहे, और जब भूख मन्द पड़ गई तब ये जीवन में उतरे—पर इस समय उसका संस्कार करने के अतिरिक्त इनके पास दूसरा कोई उपाय नहीं रहा। संस्कार में रस तभी आता है जब उसके द्वारा खौलती हुई वासनाओं से संघर्ष कर उन पर विजय प्राप्त की जाती है। प्रसाद और निराला में स्थान-स्थान पर वह भूख हुंकार उठी है, और वहीं वे महान् काव्य की सृष्टि कर सके हैं।

आलोचना शक्ति

महादेवी जी की आलोचना-शैली चिन्तन की शैली है, जिसमें विचार और अनुभूति का संयोग है। वह जैसे बौद्धिक तथ्यों को पचा-पचाकर हमारे समक्ष रखती हैं। निदान बौद्धिक तीक्ष्णता तो उनके विवेचन में इतनी नहीं मिलती, परन्तु संश्लेषण सर्वत्र मिलता है। कहीं भी किसी प्रकार की उलझन नहीं है। यह दूसरी बात है कि पाठक को उसे तत्काल ग्रहण कर लेने में कठिनाई हो। क्योंकि उसका तो कारण है—यह कि विचार की अपेक्षा चिन्तन को ग्रहण करने में देर लगती है। शुक्ल जी की शास्त्रीय गवेषणा से सर्वथा भिन्न यह शैली प्रसाद और पन्त की ठोस बौद्धिक विवेचना की अपेक्षा टैगोर की लचीली काव्य-चिन्तना के अधिक समीप है।

एक दूसरी विशेषता जो महादेवी की आलोचना में मिलती है वह है ऐतिहासिक एक-सूत्रता जो सामञ्जस्य को जीवन का और साहित्य का मूलाधार मानकर चलने वाले आलोचक के लिए स्वाभाविक है। उदाहरण के लिए एक ओर उन्होंने छायावाद की प्रकृति-भावना का वेदों से आरम्भ होने वाली प्रकृति-भावना की भारतीय परम्परा के साथ बड़ी सुन्दरता के साथ सम्बन्ध-निरूपण किया है; दूसरी ओर आधुनिक काव्य-प्रवृत्तियों का समाज की आर्थिक परम्पराओं के साथ। इसलिए उनकी आलोचना प्रायः एकाङ्गी नहीं हुई। उसमें अन्तर्मुखी वृत्तियों का संतुलन है, और जीवन की विस्तृत भूमिका पर रखकर भी साहित्य को उसके अतिप्रत्यक्ष प्रश्नों से बचाए रखने का विवेक और सुरुचि है।

सारतः महादेवी के ये निबन्ध काव्य के शाश्वत सिद्धान्तों के अमर व्याख्यान हैं। आज साहित्यिक मूल्यों के बवण्डर में भटका हुआ जिज्ञासु इन्हें आलोक-स्तम्भ मानकर बहुत कुछ स्थिरता पा सकता है।

गद्यकार महादेवी और नारी-समस्या

अमृतराय

['महादेवी जी की कविता समाज की दुरवस्था, असहाय नारी की विपन्न स्थिति, व्यक्ति और समाज के परस्पर 'वैषम्य', रुद्ध भावनाओं, दमित इच्छाओं और प्रचलित सामाजिक कुसंस्कारों के कारण पूर्ण रूप से प्रस्फुटित न हो पाने वाले अभिशप्त जीवन का भावात्मक, आत्मकेन्द्रिक निरूपण है; उनकी निस्व, पराजित प्रतिक्रियास्वरूप कवि का एकांत रुदन है।

इसके ठीक विपरीत महादेवी का गद्य-साहित्य मूलतः समाजकेन्द्रिक है। उसने जनता के पीड़ित जीवन को स्वर दिया है। उसने समाज के दुःख, दैन्य, उसके स्वार्थों और अभिशापों का प्रतिकार किया है। उसमें एक विद्रोही की आत्मा रुदन कर रही है। उसका मूल उत्स अपनी पीड़ा में नहीं, समाज में दिन रात चलने वालों अन्यायों और अत्याचारों में है।']

कवि के रूप में ही महादेवी अधिक प्रख्यात हैं, लेकिन उनके गद्य-साहित्य से थोड़ा-सा भी परिचय प्राप्त करने पर इस बात का पता अच्छी तरह चल जाता है कि उनका गद्यकार का रूप उनके कवि-रूप से तनिक भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। प्रतिपादित विचारों और शैली दोनों ही की दृष्टि से वह हमारे आधुनिक साहित्य का एक बहुत पुष्ट अङ्ग है और आज की हमारी प्रगतिशील सामाजिक चेतना से भली-भाँति अनुप्राणित होने ही के कारण हमारे नवीन साहित्य को स्फूर्ति भी देता है।

महादेवी का गद्य-साहित्य तीन प्रकार का है। पहला, उनका विवेचनात्मक गद्य जो उनकी कविता-पुस्तकों की भूमिका और कुछ स्फुट निबन्धों के रूप में है; दूसरा, उनके संस्मरण; तीसरा, 'चाँद' की उनकी नारी-समस्या विषयक

सम्पादकीय टिप्पणियाँ, जिन्हें पुस्तकाकार एकत्र करके 'शृङ्खला की कड़ियाँ' नाम दिया गया है। महादेवी का काव्य पढ़ चुकने पर जब पाठक उनके इस गद्य-साहित्य को पढ़ता है तब जो बात अपनी सम्पूर्ण तीव्रता में सबसे पहले उसकी चेतना को स्पर्श करती है, वह है दोनों की परस्पर विरोधी प्रवृत्ति। यहाँ पर यह भी स्मरणीय है कि यह विरोध केवल विरोधाभास नहीं, समग्र विरोध है। कवि महादेवी की दृष्टि, उनका लक्ष्य, पाठक के मन पर उनका प्रभाव, उनके साहित्यिक उपादान—सब गद्यकार महादेवी से सर्वथा भिन्न हैं, यहाँ तक कि कभी-कभी ऐसा जान पड़ने लगता है कि कवि महादेवी और गद्यकार महादेवी दो व्यक्ति हैं, एक नहीं। इस बात पर तनिक और गम्भीरता से विचार करने की आवश्यकता है। महादेवी का काव्य मूलतः आत्म-केन्द्रिक है। उसकी आत्मा को भिन्न-भिन्न आलोचकों ने भिन्न-भिन्न नाम दिये हैं। किसी ने उसे रहस्यवाद कहा है, किसी ने दुःखवाद और किसी ने रुदनवाद। महादेवो ने स्वयं अपनी कविता का सबसे अच्छा परिचय दिया है :

'मैं नीरभरी दुख की बदली'

उनकी इसी एक पंक्ति को मन में रखे हुए आप उनके सम्पूर्ण काव्य साहित्य का अवलोकन कर डालिये और तब आप तुरन्त जान लेंगे कि यही भाव शिराओं में बहने वाले रक्त के समान उसमें सर्वत्र प्रवाहित हो रहा है। अब इसे आप चाहे जिस नाम से पुकार लीजिये, उसकी मूल प्रेरणा में कोई अन्तर नहीं आयेगा और उसको जानने समझने के लिए आवश्यक है कि हम कवि की सृष्टि को कठोर धरती पर उतार कर उसका निरीक्षण करें। वैसा करने पर सहज ही यह स्पष्ट हो जाता है कि महादेवी के रुदन, दुःख अथवा 'रहस्यवाद' का उद्गम सामाजिक स्थिति में ही है। उनकी कविता समाज की दुरवस्था, असहाय नारी की विपन्न स्थिति, व्यक्ति और समाज के पर-स्पर 'वैषम्य', रुद्ध भावनाओं, दमित इच्छाओं और प्रचलित सामाजिक कुसंस्कारों के कारण पूर्ण रूप से प्रस्फुटित न हो पाने वाले अभिशप्त जीवन का भावात्मक, आत्मकेन्द्रिक निरूपण है; उनकी निरस्त्र, पराजित प्रतिक्रिया स्वरूप कवि का एकान्त रुदन है। रुदन में ही कवि को सन्तोष या आनन्द मिलने लग जाय, पीड़ा की ही वह पूजा करने लग जाय, तब भी कवि की इस असाधारण मनःस्थिति का साक्ष्य देकर यह नहीं कहा जा सकता कि सामाजिक स्थिति से असन्तोष ही उसका कारण नहीं है यह बात तो एक कठोर सत्य के रूप में अपने स्थान पर अचल है, नामों अथवा वादों के हेर-फेर

से उसका कुछ नहीं बनता बिगड़ता। इसलिए महादेवी के काव्य को मूलतः आत्मकेन्द्रिक, आत्मलीन कहना ठीक है, अपनी ही पीड़ा के वृत्त में उसकी परिसमाप्ति है। संसार की पीड़ा का स्वत. उसके लिए अधिक मूल्य नहीं है, मूल्य यदि है तो कवि की पीड़ा के रंग को गहराई देने वाले उपादान के रूप में।

इसके ठीक विपरीत महादेवी का गद्य-साहित्य मूलतः समाजकेन्द्रिक है। उसने जनता के पीड़ित जीवन को स्वर दिया है। उसने समाज के दुःख, दैन्य, उसके स्वार्थों और अभिशापों का प्रतिकार किया है। उसमें एक विद्रोही की आत्मा रुदन कर रही है। उसका मूल उत्स अपनी पीड़ा में नहीं, समाज में दिन-रात चलने वाले अन्यायों और अत्याचारों में है। अब इसका कोई उचित कारण समझ में नहीं आता कि महादेवी के इन दोनों रूपों में ऐसा अमाप पार्थक्य, ऐसा विचित्र वैषम्य क्यों है। उनके काव्य-साहित्य के अवगाहने से तो कोई भी पाठक इसी निष्कर्ष पर पहुँचेगा कि भौतिक जगत् के कठोर सन्ताप उनके समीप अस्तित्वहीन हैं और वे अपने पीड़ा-लोक में ही अपना विकास देखती हैं। ध्यान देने की बात है कि इस पीड़ा-लोक में मूल आध्यात्मिक पीड़ा को ही आँका जाता है, उसी पीड़ा का जिसका भली-भाँति उदात्तीकरण (sublimation) या तनिक और आगे बढ़ कर कहें तो अतीन्द्रियकरण हो चुका है; जरा-मृत्यु, शोक-सन्ताप का कारण जो सम्पूर्ण रूप से कठोर भौतिक पीड़ा है, जिसके कारण विशाल जन-समुदाय का जीवन जीने योग्य नहीं है, वह तो जैसे खोटा सिक्का है। परन्तु यह विचित्र बात है कि इसी 'खोटे सिक्के' से उनके तपःपूत जीवन का व्यापार चलता है। जिन्होंने पास से उनके जीवन को देखा है वे इस बात का साक्ष्य देंगे। जिन्हें इस बात का सुअवसर नहीं मिला है, वे ही उनके गद्य-साहित्य के अध्ययन से इस बात का प्रमाण पा सकेंगे कि महादेवी का कर्मनिष्ठ, सहज संवेदनशील, अन्याय का तत्पर विरोधी, सामाजिक तथा अन्य सभी कुसंस्कारों का उच्छेदक, समग्र संघर्षशील यही जीवन उनके गद्य में प्राणों का ओज बनकर बोल रहा है। इसलिये यह कहना बड़ी भूल होगी कि महादेवी के समीप जीवन की कठोर मूल वास्तविकताएँ मूल्यहीन हैं, क्योंकि उनका सारा गद्य-साहित्य इसी बात के विरोध में साक्ष्य देता है। लेकिन जीवन का जो पारदर्शी सत्य उनके गद्य-साहित्य का प्राण बनने की सामर्थ्य रखता है, वही उनके काव्यलोक में पहुँचकर क्यों सहसा नितान्त पंगु एवं अक्षम बन जाता है और उसी ओजःस्फूर्त्त रूप में उनकी भावचेतना

को भी क्यों नहीं प्रभावित करता, यह एक ऐसी समस्या है जिसका उत्तर इस समय देना सम्भव नहीं है। प्रस्तुत निबन्ध का विषय भी वह नहीं है। इस समय तो हमें उनके नारी-जीवन विषयक विचारों की ही समीक्षा करनी है।

भारतीय नारी आज कैसी उपेक्षित, अपमानित, प्रताड़ित, अधिकारहीन, व्यक्तित्वहीन प्राणी है, इसका प्रमाण खोजने जाने की ज़रूरत नहीं। जिस किसी ने भी अपनी दोनों आँखें फोड़ नहीं डाली हैं, उसके लिये यह एक स्वयंसिद्ध बात है। हमें चारों ओर नारी की दासता के प्रमाण मिलते हैं। वास्तविक बात तो यह है कि भारतीय नारी से अधिक दयनीय प्राणी संसार में कठिनाई से मिलेगा। उसे न पुत्री के रूप में अधिकार है, न माता के रूप में, न पत्नी के रूप में, न बहन के रूप में। विधवा की तो जो स्थिति हमारे समाज में है, वह बिलकुल अकथ्य है। अनेक समाज-सुधारकों ने हिन्दू विधवा को समाज की बलिवेदी पर चढ़ने वाले बलिपशु की संज्ञा दी है लेकिन चिन्तन और भावनायुक्त इस बलिपशु के लिये यह संज्ञा हल्की नहीं पड़ेगी, यह कहना कठिन है। आज हिन्दू-समाज नारी की अभिशप्त परवशता की भूमिका में दम तोड़ रहा है। जड़ रुढ़ियों और बद्धमूल संस्कारों की धूँआती हुई अग्नि में जलते हुए नारी जीवन की चिराँध से साँस लेना कठिन है। शायद हम सभी लोगों के घरों की दीवारों पर नारी के किसी न किसी रूप की निर्मम हत्या से उछले हुए खून के छींटे मिलेंगे। समाज के इस व्रण को न जानने का नाट्य अब कोई नहीं कर सकता। आज हिन्दू-समाज में (विशेषकर मध्यवर्गीय समाज में) नारी की क्या दशा है, इसका विक्षुब्ध परिचय स्वयं महादेवी के शब्दों में सुनिये :

'इस समय तो भारतीय पुरुष जैसे अपने मनोरंजन के लिये रंग-बिरंगे पक्षी पाल लेता है, उपयोग के लिये गाय या घोड़ा पाल लेता है, उसी प्रकार वह एक स्त्री को भी पालता है तथा अपने पालित पशु-पक्षियों के समान ही वह उसके शरीर और मन पर अपना अधिकार समझता है। हमारे समाज के पुरुष के विवेकहीन जीवन का सजीव चित्र देखना हो तो विवाह के समय, गुलाब सी खिली हुई स्वस्थ बालिका को पाँच वर्ष बाद देखिये। उस समय, उस असमय प्रौढ़ हुई दुर्बल सन्तानों को रोगिणी पीली माता में कौन सी विवशता, कौन सी रुला देने वाली करुणा न मिले!'

—शृंखला की कड़ियाँ, पृष्ठ १०२

और भी तीखा परिचय लीजिये :

'क़ानून हमारे स्वत्वों की रक्षा का कारण न बनकर चीनियों के काठ के

जूते की तरह हमारे ही जीवन के आवश्यक तथा जन्मसिद्ध अधिकारों को संकुचित बनाता जा रहा है। सम्पत्ति के स्वामित्व से वंचित असंख्य स्त्रियों के सुनहले भविष्यमय जीवन कीटाणुओं से भी तुच्छ माने जाते देख कौन सहृदय रो न देगा? चरम दुरवस्था के सजीव निदर्शन हमारे यहाँ के सम्पन्न पुरुषों की विधवाओं और पैतृक धन के रहते हुए भी दरिद्र पुत्रियों के जीवन हैं। स्त्री पुरुष के वैभव की प्रदर्शिनी मात्र समझी जाती है और बालक के न रहने पर जैसे उसके खिलौने निर्दिष्ट स्थानों से उठाकर फेंक दिये जाते हैं, उसी प्रकार एक पुरुष के न होने पर न स्त्री के जीवन का कोई उपयोग ही रह जाता है, न समाज या गृह में उसको कहीं निश्चित स्थान ही मिल सकता है। जब जला सकते थे तब इच्छा या अनिच्छा से उसे जीवित ही भस्म करके स्वर्ग में पति के विनोदार्थ भेज देते थे, परन्तु अब उसे मृत पति का ऐसा निर्जीव स्मारक बनकर जीना पड़ता है जिसके सम्मुख श्रद्धा से नत मस्तक होना तो दूर रहा, कोई उसे मलिन करने की इच्छा भी रोकना नहीं चाहता।'

—पृ० १६—१७

हिन्दू-नारी की घर और बाहर दोनों जगह एक ही सी स्थिति है :

'हिन्दू नारी का घर और समाज इन्हीं दो से विशेष सम्पर्क रहता है। परन्तु इन दोनों ही स्थानों में उसकी स्थिति कितनी करुण है, इसके विचार मात्र से ही किसी भी सहृदय का हृदय काँपे बिना नहीं रहता। अपने पितृ-गृह में उसे वैसा ही स्थान मिलता है जैसा किसी दूकान में उस वस्तु को प्राप्त होता है जिसके रखने और बेचने दोनों ही में दूकानदार को हानि की सम्भावना रहती है। जिस घर में उसके जीवन को ढलकर बनना पड़ता है, उसके चरित्र को एक विशेष रूपरेखा धारण करनी पड़ती है, जिस पर वह अपने शैशव का सारा स्नेह ढुलकाकर भी तृप्त नहीं होती, उसी घर में वह भिक्षुक के अतिरिक्त कुछ नहीं है। दुःख के समय अपने आहत हृदय और शिथिल शरीर को लेकर वह उसमें विश्राम नहीं पाती, भूल के समय वह अपना लज्जित मुख उसके स्नेहांचल में नहीं छिपा सकती और आपत्ति के समय एक मुट्ठी अन्न की भी उस घर से आशा नहीं रख सकती। ऐसी है उसकी वह अभागी जन्मभूमि जो जीवित रहने के अतिरिक्त और कोई अधिकार नहीं देती! पति-गृह जहाँ इस उपेक्षित प्राणी को जीवन का शेष भाग व्यतीत करना पड़ता है, अधिकार में उससे कुछ अधिक परन्तु सहानुभूति में ससे बहुत कम है, इसमें सन्देह नहीं। यहाँ उसकी स्थिति पल भर भी

आशंका से रहित नहीं। यदि वह विद्वान पति की इच्छानुकूल विदुषी नहीं है, तो उसका स्थान दूसरी को दिया जा सकता है। यदि वह सौन्दर्योपासक पति की कल्पना के अनुरूप अप्सरी नहीं है, तो उसे अपना स्थान रिक्त कर देने का आदेश दिया जा सकता है। यदि वह पति की कामना का विचार करके सन्तान या पुत्रों की सेना नहीं दे सकती, यदि वह रुग्ण है या दोषों का नितान्त अभाव होने पर वह पति की अप्रसन्नता की दोषी है, तो भी उसे घर में दासत्व मात्र स्वीकार करना पड़ेगा।'

—शृंखला की कड़ियाँ, पृष्ठ ३६-४०

पुरुष-शासित समाज में नारी की दासता का इससे अधिक प्रखर परिचय दूसरा नहीं हो सकता :

'साधारण रूप से वैभव के साधन ही नहीं, मुट्ठी भर अन्न भी स्त्री के सम्पूर्ण जीवन से भारी ठहरता है।'

—अतीत के चलचित्र, पृष्ठ ५३

महादेवी इन निष्कर्षों पर किताबी ज्ञान के सहारे नहीं, जीवन के निकट परिचय द्वारा पहुँची हैं। यही कारण है कि उनके संस्मरणों में से अधिकांश नारी की परवशता का चित्र उपस्थित करते हैं। विधवा जीवन के जो चित्र उन्होंने दिये हैं, उनमें ख़ास तलख़ी है। इस प्रश्न पर उनका ध्यान बार-बार जाने का कारण भी शायद यही है कि यहीं पर नारी की परवशता का घोर-तम रूप दिखाई पड़ता है।

वेश्याओं की समस्या पर भी उन्होंने अपने सहज संवेदनशील ढँग से विचार किया है और उन्हीं निष्कर्षों पर पहुँची हैं, जिन पर कोई समाज शास्त्री पहुँचता। वेश्याओं को हेय समझने वालों का समुदाय विस्तृत है, लेकिन उनको उस हेय स्थिति तक पहुँचाने में और उन्हें वहीं रखने में स्वयं उनका हाथ भी है, इसे समझने वाले बिरले ही मिलेंगे। उन पर विचार करते हुए अधिकांश लोग अपने कल्पित पवित्र्याभिमान की गरिमा से फूलकर नाक-भौं सिकोड़ते देखे जायँगे, लेकिन उनकी पवित्रता, उनकी नैतिकता को वेश्याओं की नैतिकता से ऊँचा कहने के लिये ठिठक कर थोड़ा विचार अवश्य करना पड़ेगा।

महादेवी कितने सहानुभूतिपूर्ण ढंग से वेश्या—जीवन पर विचार करती हैं, इसे देखिये :

'यदि स्त्री की ओर से देखा जाय तो निश्चय ही देखने वाला काँप उठेगा। उसके हृदय में प्यास है, परन्तु उसे भाग्य ने मृग-मरीचिका में

निर्वासित कर दिया है। उसे जीवन भर आदि से अन्त तक सौंदर्य की हाट लगानी पड़ी, अपने हृदय की समस्त कोमल भावनाओं को कुचल कर आत्म-समर्पण की सारी इच्छाओं का गला घोंटकर रूप का क्रय-विक्रय करना पड़ा—और परिणाम में उसके हाथ आया निराशा-हताश एकाकी अन्त। × × × × जीवन की एक विशेष अवस्था तक संसार उसे चाटुकारी से मुग्ध करता रहता है, झूठी प्रशंसा की मदिरा से उन्मत्त करता रहता है, उसके सौन्दर्य-दीप पर शलभ-सा मँडराता रहता है, परन्तु, उस मादकता के अन्त में, उस बाढ़ के उतर जाने पर, उसकी ओर कोई सहानुभूति-भरे नेत्र भी नहीं उठाता। उस समय उसका तिरस्कृत स्त्रीत्व, लोलुपों के द्वारा प्रशंसित रूप-वैभव का भग्नावशेष, क्या उसके हृदय को किसी प्रकार की सान्त्वना भी दे सकता है? जिन परिस्थितियों ने गृह-जीवन से उनका बहिष्कार किया, जिन व्यक्तियों ने उसके काले भविष्य को सुनहले स्वप्नों से ढाँका, जिन पुरुषों ने उसके नूपुरों की रुन-झुन के साथ अपने हृदय के स्वर मिलाये और जिस समाज ने उसे इस प्रकार हाट लगाने के लिये विवश तथा उत्साहित किया, वे क्या कभी उसके एकाकी अन्त का भार कम करने लौट सके?'

—शृंखला की कड़ियाँ, पृष्ठ १११-११२

इसी समस्या पर पुनः लिखते हुए महादेवी के इस पवित्र क्षोभ को देखिये :

'इन स्त्रियों ने, जिन्हें गर्वित समाज पतित के नाम से सम्बोधित करता आ रहा है, पुरुष की वासना की वेदी पर कैसा घोरतम बलिदान दिया है, इस पर कभी किसी ने विचार भी नहीं किया। पुरुष की बर्बरता, रक्त-लोलुपता पर बलि होने वाले युद्ध—वीरों के चाहे स्मारक बनाये जावें, पुरुष की अधिकार भावना को अक्षुण्ण रखने के लिये प्रज्ज्वलित चिता पर क्षण भर में जल मिटने वाली नारियों के नाम चाहे इतिहास के पृष्ठों में सुरक्षित रह सकें, परन्तु पुरुष की कभी न बुझने वाली वासनाग्नि में हँसते-हँसते अपने जीवन को तिल-तिल जलाने वाली इन रमणियों को मनुष्य-जाति ने कभी दो बूँद आँसू पाने का अधिकारी भी नहीं समझा। × × × × कभी कोई ऐसा इतिहासकार न हुआ, जो इन मूक प्राणियों की दुखःभरी जीवन गाथा लिखता; जो इनके अँधेरे हृदय में इच्छाओं के उत्पन्न और नष्ट होने की करुण-कहानी सुनाता, जो इनके रोम-रोम को जकड़ लेने वाली शृंखला की कड़ियाँ ढालने वालों के नाम गिनाता और जो इनके मधुर जीवन-पात्र में तिक्त विष मिलाने वाले का पता देता।'

—शृंखला की कड़ियाँ, पृष्ठ ११३-११४

वेश्याओं के प्रति जो दृष्टिकोण उपर्युक्त उद्धरणों में रूपायित हुआ है, वह केवल सहानुभूतिपूर्ण ही नहीं, प्रगतिशील भी है,क्योंकि वह यथार्थ पर आधारित है, जीवन-सम्मत है। इस समस्या पर विचार करने वाले सभी समाजशास्त्रियों ने इस बात को स्वीकार किया है कि वेश्यावृत्ति स्वीकार करने का कारण उन स्त्रियों की व्यक्तिगत दुर्बलता नहीं, सामाजिक परिस्थिति-जन्य विवशता ही है। जहाँ नारी सब से अधिक पराधीन है, वहीं वेश्यावृत्ति भी सबसे अधिक है। जहाँ सम्पूर्ण समाज के साथ-साथ नारी भी स्वधीन है, वहाँ वेश्यावृत्ति नहीं है। ऐसा सम्पूर्ण स्वाधीन समाज तो सोवियत रूस में ही है, इसीलिये वहाँ वेश्यावृत्ति का नाम भी नहीं है और वे स्त्रियाँ जो कभी वेश्यावृत्ति से जीविका उपार्जित करती थीं, आज सम्पूर्ण नागरिक अधिकारों के साथ अपने समाज की क्रियाशील सदस्याएँ हैं और देश को अपनी अन्य पुत्रियों के समान ही उन पर भी गर्व है। इस प्रश्न पर आगे हम और विस्तार से विचार करेंगे। यहाँ तो केवल यह दिखलाना उद्दिष्ट है कि वेश्याओं की समस्या पर न्यायपूर्ण ढंग से विचार ही नहीं किया जा सकता, जब तक आप उन्हें सामाजिक परिस्थितियों की भूमिका में रखकर न देखें। ऐसा करने पर आप उसी बर्बर असभ्य 'निष्कर्ष' पर पहुँचेंगे जिस पर विशाल अशिक्षित जन-समुदाय पहुँचता है, कि वे विशेष कामुकी होती हैं और उनका कोई इलाज सम्भव नहीं। सदा ऐसी स्त्रियाँ होती रहेंगी, जिनकी सम्भोगेच्छा इतनी प्रबल होगी कि वे एक पति के प्रति अनुरक्त होकर रह ही नहीं सकेंगी, आदि। एक बार फिर यह कहना आवश्यक है कि इस प्रश्न पर यह दृष्टि घोर बर्बरता की द्योतक है। सभ्य, शिक्षित दृष्टिकोण यह है।

'मनुष्य जाति के सामान्य गुण सभी मनुष्यों में कम या अधिक मात्रा में विद्यमान रहेंगे। केवल विकास के अनुकूल या प्रतिकूल परिस्थितियाँ उन्हें बढ़ा-घटा सकेंगी। पतित कही जाने वाली स्त्रियाँ भी मनुष्य-जाति से बाहर नहीं हैं, अतः उनके लिए भी मानव-सुलभ प्रेम, साधना और त्याग अपरिचित नहीं हो सकते। उनके पास भी धड़कता हृदय है, जो स्नेह का आदान-प्रदान चाहता रहता है, उनके पास भी बुद्धि है जिसका समाज के कल्याण के लिए उपयोग हो सकता है और उनके पास भी आत्मा है जो व्यक्तित्व में अपने विकास और पूर्णत्व की अपेक्षा रखती है। ऐसे सजीव व्यक्ति को एक ऐसे गर्हित व्यवसाय के लिए बाध्य करना जिसमें उसे जीवन के आदि से अन्त तक उमड़ते हुए आँसुओं को अंजन से छिपा कर, सूखे हुए अधरों को मुस्कराहट से सजाकर और प्राणों के क्रन्दन को कण्ठ ही में रूँधकरधातु के

कुछ टुकड़ों के लिए अपने आपको बेचना होता है, हत्या के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।'

—पृ. ११२

रूप का व्यवसाय गर्हित है, व्यवसायी नहीं; क्योंकि किन्हीं परिस्थितियों से विवश होकर ही उसे यह व्यवसाय करना पड़ा होगा, इसलिए दोष परिस्थितियों का है, परिस्थितियों के निर्माण करने वालों का है। जो परिस्थितियों के वैभव में पड़कर बह गया, वह तो हमारी दया का पात्र ही हो सकता है। उसके प्रति तो हम केवल रचनात्मक दृष्टिकोण रख सकते हैं, जिसमें हम पुनः उन परिस्थितियों का निर्माण कर सकें जिनमें पहले का रूप व्यवसायी फिर से हमारे समाज का आदृत सदस्य बन सके। स्वतन्त्र देश और स्वतन्त्रचेता विचारक यही दृष्टिकोण रखते भी हैं। अभी कुछ दिन हुए समाचार आया था कि फ्रांस ने, नये स्वाधीन जागरित फ्रांस ने, वेश्या-वृत्ति को अवैध घोषित कर दिया है और वेश्याओं को अन्य कार्यों में लगाने की व्यवस्था की है। यही सभी स्वाधीन देशों में होगा। नये रूस का उदाहरण भी इस दिशा में बहुत उपयोगी है। अपनी मातृभूमि की स्वाधीनता के युद्ध में ज़ारशाही रूस की वेश्याओं और आज की सोवियत महिलाओं का स्थान अन्य स्त्रियों से अणुमात्र भी कम नहीं रहा। उन्होंने छापामारों के दस्तों में भी काम किया। जो काम उनकी अन्य बहनों ने किया, वही उन्होंने भी उतनी ही लगन के साथ किया। इसीलिये कि संसार के सभ्यतम देश समाजवादी रूस ने उन्हें मनुष्य बनने का अवसर दिया था, उन्हें उस आत्मा का हनन करने वाले व्यापार से छुटकारा दिया था, उसने घृणा न करके उन्हें हृदय से लगा लिया था। उनके प्रति महादेवी के दृष्टिकोण में भी यही संवेदनशीलता, यही करुणा परिलक्षित होती है और इसी करुणा में नवनिर्माण की शक्ति है। यह करुणा वायवी नहीं, जीवन के गतिशील दर्शन पर आधारित है, इसीलिये जहाँ उसमें बलिपशु के लिये अजस्र करुणा है, वहीं बलि करने वाले के लिये हिंस्र घृणा।

विधवाओं और वेश्याओं की समस्या पर विचार करने के साथ-साथ महादेवी ने कुछ अन्य सामान्य प्रश्नों पर भी विचार किया है, जैसे सामाजिक रूढ़ियाँ। प्राचीनता और नवीनता का संघर्ष बहुत पुराना है और वह आज भी सुलझने का नाम नहीं लेता। उसके सम्बन्ध में विचार करते हुए वे लिखती हैं:—

'प्राचीनता की पूजा बुरी नहीं, उसकी दृढ़ नींव पर नवीनता की भित्ति

खड़ी करना भी श्रेयस्कर है, परन्तु उसकी दुहाई देकर जीवन को संकीर्ण से संकीर्णतम बनाते जाना और विश्वास के मार्ग को चारों ओर से रुद्ध कर लेना किसी जीवित व्यक्ति पर समाधि बना देने से भी अधिक क्रूर और विचारहीन कार्य है।

'जीवन की सफलता अतीत से भिक्षा लेकर अपने आपको नवीन वातावरण के उपयुक्त बना लेने, नवीन समस्याओं को सुलझा लेने में है, केवल उनके अन्धानुसरण में नहीं। अतः अब स्त्रियों से सम्बद्ध अनेक प्राचीन वैधानिक व्यवस्थाओं में संशोधन तथा अर्वाचीनों का निर्माण आवश्यक है।

'समस्त सामाजिक नियम मनुष्य की नैतिक उन्नति तथा उसके सर्वतोमुखी विकास के लिए आविष्कृत किये गये हैं। जब वे ही मनुष्य के विकास में बाधा डालने लगते हैं तब उनकी उपयोगिता ही नहीं रह जाती। उदाहरणार्थ विवाह की संस्था पवित्र है, उसका उद्देश्य भी उच्चतम है, परन्तु जब वह व्यक्तियों के नैतिक पतन का कारण बन जावे, तब अवश्य ही उसमें किसी अनिवार्य संशोधन की आवश्यकता समझनी चाहिए।'

उपर्युक्त सभी उद्धरणों से एक अत्यन्त सुलझे हुए और रूढ़ियों से मुक्त प्रगतिशील विचारक का परिचय मिलता है। महादेवी के विचार में कहीं प्राचीनता के लिये आग्रह नहीं है और सर्वत्र नवीनतम मान्यताओं के स्वीकरण का भाव है। उनके विचारों में किसी सामाजिक कुसंस्कार या जड़ता की छाया भी नहीं मिलेगी। यहाँ तक कि 'जारज' या अवैध सन्तानों की समस्याओं पर भी उनके दृष्टिकोण में वही उदारता है, वस्तुस्थिति को निर्भीक भाव से ग्रहण करने की सच्चाई है, जो विधवाओं तथा वेश्याओं की ओर से संघर्ष करते हुए उनमें पाई जाती है। अवैध सन्तति की समस्या बड़ी समस्या है। उसे उदार भाव से समस्त नागरिक अधिकारों के साथ ग्रहण कर लेने के लिए आन्दोलन करने वाले कम ही समाज सुधारक मिलेंगे। क्रान्तिकारी दृष्टिकोण के बिना यह सम्भव नहीं। महादेवी में यही क्रान्तिकारी दृष्टिकोण मिलता है। पुराणपंथियों की भर्त्सना करते हुए वे लिखती हैं:—

'जिन मानवीय दुर्बलताओं को वे स्वयं अविरत संयम और अटूट साधना से भी जीवन के अन्तिम क्षणों तक न जीत सकेंगे उन्हीं दुर्बलताओं को किसी भूली हुई अस्पष्ट सुधि-द्वारा जीत लेने का आदेश वे उन अबोध बालिकाओं को दे डालेंगे जो जीवन से अपरिचित हैं। उनकी आज्ञा है, उनके शास्त्रों की आज्ञा है और कदाचित उनके निर्मम ईश्वर की भी आज्ञा

है. कि वे जीवन की प्रथम अँगड़ाई को अन्तिम प्राणायाम में परिवर्त्तित करदें, आशा की पहली किरण को विषाद के निविड़ अन्धकार में समाहित करदें, और सुख के मधुर पुलक को आँसुओं में बहा डालें।'

—पृ. ४२-४३

जिससे एक बार भी चूक हुई, उसकी क्या दुर्दशा होती है, इसे महादेवी ने विशेष रूप से 'अतीत के चलचित्र' के छठे संस्करण की मुख्य पात्री अठारह वर्ष की विधवा के चित्र द्वारा समझाया है। उसी पर विचार करते हुए लिखती हैं:

'अपने अकाल वैधव्य के लिए वह दोषी नहीं ठहराई जा सकती। उसे किसी ने धोखा दिया, इसका उत्तरदायित्व भी उस पर नहीं रखा जा सकता। पर उस आत्मा का जो अंश, हृदय का जो खंड उसके समान है, उसके जीवन-मरण के लिए केवल वही उत्तरदायी है। कोई पुरुष यदि उसको अपनी पत्नी नहीं स्वीकार करता, तो केवल इस मिथ्या के आधार पर वह अपने जीवन के इस सत्य को, अपने बालक को अस्वीकार कर देगी? संसार में चाहे इसको कोई परिचयात्मक-विशेषण न मिला हो, परन्तु अपने बालक के निकट तो यह गरिमामयी जननी की संज्ञा ही पाती रहेगी। इसी कर्तव्य को अस्वीकार करने का यह प्रबन्ध कर रही है। किस लिए? केवल इसलिए कि या तो उस वंचक समाज में फिर लौटकर गंगा-स्नान कर व्रत-उपवास, पूजा-पाठ आदि के द्वारा सती विधवा का स्वाँग भरती हुई और भूलों की सुविधा पा सके या किसी विधवा आश्रम में पशु के समान नीलाम पर कभी नीची कभी ऊँची बोली पर बिके, अन्यथा एक बूँद विष पीकर धीरे धीरे प्राण दे।'

—पृ. ६०-६१

अवैध सन्तान के विषय में लिखते हुए देखिये उनकी करुणा किस प्रकार इस तिरस्कृत नवजात शिशु की ओर प्रवाहित होती है:

छोटी लाल कली जैसा मुँह नींद में कुछ खुल गया था और उस पर एक विचित्र सी मुस्कराहट थी, मानों कोई सुन्दर स्वप्न देख रहा हो। इसके आने से कितने भरे हृदय सूख गये, कितनी सूखी आँखों में बाढ़ आ गयी और कितनों को जीवन की घड़ियाँ भरना दूभर हो गया, इसका इसे कोई ज्ञान नहीं। यह अनाहूत, अवांछित अतिथि, अपने सम्बन्ध में भी क्या जानता है? इसके आगमन ने इसकी माता को किसी की दृष्टि में आदरणीय नहीं बनाया, इसके स्वागत में मेवे नहीं बँटे, बधाई नहीं गायी गयी, दादा नाना ने अनेक नाम नहीं सोचे, चाची-ताई ने अपने नेग के लिए वाद-विवाद

नहीं किया और पिता ने इसमें अपनी आत्मा का प्रतिरूप नहीं देखा।'

कितने सजीव चित्रमय रूप में इस 'अवांछित अतिथि' के प्रति समाज का निर्मम तिरस्कार उन्होंने व्यक्त किया है। समाज के इस बर्बर निर्माण का वे कितना मूल्य आँकती हैं, वह तो इसी से स्पष्ट है कि उन्होंने एक प्रकार से समाज को चुनौती देकर इन अभागे माँ-बेटे को अपनी ममतमयी क्रोड़ में आश्रय दिया, और जैसे घोषणा की—ओ धर्मध्वजिओ, तुम्हारे प्रमाण-पत्रों को मैं कूड़ा-करकट समझती हूँ।

महादेवी ने नारी की परवशता की समस्या पर केवल कवि की करुणा विगलित दृष्टि डाली हो, सो बात नहीं है। उन्होंने एक गम्भीर समाजशास्त्री के रूप में इस समस्या पर चिन्तन किया है। इसीलिए नारी की इस परवशता का मूल कारण क्या है यह पता लगाने में भी उन्हें ज्यादा देर न लगी। उनका यह निश्चित मत है, कि स्त्रियों की इस परवशता के मूल में उनकी आर्थिक परवशता है और इसीलिये उनकी परवशता का उच्छेद तब तक असम्भव है जब तक स्त्री आर्थिक रूप से स्वावलम्बी नहीं हो जाती। वे कहती हैं:

'अनेक व्यक्तियों का विचार है कि यदि कन्याओं को स्वावलम्बिनी बना देंगे तो वे विवाह ही न करेंगी, जिससे दुराचार भी बढ़ेगा और गृहस्थ–धर्म में भी अराजकता उत्पन्न हो जायगी। परन्तु वे यह भूल जाते हैं कि स्वाभाविक रूप से विवाह में किसी व्यक्ति के साहचर्य की इच्छा प्रधान होना चाहिए, आर्थिक कठिनाइयों की विवशता नहीं।'

—शृंखला की कड़ियाँ, पृ. १०२

और भी अधिक स्पष्ट शब्दों में:

'स्त्री के जीवन की अनेक विवशताओं में प्रधान और कदाचित उसे सबसे अधिक जड़ बनाने वाली अर्थ से सम्बन्ध रखती है और रखती रहेगी क्योंकि वह सामाजिक प्राणियों की अनिवार्य आवश्यकता है।'

'अर्थ का विषय-विभाजन भी एक ऐसा ही बन्धन है जो स्त्री-पुरुष दोनों को समान रूप से प्रभावित करता है।'

'समाज ने स्त्री के सम्बन्ध में अर्थ का ऐसा विषय-विभाजन किया है कि साधारण श्रमजीवी वर्ग से लेकर सम्पन्न वर्ग की स्त्रियों तक की स्थिति दयनीय ही कही जाने योग्य है। वह केवल उत्तराधिकार से ही वंचित नहीं है, वरन् अर्थ के सम्बन्ध में सभी क्षेत्रों में एक प्रकार की विवशता के बन्धन में बँधी हुई है। कहीं पुरुष ने न्याय का सहारा लेकर और कहीं अपने स्वा-

मित्व की शक्ति से लाभ उठाकर उसे इतना अधिक परावलम्बी बना दिया है, कि वह उसकी सहायता के बिना संसार-पथ में एक पग भी आगे नहीं बढ़ सकती।'

'इस प्रकार स्त्री की स्थिति 'नितान्त परवशता' की हो गयी और पुरुष की स्थिति 'स्वच्छन्द आत्मनिर्भरता' को। यह स्थिति-वैषम्य ही नारी-पुरुष सम्बन्ध की विषमता के मूल में है।'

महादेवी के उपर्युक्त उद्धरणों को लेनिन की इस युक्ति से मिलाइये:

'जब तक स्त्रियाँ घरेलू कामकाज में फँसी रहती हैं, तब तक उनकी परवश स्थिति रहती है। स्त्री-जाति की पूर्ण स्वाधीनता के लिये और इन्हें सच्चे अर्थ में पुरुषों का समकक्ष बनाने के लिये आवश्यक है, कि हम सामाजिक उत्पादन प्रणाली का सूत्रपात करें और स्त्रियों को इस बात का अवसर दें, कि वे भी पुरुषों ही की भाँति सामाजिक उत्पादन के श्रम में हाथ बँटा सकें। तब स्त्री और पुरुष की समान स्थिति हो जायगी।' [1]

अपने इसी विचार को लेनिन एक स्थल पर और अधिक विशद रूप में प्रस्तुत करते हैं:

'युगों पहले पश्चिमी योरप के सभी स्वाधीनता आन्दोलनों के प्रतिनिधियों ने दशाब्दियों तक ही नहीं शताब्दियों तक इस बात का आन्दोलन किया कि (स्त्री और पुरुष के विषमतामूलक) पुराणपंथी, जड़ कानूनों को उठा दिया जाय और स्त्री तथा पुरुष में कानूनी समता स्थापित कर दी जाय। लेकिन एक भी योरोपीय गणतांत्रिक राष्ट्र, वह तक जो सबसे आगे बढ़ा हुआ था, ऐसा न कर सका, क्योंकि पूँजीवाद का राज्य है, जहाँ ज़मीन और कलकारखानों पर व्यक्तिगत स्वामित्व की रक्षा की जाती है, जहाँ पूँजी की सत्ता अचल है, वहाँ पुरुष का (नारी) स्वामित्व भी अटल रहेगा। रूस में हमें स्त्री और पुरुषकी समता स्थापित करने में सफलता केवल इसलिये मिली कि ७ नवम्बर १९१७ को हमारे यहाँ मज़दूरों का राज्य स्थापित हुआ। × × × कमकरों की सरकार, सोवियत सरकार ने अपनी स्थापना के चन्द महीनों के अन्दर ही स्त्रियों से सम्बद्ध कानूनों में क्रान्ति ला दी। स्त्रियों को (पुरुषों के) अधीन रखने वाले क़ानूनों का लेशमात्र भी अब सोवियत प्रजातन्त्र में नहीं रह गया है। मेरा मतलब ख़ासतौर पर उन क़ानूनों से है जो स्त्री की दुर्बलता का अनुचित लाभ उठाते थे और उसे हीन तथा बहुधा अपमानजनक स्थिति

---

1. Selected works, vol. lx. p. 496.

में डाल देते थे—मेरा मतलब तलाक़ के तथा अवैध सन्तान से सम्बद्ध क़ानूनों से है, स्त्री के इस अधिकार से है कि वह अपनी सन्तान के पिता पर गुज़ारे के लिये दावा दायर कर सके।'[२]

स्पष्ट है कि नारी-स्वाधीनता के प्रश्न पर महादेवी के विचार विज्ञान-सम्मत रूप में समाजवाद से प्रभावित हैं। नारी की परवशता का जो मूल कारण समाजवाद बतलाता है, महादेवी भी अपने धर्मक्षेत्र के आधार पर उससे सह-मत हैं। जीवन के प्रति महादेवी का दृष्टिकोण स्वस्थ गाँधीवादी है, इसमें सन्देह नहीं, किन्तु नारी-स्वाधीनता के प्रश्न पर वे समाजवाद के ही अधिक समीप हैं। गाँधीवाद में नारी को घर ही में सीमित रखने का जो आग्रह है, उसे महादेवी स्वीकार नहीं करतीं। गार्हस्थिक उत्तरदायित्वों की पवित्रता आदि के सम्बन्ध में जो लम्बी-चौड़ी बातें उस ओर से कही जाती हैं, उनका भी महादेवी पर कोई प्रभाव नहीं है। महादेवी ने रोग की जड़ पहचान ली है। वे इस बात को बिलकुल अस्वीकार करती हैं कि स्त्री का कार्य-क्षेत्र केवल घर है; घर के बाहर पुरुष का कार्यक्षेत्र है, जहाँ स्त्री को पैर भी न रखना चाहिये। कहती हैं:

> 'वास्तव में स्त्री भी अब केवल रमणी या भार्या नहीं रही, वरन् घर के हर समाज का एक विशेष अंग तथा महत्वपूर्ण नागरिक है, अतः उसका कर्तव्य भी अनेकाकार हो गया है...'

महादेवी का मत है कि स्त्री का कार्यक्षेत्र घर भी है और बाहर भी। घर के दायित्वों के प्रति 'आधुनिकाओं' का जो विद्रोह है, उसे भी वे स्वीकार नहीं करतीं और घर के दायित्वों तक ही सीमित रह जाने वाली बात को, घर की गुलामी को भी नहीं स्वीकार करतीं। उनका रास्ता मध्य का है, जिसका मूल मन्त्र है:

> 'समाज को किसी न किसी दिन स्त्री के असन्तोष को सहानुभूति के साथ समझकर उसे ऐसा उत्तर देना होगा, जिसे पाकर वह अपने आपको उपेक्षित न माने और जो उसके मातृत्व के गौरव को अक्षुण्ण रखते हुए भी उसे नवीन युग की सन्देशवाहिका बना सकने में समर्थ हो।'

यह घर और बाहर की सनातन समस्या को सामञ्जस्यपूर्ण ढंग से सम-न्वय के आधार पर हल करने का प्रयास है और शायद इस प्रश्न पर यही

---

२. उपरोक्त पुस्तक, पृष्ठ ४९६

स्वस्थतम, प्रगतिशील दृष्टिकोण भी है। 'आधुनिका' की, जो सहज प्रवृत्ति घर से सम्पूर्ण रूप में सम्बन्ध-विच्छेद कर लेने की है, वह ध्वंसात्मक है, रचनात्मक नहीं। उसके सम्बन्ध में महादेवी कहती हैं:

'अनुकरण को चरम लक्ष्य माननेवाली महिलाओं ने भी अपने व्यक्तित्व के विकास के लिये सत्पथ नहीं खोज पाया, परन्तु उस स्थिति में उसे खोज पाना सम्भव भी नहीं था। इन्हें अपने मूक छायावत् निर्जीव जीवन से ऐसी मर्म व्यथा हुई कि उसके प्रतिकार के लिये उपयुक्त साधनों के आविष्कार का अवकाश ही न मिल सका। अतः उन्होंने अपने आपको पुरुषों के समान ही कठिन बना लेने की कठोर साधना आरम्भ की। कहना नहीं होगा कि इसमें सफलता का अर्थ स्त्री के मधुर व्यक्तित्व को जलाकर उसकी भस्म से पुरुष की रूक्ष मूर्ति गढ़ लेना है। फलतः आज की विद्रोहशील नारी व्यावहारिक जीवन में अधिक कठोर है, गृह में अधिक निर्मम और शुष्क, आर्थिक दृष्टि से अधिक स्वाधीन, सामाजिक क्षेत्र में अधिक स्वच्छन्द, परन्तु अपनी निर्धारित रेखाओं की संकीर्ण सीमा की बन्दिनी है।'

महादेवी 'आधुनिका' के इस 'विद्रोह' को आत्महत्या समझती हैं। उनका विश्वास है कि घर और बाहर दोनों ही स्त्री के कार्यक्षेत्र हैं, दोनों में परस्पर कोई विरोध नहीं है, वस्तुतः दोनों एक दूसरे के पूरक हैं और यदि संतुलन के साथ दोनों को साथ लेकर चलने का प्रयत्न किया जाय तो थोड़े ही श्रम से इस दिशा में निश्चय ही सफलता मिल सकती है।

महादेवी इतना कहकर ही संतोष नहीं कर लेतीं कि स्त्री का कार्य-क्षेत्र घर के बाहर भी है। वे अलग-अलग काम गिनाती भी हैं। जैसे महिला-साहित्य व बाल-साहित्य की रचना। इस दो प्रकार के साहित्य की रचना में स्त्रियों को ही सर्वाधिक सफलता मिलने की सम्भावना है, क्योंकि ये दोनों विषय एक प्रकार से उन्हीं से सम्बन्ध रखते हैं। इस साहित्य रचना के अलावा शिक्षा, चिकित्सा और क़ानून के क्षेत्रों में वे विशेष रूप से सहायक तथा उपयोगी हो सकती हैं। बालक-बालिकाओं की शिक्षा, रोगियों की सेवा-सुश्रूषा आदि का कार्य तथा बाल एवं महिला-साहित्य की रचना निश्चय ही ऐसे मार्ग हैं जिनके सम्बन्ध में महादेवी का उपर्युक्त सिद्धान्त लागू किया जा सके। अर्थात् वे ऐसे कार्य हैं जो उसके मातृत्व को अक्षुण्ण रखते हुए भी उसे नवीन युग की सन्देशवाहिका बना सकने में समर्थ हैं। महादेवी के इन विचारों का पूरा महत्त्व तब समझ में आता है जब हम संसार की

अकेली समग्र क्रान्तिकारी शासन-सत्ता, सोवियत रूस में स्त्रियों की स्थिति पर नज़र दौड़ाते हैं। वहाँ भी स्त्री जाति का विकास उसके मातृत्व की रक्षा मात्र के आधार पर नहीं, बल्कि उसके विकास के आधार पर हुआ है। सोवियत राज ने स्त्री के मातृत्व को विकसित करके स्त्री जाति का उन्नयन किया है और उसे सोवियत समाज का उपयोगी सदस्य बनाया है, उसके मातृत्व को अपहृत या विस्मृत करके नहीं। यही कारण है कि सोवियत रूस में स्त्रियों का उन्हीं क्षेत्रों में सब से अधिक विकास हुआ जिनकी ओर महादेवी ने संकेत किया है। विभिन्न देशों में सोवियत नारी का क्या आनुपातिक स्थान है, इसके आँकड़े देखने पर पता चलता है कि वैज्ञानिक खोज के कार्य में स्त्रियों की संख्या ३४ प्रतिशत थी, विश्वविद्यालयों के कुल विद्यार्थियों में महिला विद्यार्थियों की संख्या ४३.१ प्रतिशत थी, चिकित्सकों की कुल संख्या में आधे से ऊपर (५०.६ प्रतिशत) महिलाएँ थीं और अध्यापन के क्षेत्र में तो स्त्रियों ने पुरुषों को बिलकुल पीछे छोड़ दिया था, अध्यापिकाओं की संख्या कुल की ६४.८ प्रतिशत थी। कृषि और कल-कारखानों की मज़दूरी के कार्य में भी स्त्रियाँ क्रमशः ३७.१ और ३६.७ प्रतिशत थीं, जो कि कम नहीं है। लेकिन शिक्षा और चिकित्सा ही वे दो मुख्य कार्यक्षेत्र हैं जिनमें स्त्रियाँ निश्चित रूप से पुरुषों से आगे हैं और उत्तरोत्तर आगे होती जाती हैं।

महादेवी ने अत्यन्त गम्भीर और शान्त मन से नारी-समस्या के विभिन्न पहलुओं-पर विचार किया है, तत्सम्बन्धी अपने निष्कर्ष वास्तविक जीवन के अपने परिचय के आधार पर बनाये हैं। यही कारण है कि उन्होंने गाँधीवादी सुधारवाद को बिलकुल ठुकरा दिया है और आमूल क्रान्ति का मार्ग अपनाया है। उनके विचारों पर यदि किसी विचारधारा का प्रभाव पड़ा है, तो वह वैज्ञानिक समाजवाद है। हो सकता है कि उनके निष्कर्ष, उनकी चिन्तना, सर्वथा मौलिक हों। उस दशा में हम यही कहेंगे कि महादेवी जी ने जीवन के यथार्थ को स्वीकार करके इस समस्या पर विचार किया है, इसलिये उनके सामाजिक निष्कर्ष अनिवार्यतः क्रान्तिकारी समाजवाद की ओर झुकते हैं, क्योंकि समाजवाद स्वयं कठोर धरती की, जीवन की, यथार्थ समस्याओं से उपजा हुआ, और विकृत यथार्थ को बदल कर उसके स्थान पर स्वस्थ यथार्थ को स्थापित करने वाला जीवन-दर्शक है। समाजवाद के सिद्धान्तों पर संचालित सोवियत रूस का विधान अपनी १२२ वीं धारा में यदि नारी की स्वाधीनता की घोषणा इन शब्दों में करता है कि—

'सोवियत रूस की स्त्रियों को जीवन के आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक,

राजनीतिक तथा राज्य-सम्बन्धी प्रत्येक क्षेत्र में पुरुषों के बराबर अधिकार होंगे (और) इन अधिकारों का उपयोग करने के लिये स्त्रियों को अधिक से अधिक सुविधाएँ दी जायँगी ।'

—तो उसका यही कारण है कि ज़ारशाही शासनकाल में रूस की स्त्रियों की वही दशा थी जो आज भारतवर्ष की स्त्रियों की है। ज़ारशाही शासन-काल के काले दिनों में स्त्री को केवल सामाजिक उत्पीड़न का ही सामना नहीं करना पड़ता था। परिवारिक जीवन में भी न तो स्त्रियों के कोई अधिकार थे और न अत्याचार से बचाव के साधन। किसान स्त्रियों का पुराने ज़माने के परिवार में क्या स्थान था, इसके ऊपर विचार करते हुए स्तालिन ने कहा था—"शादी होने के पहले परिवार में काम करने वालों में उसका स्थान पहला था। वह अपने पिता के लिये काम करती थी और एड़ी-चोटी का पसीना एक करने के बाद भी पिता के यही शब्द उसे सुनने को मिलते थे, 'मैं तुम्हारा पालन कर रहा हूँ।' शादी होने के बाद वह अपने पति के लिये काम करती थी और उसकी प्रत्येक आज्ञा का सिर झुकाये पालन करती थी। उसके बदले पुरस्कार में उसे पति से यही शब्द सुनने को मिलते थे-'मैं तुम्हारा पालन कर रहा हूँ।'

—समाजवादी रूस की स्त्रियाँ, पृ. २३

नारी-समस्या पर महादेवी के विचार आद्यन्त समाजवाद की ओर उन्मुख हैं और उनकी पुष्ट सामाजिक चेतना का परिचय देते हैं। निम्न उद्धरण में वे अपने क्रान्तिकारी विचार अत्यन्त सुलझे हुए और संतुलित ढंग से रखती हैं :

'आरंभ में प्राय: सभी देशों के समाज ने स्त्री को कुछ स्पृहणीय स्थान नहीं दिया, परन्तु सभ्यता के विकास के साथ-साथ स्त्री की स्थिति में भी परिवर्तन होता गया। वास्तव में स्त्री की स्थिति समाज का विकास नापने का मापदण्ड कहा जा सकता है। नितान्त बर्बर समाज में स्त्री पर पुरुष वैसा ही अधिकार रखता है, जैसा वह अपनी स्थावर सम्पत्ति पर रखने को स्वतंत्र है, इसके विपरीत पूर्ण विकसित समाज में स्त्री पुरुष की सहयोगिनी तथा समाज का आवश्यक अंग मानी जाकर माता तथा पत्नी के महिमामय आसन पर आसीन है।'

—पृ. १२८

महादेवी का नारी-स्वाधीनता का स्वप्न कम से कम एक देश में जीवन की वास्तविकता पा चुका है। संसार के कम से कम छठें भाग पर

एक ऐसा पूर्ण विकसित समाज है जो महत्तम भारतीय आदर्श के अनुरूप नारी को वह मान और आदर देता है, जो मान और आदर आज तक स्वयं भारतीय नारी को नहीं मिल सका। महादेवी ने यदि सोवियत नारी के सम्बन्ध में यथेष्ट बातें पता लगाकर उनके आलोक में भारतीय नारी की समस्या पर विचार किया होता तो उसके वर्त्तमान जीवन की विभीषिका और भविष्य के स्वप्नों के बीच एक लंबी खाई न होकर कर्तव्य का एक सेतु होता और उनके विचारों की एक बड़ी कमी दूर हो जाती अर्थात् आज की परवश भारतीय नारी के लिये तत्काल कर्म का सन्देश—क्योंकि स्वप्न सार्थक तब होता है जब उसे कर्तव्य का आकार मिलता है।

महादेवी की गद्य-शैली

रामचरण महेन्द्र

['हृदय की विशालता, भाव-प्रसार की विलक्षण शक्ति, मर्मस्पर्शी स्वरूपों की सद्भावना, कल्पना-शक्ति पर प्रभुत्व और शब्दों की नक्काशी का समुच्चय महादेवी की गद्य-शैली में ऐसा घुल मिल गया है कि अनायास ही वे जीवन और समाज की विषम प्रहेलिकाओं पर सूक्ष्म-अन्तर्दृष्टि डाल देती हैं। उनके व्यक्ति और समाज के रेखा-चित्र बड़े सजीव एवं रंगीन हैं। कला की तूलिका से उनमें रंग भरे गये हैं, कल्पना के परिधान से उन्हें सज्जित किया गया है।']

कल्पना-चाँदनी की साड़ी पहिन, तारों की स्वप्निल जाली मुँह पर डाले, संध्या का सिंदूर मुख-श्री पर लगाये, जिस कवयित्री की रहस्यवादी कविता मानव-जगत् से बहुत ऊँची उठ कर भावगगन में विहार करती है, उसी गद्यकार महादेवी की "श्रृंखला की कड़ियाँ" तथा "स्मृति की रेखाएँ" का धरातल यथार्थवादी, ठोस और पार्थिव है। संसार की कठोर निर्ममता और हृदयहीनता को उन्होंने देखा है। महादेवी की कविता में जहाँ दया और प्रेम छलकता है, वहाँ गद्य में उन्होंने प्रताड़ित नारी की परवशता, समाज की हृदयहीनता, कठोरता, जड़ रूढ़ियों को उखाड़ फेंकने का प्रयत्न किया है। जहाँ कविता में आपकी प्रकृति आत्मकेन्द्रित है, वहाँ गद्य में मूलतः समाज केन्द्रित है। उसमें जनता का दुर्दनीय अवसाद और आकुल पीड़ा उद्वेलित हो उठी है।

हृदय की विशालता, भाव-प्रसार की विलक्षण शक्ति, मर्मस्पर्शी स्वरूपों की उद्भावना, कल्पना-शक्ति पर प्रभुत्व और शब्दों की नक्काशी का समुच्चय महादेवी की गद्यशैली में ऐसा घुल मिल गया है कि अनायास ही वे जीवन और समाज की विषम प्रहेलिकाओं पर सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि डाल देती

हैं। उनके व्यक्ति और समाज के रेखा-चित्र बड़े सजीव एवं रंगीन हैं। कला की तूलिका से उनमें रंग भरे गये हैं, कल्पना के परिधान से उन्हें सज्जित किया गया है।

महादेवी का गद्य कई प्रकार का है:—विवेचनात्मक, संस्मरणात्मक, यात्रा विषयक तथा नारी-समस्यात्मक। भाव के अनुसार भाषा और शैली का रूप परिवर्तित होता जाता है। जैसा विषय वे ले लेती हैं, वैसी ही भाषा, कल्पना और शब्द-चयन होता है। सीधा-साधा विषय प्रस्तुत करना या कथानक उपस्थित कर देना उन्हें नहीं भाता। कल्पना के सहज स्पर्श से वे उसमें माधुर्य और चमत्कार भर देती हैं। जहाँ उन्होंने जीवन की कठोर वास्तविकताओं को छुआ है, वहाँ वे विक्षुब्ध हो उठी हैं। समाज की रूढ़ियों, दुःख, दैन्य एवं स्वार्थ की कुटिलताओं को देख कर उनकी आत्मा विद्रोह कर उठी है। समाज के शिकंजों में फँसी नारी की अन्तर्वेदना आपने प्रकट की है। विधवाओं, वेश्याओं, घर की चहारदीवारी में बन्द हिन्दू नारी, पुरुष शासित समाज की पुरानी-नई रूढ़ियों, मिथ्या दंभ और अत्याचार पर महादेवी ने मार्मिक ढंग से लिखा है। यह शैली आलोचना-प्रधान होते हुए भी भावात्मक है। तर्क का आश्रय अन्त तक लिया गया है।

सर्वप्रथम प्राकृतिक दृश्यों की वर्णन शैली पर विचार करें। प्रकृति की नाना वस्तुओं, वृक्ष, लताओं, सरिता और दृश्यों के वर्णन में कोमल कान्त पदावली का प्रचुरता से उपयोग हुआ है, उपमा का कोष जैसे लुटा दिया गया हो। इन दृश्यों की सजीवता, वर्णन की सूक्ष्मता तथा भाव-प्रवणता दर्शनीय है:—

"उस सरल कुटिल मार्ग के दोनों ओर, अपने कर्त्तव्य की गुरुता से निस्तब्ध प्रहरी जैसे खड़े हुए, आकाश में भी धरातल के समान मार्ग बना देने वाले सफेदे के वृक्षों की पंक्ति से उत्पन्न दिग्भ्रान्ति जब कुछ कम हुई तब हम एक दूसरे ही लोक में पहुँच चुके थे, जो उस व्यक्ति के समान परिचित और अपरिचित दोनों ही लग रहा था, जिसे कहीं देखना तो स्मरण आ जाता है, परन्तु नाम धाम नहीं याद आता।"

"चारों ओर से नीलाकाश को खींच कर पृथ्वी से मिलाता हुआ क्षितिज रुपहले पर्वतों से घिरा रहने के कारण बादलों से बने घेरे-जैसा जान पड़ता था। वे पर्वत अविरल और निरन्तर होने पर भी इतनी दूर थे कि धूप में जगमगाती असंख्य चाँदी-सी रेखाओं के समूह के अतिरिक्त उनमें और कोई पर्वत का लक्षण दिखाई न देता था। जान पड़ता था जैसे किसी चित्रकार ने अपने आलस्य के क्षणों में पहले रंग की तूलिका डुबाकर नीचे धरातल पर

इधर उधर फेर दी है। पृथ्वी अश्रुमुखी ही दिखाई पड़ती।

महादेवी ने "चाँद" की सम्पादिका के रूप में सम्पादकीय लेख लिखे, जो "शृंखला की कड़ियाँ" के रूप में प्रकाशित हुए हैं। इनका मूल विषय समाज तथा नारी की दयनीय स्थिति का परिचय है। रूढ़ियों से बँधे हुए समाज में भारतीय नारी अपमानित, प्रताड़ित, अधिकारहीन, और अभिशापों से पिसा हुआ प्राणी है। महादेवी जी के इन लेखों में समाज के शिकंजों में फँसी हुई नारी की मूक-व्यथा मुखरित हो उठी है, विद्रोह की आत्मा क्रांति कर रही है। मध्य वर्ग में हिन्दू नारी का एक चित्र देखिये—तर्क और विचार में पुष्ट और आलोचना में स्वस्थ:

"इस समय तो भारतीप पुरुष जैसे अपने मनोरंजन के लिए रंग-बिरंगे पत्ती पाल लेता है, उपयोग के लिए गाय और घोड़ा पाल लेता है, उसी प्रकार वह एक स्त्री को भी पालता है तथा पालित पशु-पत्तियों के समान ही यह उसके शरीर और मन पर अधिकार समझता है। हमारे समाज के पुरुष के विवेकहीन जीवन का सजीव चित्र देखना हो तो, विवाह के समय गुलाब सी खिली हुई स्वस्थ बालिका को पाँच वर्ष बाद देखिये। उस समय, उस असमय प्रौढ़ हुई दुर्बल संतानों की रोगिणी पीली माता में कौनसी विवशता, कौन सी रुला देने वाली करुणा न मिले!"

—शृंखला की कड़ियाँ पृष्ठ १०२

हिन्दू-नारी के विभिन्न स्वरूपों को आपने देखा और परखा है। आप जिन निष्कर्षों पर पहुँची हैं, वे जीवन के निकट अनुभवों से आपको प्राप्त हुए हैं। पुरुष शासित समाज में प्रताड़ित नारी की वकालत इनसे अधिक तीखे रूप में नहीं हो सकती। महादेवी बड़े सहानुभूतिपूर्ण ढंग से वेश्या के मसले हुए जीवन पर विचार करती हैं। इस सम्बन्ध में उनका एक उद्धरण लीजिए। शैली में भाव-प्रवणता, काव्य का हलका सा स्पर्श, किन्तु हृदयस्पर्शी भावना का स्वरूप है। तर्क के साथ कविता का समन्वय देखिये—

"यदि स्त्री की ओर से देखा जाय, तो निश्चय ही देखने वाला काँप उठेगा। उसके हृदय में प्यास है, परन्तु उसे भाग्य ने मृग-मरीचिका में निर्वासित कर दिया है। उसे जीवन भर आदि से अन्त तक सौन्दर्य की हाट लगानी पड़ी, अपने हृदय की समस्त कोमल भावनाओं को कुचल कर आत्म-समर्पण की सारी इच्छाओं का गला घोंट कर रूप का क्रय-विक्रय करना पड़ा और परिणाम में उसके हाथ आया निराश-हताश एकाकी अंत।"

"....जीवन की एक विशेष अवस्था तक संसार उसे चाटुकारी से मुग्ध

करता रहता है, झूठी प्रशंसा की मदिरा से उन्मत्त करता रहता है, उसके सौन्दर्य-दीप पर शलभ सा मँडराता रहता है, परन्तु, उस मादकता के अंत में उस बाढ़ के उतार पर, उसकी ओर कोई सहानुभूति भरे नेत्र नहीं उठाता। उस समय उसका तिरस्कृत स्त्रीत्व लोलुपों के द्वारा प्रशंसित रूप-वैभव का भग्नावशेष, क्या उसके हृदय को किसी प्रकार की सान्त्वना भी दे सकता है ?"

—शृंखला की कड़ियाँ पृष्ठ १११-११२

विधवाओं, वेश्याओं तथा गृह-बधुओं के विषय में महादेवी ने बौद्धिक प्रगतिशील दृष्टिकोण का परिचय दिया है। शैली विवेचनात्मक है। इसमें भाषा संस्कृत प्रधान अलंकार युक्त है। उनकी भाषा संयत, परिष्कृत, प्रौढ़ और विशुद्ध होती है। उनके व्यक्तित्व की समस्त गंभीरता उसमें सर्वत्र व्याप्त रहती है। महादेवी का दुःखवाद भी यत्र-तत्र स्पष्ट हो जाता है—कभी चोट के तीखेपन में, तो कभी उपमाओं की लड़ियों में। उनके संवेदनशील हृदय के दर्शन सभी जगह हो जाते हैं। आत्मा का विद्रोह, पीड़ा का उत्स भी स्पष्ट है। वे जड़ रूढ़ियों और बद्धमूल संस्कारों को तोड़ फोड़ डालना चाहती हैं। उनके समाजिक लेखों में गंभीर विवेचना, गवेषणात्मक चिन्तन एवं अनुभूति की पुष्ट व्यंजना सर्वदा वर्तमान रहती है।

महादेवी जी का विवेचानात्मक गद्य उनकी कविता पुस्तकों की भूमिका और कुछ स्फुट लेखों के रूप में उपलब्ध है। इन निबन्धों की शैली पर वैयक्तिकता की छाप है। महादेवी की प्रतिभा में कविता और चित्रकला का समन्वय पाया जाता है। रेखा-चित्रों को खींचने में आपको अपूर्व सफलता प्राप्त हुई है। चित्रकार जैसे अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति में सूक्ष्मता पर ध्यान रखता है; उसी प्रकार आपके रेखाचित्र सूक्ष्म अनुवीक्षण, चित्रोपमता और अनुभूति में बड़े तीखे बन पड़े हैं। "यामा" और "दीपशिखा" में जैसे काव्य और चित्रकला का संधि-स्थल है, वैसा ही चित्र निर्माण "अतीत के चल चित्रों" में है। इन संस्मरणों में शब्दों द्वारा रंग-रेखा की सृष्टि की गई है। चित्र उठकर कविता की सूक्ष्मता और भावना से भर गये हैं। "नारी की परवशता की समस्या पर आपने केवल कवि की करुणा विगलित दृष्टि डाली हो, सो बात नहीं है। उन्होंने एक गंभीर समाज-शास्त्री के रूप में नाना सामाजिक समस्याओं पर चिन्तन किया है। इसलिए नारी की परवशता का मूल कारण क्या है, यह पता लगाने में उन्हें ज़्यादा देर न लगती।"

महादेवी की "स्मृति की रेखाएँ" यथार्थवाद की भित्ति पर खड़ी होती हैं। कला का उच्चतम विकास इन रेखाओं में आता है। अनुभूति और

कल्पना का भव्य सम्मिश्रण इनमें मिलता है। भाषा सहज बोधगम्य है। कथन के ढंग तो कहीं कहीं बड़े अनूठे हैं। भक्तिन की सेवा-भावना और नाम का वर्णन देखिये:

"सेवक-धर्म में हनूमान जी से स्पर्द्धा करने वाली भक्तिन किसी अंजना की पुत्री न होकर एक अनाम कन्या गोपालिका की कन्या है—नाम है लछमिन अर्थात् लक्ष्मी। पर जैसे मेरे नाम की विशालता मेरे लिए दुर्वह है, वैसे ही लक्ष्मी की समृद्धि भक्तिन की कपाल की कुंचित रेखाओं में बँध न सकी।"

साधारण बात को भी मर्मस्पर्शी ढंग से प्रकट किया जाता है। जैसे—"फटी और अनिश्चित रंगवाली दरी और मटमैली दुसूती का बिछौना लिपटा हुआ धरा था। उसके पास रखी हुई एक मैले फटे कपड़े की गठरी उसका एकाकीपन दूर कर रही थी। लाल चिलम का मुकुट पहिने, नारीयल का काला हुक्का बाँस के खम्बे में टिका हुआ था।"

वर्णित पात्रों से स्वयं प्रभावित होने के कारण महादेवी की सहानुभूति व्यक्तियों के स्वरूप को चित्र की भाँति शब्दों में बाँधने को आकुल दीख पड़ती है। यह आकुलता कहीं कहीं पाठक को उबाने वाली और नीरस प्रतीत होती है। ये वर्णन बहुत सूक्ष्म हैं; सूक्ष्मता की अति से लेखिका की गठन दर्शन-शक्ति तो स्पष्ट होती है पर चित्रण बहुत लम्बे हो गये हैं।

महादेवी में एक गुण विशेष प्रभावित करता है। वह है कथन की वक्रता। हर बात को ऐसा घुमा फिराकर प्रस्तुत किया जाता है कि उसमें आन्तरिक और बाह्य भाव-व्यंजना का एक वैचित्र्यपूर्ण सामञ्जस्य दिखाई देता है:

"ऊदी रंग के डोरे से भरे हुए किनारों का हर घुमाव और कोरों में उसी रंग से बने नन्हें फूलों की प्रत्येक पंखुड़ी चीनी नारी की कोमल उंगलियों की कलात्मकता ही नहीं व्यक्त कर रही थी, जीवन के अभाव की एक करुण कहानी भी कह रही थी।"

"पूर्व के कोने में पड़े हुए पुआल का गट्ठा और उस पर सिमटी हुई मैली चादर की सिकुड़न कह रही थी कि सोने वाले ने ठण्ड से गठरी बनकर रात काटी है।"

महादेवी की दृष्टि बड़ी पैनी है। आपने वस्तुओं, प्राकृतिक-दृश्यों, व्यक्तियों तथा ग्रामीणों की भावनाओं को कुशलता से परखा है। बदरीनाथ की यात्रा में कुलियों को देखकर जो भावना व्यक्त की गई है, उसमें लेखिका

अपने वर्णनों को प्रभावपूर्ण और हृदयग्राही बनाने में पूर्ण सचेष्ट है। रूढ़ि के विरोध में जिस शैली का प्रयोग किया गया है, वह गवेषणात्मक और व्यंग्यात्मक है।

वर्णनों में मनोवैज्ञानिक तथ्यों का भी उपयोग किया गया है। ठाकुरी बाबा के गाने का शौक का चित्रण तो देखिये:-"कहीं बिरहा गाने का अवसर मिल जाता है, तो किसी मचान पर बैठ कर रात रात भर रखवाली करते रहते। कोई बारहमासा सुनने वाला रसिक मिल जाता, तो उसको बैलों का सानी पानी करने में भी हेठी न समझते।"

"...पिता के अगाध पांडित्य पर पुलकित और विस्मित होती हुई बड़े मनयोग से कथा सुनती और कौनसा पात्र बन जाना उसके लिए अच्छा होगा, इसकी विवेचना करती रहती।"

महादेवी जी की शैली में तीन प्रकार हैं (१) विवेचनात्मक, जिसमें मननशील साहित्य की उद्भावना है। (२) नारी समस्या-विषयक समाज केन्द्रिक, गवेषणात्मक। इसमें तर्क और बुद्धिवाद की उद्भावना-शक्ति प्रकट होती है। व्यंग्य और तीखापन है, कथन की वक्रता है (३) संस्मरणात्मकः—इसमें मानव तथा प्रकृति का चित्रण है, काव्य का हलका स्पर्श है, मनोवैज्ञानिक चित्रण और भावावेग है। महादेवी ने भाव-पद्धति के निदर्शन का एक चमत्कारिक रूप प्रतिष्ठित किया है। लेखिका ने अपने विचार ऐसी भाषा में गूँथने का प्रयास किया है. जो सहज बोधगम्य और सरस है। कवि हृदय की भावुकता और संवेदनशीलता भाषा में सजग हैं। हिन्दी गद्य-साहित्य में महादेवी का स्थान काव्य से कम महत्वपूर्ण नहीं है। गद्य-साहित्य को भी उन्होंने स्फूर्ति और प्रेरणा प्रदान की है।

महादेवी और प्रकृति

पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश'

['प्रकृति महादेवी के लिए शृंगार की वस्तु है, प्रियतम की ओर संकेत करने वाली सहचरी है, उसकी आत्मा की छाया है, ब्रह्म की छाया है, उसके जीवन का अपरिहार्य अंश है। अपने असीम की ओर बढ़ती हुई महादेवी प्रकृति के कण-कण से परिचित होती हुई आगे बढ़ी हैं और सबका क्रन्दन पहचान कर आश्वस्त सी होगई हैं। उनकी दृष्टि गहरी भी है और विशाल भी।']

हम जिसे छायावादी युग कहते हैं उसकी सबसे बड़ी विशेषता उसमें प्रकृति का ऐसा समावेश है, जो कई शताब्दियों पश्चात् दिखाई दिया। इसीलिये कुछ आलोचकों ने भावनाओं के लिए प्रकृति से लिए गए प्रतीकों की बहुलता छायावाद में देखी तो वे छायावादको प्रतीकों द्वारा व्यंजना की वस्तु ही मानकर चलने लगे।इससे और कुछ पता चले या न चले। इतना अवश्य है कि छायावाद में प्रकृति ने कवि की अभिव्यक्ति के लिए पग-पग पर सहायता की है। यदि प्रकृति को अलग कर लिया जाय तो छायावाद पंगु हो जाता है।

प्रश्न यह उठता है कि छायावाद में प्रकृति का यह प्राधान्य क्यों है। हमारी सम्मति में इसके दो कारण हैं। एक तो यह कि वैदिक काल से लेकर संस्कृत साहित्य के पूर्वकाल तक जो प्रकृति परम आकर्षणपूर्ण व्यक्तित्व लिए हुए थी वह उत्तरकालीन संस्कृत-साहित्य और उसके परिणामस्वरूप हिन्दी साहित्य में रीतिकाल तक निर्वासित सी रही। काव्य में उसका प्रयोग या तो उपदेशात्मकता के रूप में हुआ या आलंकारिक रूप में। इन दोनों रूपों में वह व्यक्तित्वहीन रही। आधुनिक युग में अंग्रेजी-साहित्य में स्वतंत्र रूप से प्रकृति का प्रयोग होने से अंग्रेजी शिक्षा के माध्यम द्वारा हमारे यहाँ के कवियों पर उसका तो प्रभाव पड़ा ही, साथ ही वैदिक तथा संस्कृत साहित्य

के अध्ययन से भी उस ओर कवियों का ध्यान गया और उसकी प्रतिक्रिया स्वरूप प्रकृति भी रूढ़िमुक्त होगई। दूसरी बात यह है कि छायावादी कवि का कोमल और कल्पनाशील हृदय इस लोक के व्यवहार से संतुष्ट नहीं हो सका। उनकी असाधारण मानसिक-स्थिति के कारण उन्हें अपने हृदय की बात समझने वाला कोई हाड़-मांस का जीव नहीं मिला। प्रसाद, निराला पंत और महादेवी चारों ही छायावाद के महान समर्थक हैं, इसीलिए कल्पना-लोक निर्माण की ओर प्रवृत्त हुए। एकाकी जीवन में सामाजिक प्राणी जी बहलाने के लिए पशु-पक्षी भी पालते देखे गए हैं और इस प्रकार अपने सन्तोष के लिए उपक्रम करते पाए गए हैं। यह साधारण मनुष्यों की बात है। कवि जैसा असाधारण व्यक्ति तो प्रकृति के कण-कण में अपनापन अनुभव करने लगा। पंत ने तो छाया तक से बाँह खोल कर गले लगने और प्राणों के शीतल करने की भीख माँगी है। यह मनोवैज्ञानिक कारण है। छायावादी कवि ने अपने हृदय की व्यथा-कथा कहने के लिए ही प्रकृति को पुनः प्रतिष्ठित किया। कारण, वह जानता था कि उसका सजातीय संभवतः उसके प्रति सहानुभूति नहीं भी दिखावे तब इस उपेक्षित जड़-प्रकृति को ही क्यों न अपने लिए चेतन कर लिया जाय। और यह ठीक भी है। प्रकृति के भीतर भी तो वही सत्ता कार्य करती है, उसमें भी तो वैसी ही चेतना है, वैदिक और संस्कृत कवि ने भी तो उसे सजीव और चेतनायुक्त माना ही है, तब फिर हिन्दी कविता अपने नए युग में क्यों न प्रकृति को अपना कण्ठ हार बनाती। यह स्वाभाविक था। इस प्रकार चाहे परिस्थिति की प्रतिक्रिया समझा जाय या मनोवैज्ञानिक कारण, छायावाद में प्रकृति की महत्व-स्थापना अवश्यम्भावी होगई।

महादेवी वर्मा ने अपने काव्य में प्रकृति को उचित स्थान दिया है। उनकी विराट तक पहुँचने की साधना के मार्ग में प्रकृति सदैव उनके साथ रही है। उन्होंने छायावाद और प्रकृति के सम्बन्ध का स्पष्टीकरण करते हुए लिखा है—

"छायावाद ने मनुष्य के हृदय और प्रकृति के उस सम्बन्ध में प्राण डाल दिए जो प्राचीन काल से बिम्ब-प्रतिबिम्ब के रूप में चला आ रहा था और जिसके कारण मनुष्य को अपने दुःख में प्रकृति उदास और सुख में पुलकित जान पड़ती थी। छायावाद की प्रकृति घट, कूप आदि में भरे जल की एक रूपता के समान अनेक रूपों में प्रकट एक महाप्राण बन गई, अतः अब मनुष्य के अश्रु, मेघ के जलकण और पृथ्वी के ओस-बिन्दुओं का एक ही कारण,

एक ही मूल्य है। प्रकृति के लघु-तृण और महान वृक्ष, कोमल कलियाँ और कठोर शिलायें, अस्थिर जल और स्थिर पर्वत, निविड़ अंधकार और उज्ज्वल विद्युत्-रेखा, मानव की लघुता-विशालता, कोमलता-कठोरता, चंचलता-निश्चलता और मोह-ज्ञान का केवल प्रतिबिम्ब न होकर एक ही विराट से उत्पन्न सहोदर है। जब प्रकृति की अनेकरूपता में, परिवर्तनशील विभिन्नता में, कवि ने ऐसा तारतम्य खोजने का प्रयास किया, जिसका एक छोर किसी असीम चेतन और दूसरा उसके ससीम हृदय में समाया हुआ था, तब प्रकृति का एक-एक अंश एक अलौकिक व्यक्तित्व लेकर जाग उठा।"[1]

इससे स्पष्ट है कि महादेवी जी एक ओर प्रकृति में उस विराट की छाया देखती हैं और दूसरी ओर अपनी छाया भी देखती हैं। महादेवी ही नहीं हिन्दी के छायावाद के सभी प्रमुख कवियों ने ऐसा ही किया है। प्रकृति इस प्रकार कवि के हृदय से भिन्न नहीं रह जाती, वह उसी के जीवन का अंश बनकर सम्मुख आती है। इसे यदि हम चाहें तो प्रकृति से तादात्म्य की संज्ञा दे सकते हैं। महादेवी जी के काव्य में यह प्रवृत्ति विशेषतः मिलती है। एक कविता में वे संध्या से अपनी तुलना करती हुई कहती हैं—

'प्रिय सांध्य गगन, मेरा जीवन !
यह क्षितिज बना धुँधला विराग,
नव अरुण अरुण मेरा सुहाग,
छाया-सी काया वीतराग,
सुधि भीने स्वप्न रँगीले घन
साधों का आज सुनहला पन,
घिरता विषाद का तिमिर गहन
संध्या का नभ से मूक मिलन—
यह अश्रुमती हँसती चितवन।'[1]

अर्थात् संध्या का आकाश ही मेरा जीवन है। धूमिल क्षितिज वैराग्य है, लालिमामय सूर्य मेरा सुहाग है, संध्या की छाया मेरी आकर्षण रहित काया है, रंग-बिरंगे बादल स्मृतिमय स्वप्न हैं, सुनहलापन मेरी साधे हैं, गहन अंधकार उमड़ता हुआ विषाद है और सन्ध्या का आकाश से मूक-मिलन मेरी अश्रुपूर्ण हँसती हुई दृष्टि है। पूरी कविता में अपने जीवन की छाया सन्ध्या के आकाश में प्रतिबिम्बित है।

१—'यामा' 'अपनी बात' पृष्ठ—६
१—यामा पृष्ठ १

इसी प्रकार 'मैं बनी मधुमास आली',[1] 'मैं नीर भरी दुख की बदली',[2] 'विरह का जलजात जीवन'[3] 'रात-सी नीरव व्यथा तम सी अगम मेरी कहानी'[4] आदि कविताओं में उन्होंने प्रकृति से तादात्म्य किया है। कभी-कभी वे तादात्म्य के लिए विरोधी तत्वों को लेकर भी अपना काम चलाते हैं। ऐसी कविताओं में वे अपनी विशालता और अभावहीनता का परिचय देती हैं। उदाहरण के लिए नीचे की पंक्तियाँ देखिए—

'जग करुण करुण, मै मधुर मधुर
दोनों मिलकर देते रजकण
चिर करुण मधुर सुन्दर सुन्दर
जग पतझर का नीरव रसाल,
पहने हिमजल की अश्रुमाल,
मैं पिक बन गाती डाल डाल
सुन फूल-फूल उठते पल-पल
सुख दुख मँजरियों के अंकुर।'

प्रकृति से अधिक सुखी और वैभवशालिनी कवि की आत्मा किस प्रकार प्रकृति को सौंदर्य और श्रृंगार से युक्त बनाती है, यह इस कविता में द्रष्टव्य है।

महादेवी जी ने दूसरे रूप में प्रकृति का उपयोग उसका मानवीकरण करके किया है। यह प्रवृत्ति अंग्रेजी की देन है, ऐसा माना जाता है, पर महादेवी जी ने इसका खण्डन करते हुए वेदों में उषा, मरुत, अग्नि आदि के सम्बन्ध में लिखी गई ऋचाओं में मानवीकरण की प्रवृत्ति देखकर उसे अपनी ही वस्तु माना है। जो कुछ भी हो, मानवीकरण महादेवी जी के प्रकृति वर्णन की दूसरी विशेषता है। यों तो प्रकृति सजीव है और स्थान-स्थान पर उसके ऐसे चित्र मिल सकते हैं, परन्तु कुछ कविताएँ तो ऐसी हैं, जो हिन्दी की निधि कहीं जा सकती हैं। नीचे दो चित्र दिए जाते हैं। एक चित्र तो वसन्त की मधुरिमामयी रात्रि का है और दूसरा वर्षा का है। दोनों में नारी के दो रूपों की भव्य झाँकी है—

१—यामा पृष्ठ १४७
२—वही पृष्ठ २११
३—वही पृष्ठ १३०
४—दीपशिखा पृष्ठ ३६

'धीरे-धीरे उतर क्षितिज से
आ वसन्त रजनी !
तारकमय नव वेणी बन्धन,
शीश फूल शशि का कर नूतन,
रश्मि वलय, सितघन अवगुण्ठन,
मुक्ताहल अभिराम बिछादे
चितवन से अपनी
पुलकती आ बसन्त रजनी।'[1]

× × ×

'रूपसि तेरा घन-केश-पाश !
श्यामल श्यामल, कोमल कोमल,
लहराता सुरभित केश पाश।
सौरभ भीना, झीना गीला,
लिपटा मृदु अंजन-सा दुकूल;
चल अंचल से झर-झर झरते
पथ में जुगनू के स्वर्ण फूल;
दीपक से देता बार-बार
तेरा उज्ज्वल चितवन विलास
रूपसि तेरा घन केशपाश।'[2]

महादेवी के मानवीकरण में प्राकृतिक वस्तुएँ ही नहीं कभी-कभी विराट प्रकृति भी बँध जाती है। महादेवी जी ने एक कविता में उस विराट सत्ता को—परम तत्व को अप्सरा का रूप दिया है। उसमें प्रकाश और अन्धकार को उसका सफेद और काला वस्त्र, सागर-गर्जन को मंजीरों की रुनझुन, झंझा को अलक जाल, मेघों की ध्वनि को किंकिणी का स्वर, रवि-शशि को चंचल कुण्डल, तारों को माँग अमोल मोती, चपला को विभ्रम, इन्द्रधनुष को स्मिति, और हिमकणों को स्वेद बिन्दु का रूप दिया है—

'लय गीत मदिर, गति ताल अमर
अप्सरि तेरा नर्तन सुन्दर

१—यामा पृष्ठ १२२
२—यामा पृष्ठ १३२

आलोक तिमिर सित असित चीर
सागर-गर्जन रुनझुन मँजीर
उड़ता झंझा में अलक जाल
मेघों में मुखरित किंकिण स्वर
अप्सरि तेरा नर्तन सुन्दर
रवि शशि तेरे अवतंस लोल,
सीमन्त जटित तारक अमोल,
चपला विभ्रम, स्मिति इन्द्रधनुष,
हिम कण बन झरते स्वेद निकर
अप्सरि तेरा नर्तन सुन्दर।'[1]

इस मानवीकरण में जैसे विराट प्रकृति के ही अङ्ग रूप प्रकृति के समस्त उपादान बताए गए हैं, उसी प्रकार कहीं-कहीं उन्होंने अपना अंग भी प्रकृति को कहा है:—

'मेरी निश्वासों से बहती रहती झंझावात,
आँसू में दिनरात प्रलय के घन करते उत्पात
कसक में विद्युत अन्तर्धान।'[2]

इससे पता चलता है कि प्रकृति उनके आराध्य का भी प्रतिबिम्ब है और उनका भी। ऐसी स्थिति में वे अपने प्रियतम से कभी भिन्न कैसे रह सकती हैं? इस अभिन्नता के अनुभव के कारण ही वे कभी-कभी प्रकृति के उपकरणों से शृंगार करके अपने को प्रियतम के प्रति समर्पित करने की तैयारी करती दिखाई देती हैं—

'रञ्जित कर दे यह शिथिल चरण,
ले नव अशोक का अरुण राग।
मेरे मण्डन को आज मधुर
ला रजनी गंधा का पराग॥
यूथी की मीलित कलियों से अलि दे मेरी कबरी सँवार।
पाटल के सुरभित रंगों से,
रंग दे हिम-सा उज्ज्वल दुकूल
गुँथ दे रशना में अलि गुंजन
से पूरित झरते वकुल-फूल

१—यामा पृष्ठ १८०
२—यामा पृष्ठ १७६

रजनी से अंजन माँग सजनि दे मेरे अलसित नयन सार ।'[1]

उनके रहस्यवाद की कोमलता का कारण यही प्रकृति है । 'लाए कौन संदेश नए छन' या 'मुसकाता संकेत भरा नभ अलि क्या प्रिय आने वाले हैं ।' तथा ऐसे प्रकृति की सुषमा उन्हें प्रियतम का सन्देश देने वाली जान पड़ती है। परन्तु कभी-कभी प्रकृति उन्हें उपदेश देती हुई भी दिखाई देती है। 'आसुओं के देश में' शीर्षक गीत[2] में झरता हुआ सुमन, निश्चल तृण बेसुध कोकिल और प्यासी चातकी अपनी मुद्रा और मानसिक स्थिति से उस जीवन की व्यथा का संकेत कर जाते हैं, जो दिवस भी अपने अमिट सन्देश में नहीं कह पाया था—

'यह बताया झर सुमन ने,
यह बताया मूक तृण ने,
वह कहा बेसुध पिकी ने
चिर पिपासित चातकी ने
सत्य जो दिव कह न पाया था, अमिट सन्देश में'
आँसुओं के देश में ?'

यहाँ प्रकृति के उपमानों के नष्ट होने से जीवन के नष्ट होने का आभास मिलता है । इसे प्राकृतिक दर्शन कहते हैं । कवि पंत की 'परिवर्तन' नामक प्रसिद्ध कविता में भी यही दर्शन है । लेकिन महादेवी ने ऐसा कम ही किया है । वे प्रकृति को अपनी सजीव संगिनी जीवन की अंग समझती हैं । ऐसे दृष्टिकोण वाले कवि को प्रकृति बराबर नाश का सन्देश नहीं दे सकती । यह ध्रुव सत्य है ।

महादेवी के अधिकांश प्रकृति के चित्र उनके अपने भावों के ही प्रतिबिम्ब हैं । परन्तु कहीं-कहीं स्वतन्त्र दृश्य-चित्रण भी उन्होंने किया है । 'हिमालय' के निम्नांकित चित्रण में किस प्रकार रूप और रंग की सजीवता है, यह देखते ही बनता हैं—

'तू भू के प्राणों का शत दल ।
सित क्षीर-फेन हीरक रज से
जो हुए चाँदनी में निर्मित
पारद की रेखाओं में चिर
चाँदी के रंगों से चित्रित

१ यामा—पृष्ठ १६५
२—दीपशिखा—कविता १७

खुले रहे दलों पर दल झलमल
सीपी से नीलम से द्युतिमय
कुछ पिंग अरुण कुछ सित श्यामल
कुछ सुख चंचल कुछ दुख मंथर
फैले तम से कुछ तूल-विरल,
मँडराते शत शत अलि-बादल।''[1]

आलंकारिक रूप में महादेवी जी ने अन्य कवियों की भाँति ही उपमान ग्रहण किये हैं। उनके उपमान अधिकतर वसंत और पावस दो ऋतुओं से लिए गए है। साधना-पथ पर पढ़ते हुए साधक की आँखों में आँसू और ओठों पर मुसकान दो ही सँबलरूप पदार्थ होते हैं। पावस आँसू से सम्बद्ध है और वसन्त मुस्कान से। रंग भी उज्ज्वल और काला विशेष रूप से आए हैं। इन ऋतुओं से सम्बन्धित पक्षियों में भ्रमर, चातक, मयूर, कोकिल, चकोर आदि विशेष रूप से आए हैं। फूलों में कमल, हरसिंगार और गुलाब का उल्लेख बहुत हुआ है। वैसे नीहार, रश्मि, नीरजा, सांध्यगीत और दीपशिखा इन क्रमशः प्रकाशित ग्रंथों में कोई ऐसा समय नहीं, जिसका वर्णन उनकी कविता में न हो। सागर, पृथ्वी और आकाश तीनों के उपकरणों का प्रयोग करने में वे सिद्धहस्त हैं। वसंत और पावस में इनकी बदलती हुए छटा का दिग्दर्शन उन्होंने बार-बार कराया है। 'दीपशिखा' में पतंग प्राणों के तिल-तिल कर जलने के लिए आतुर दीख पड़ता है। प्रेम के लिए प्राणोत्सर्ग करने वाले के प्रतीक के लिए ही वह बार-बार आया है। दोपहरी का एक भी चित्र महादेवी जी के काव्य में नहीं है। प्रभात, संध्या और रात तीन के ही चित्र या तीन के ही उपकरण अनेक भावों की व्यंजना के लिए आए हैं। इन दृश्यों के अंकन या इनके उपकरणों को भावों की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाने में महादेवी जी ने वैभव-विलास की ही दृष्टि रखी है। जैसा कि श्री विश्वम्भर मानव ने कहा है—"हमारी साधिका ब्रह्म की सुहागिन है। उस महान ऐश्वर्यशाली की प्रेमिका के लिए चाँदी, सोना, मोती, प्रवाल, नीलम, पुखराज सामान्य वस्तुएँ न होंगी तो किसके लिए होंगी।"[1] इन वस्तुओं के सहारे प्रकृति के उपकरणों को उन्होंने और भी सुषुमामय बना दिया है।

प्रकृति महादेवी के लिए शृंगार की वस्तु है, प्रियतम की ओर संकेत करने वाली सहचरी है, उसकी आत्मा की छाया है, ब्रह्म की छाया है, उसके

१. दीपशिखा कविता १४४

जीवन का अपरिहार्य अंश है। अपने असीम की ओर बढ़ती हुई महादेवी प्रकृति के कण-कण से परिचित होती हुई आगे बढ़ी हैं और सबका क्रन्दन पहचान कर आश्वस्त-सी होगई हैं।[1] उनकी दृष्टि गहरी भी है और विशाल भी। इसका कारण स्वयं उन्होंने बता दिया है, जो उनके दृष्टिकोण को समझने के लिए किसी प्रकार भी टिप्पणी की आवश्यकता नहीं समझता:

"जड़ चेतन के बिना विकासशून्य है और चेतन जड़ के बिना आकारशून्य। इन दोनों की क्रिया-प्रतिक्रिया ही जीवन है। चाहे कविता किसी भाषा में हो, चाहे किसी 'वाद' के अन्तर्गत, चाहे उसमें पार्थिव विश्व की अभिव्यक्ति हो, चाहे अपार्थिव की और, चाहे दोनों के अविच्छिन्न सम्बन्ध की, उसके अमूल्य होने का रहस्य यही है कि वह मनुष्य के हृदय से प्रवाहित हुई है।"[2]

आरम्भ में जैसे जीवन के प्रति उनकी दृष्टि विस्मय-भरी थी वैसी ही प्रकृति के प्रति भी थी। वे सीधे-सादे दृश्य-चित्रण में ही संतुष्ट हो जाती थीं अथवा प्रकृति की सुख-दुःखमयी स्थिति से प्रसन्न या विषादमग्न हो जाती थीं। उनकी वृत्ति तटस्थ दर्शक की थी, लेकिन धीरे-धीरे वे उसके भीतर डूबती गई हैं और प्रकृति उनकी अनुभूति का अंग बन गई है। यही कारण है कि 'सांध्य-गीत' तथा 'दीपशिखा' के अधिकांश गीतों में प्रकृति अनुभूति का अङ्ग बन कर ही आई है।

दुःख और निराशा, विरह और विकलता, त्याग और सहिष्णुता उनके जीवन में बौद्ध प्रभाव से आए हैं, जिनके लिए प्रकृति से भी वे प्रेरणा पाती हैं। दुःख के सुखद परिणाम की अभिव्यक्ति निम्न पंक्तियों में कितनी कुशलता से हुई है—

> 'जब मेरे शूलों पर शत-शत,
> मधु के युग होंगे अवलम्बित,
> मेरे क्रन्दन से आतप के
> दिन सावन हरियाले होंगे

---

१. महादेवी की रहस्य-साधना पृष्ठ ७६

अलि मैं कण-कण को जान चली
सबका क्रन्दन पहचान चली
'दीपशिखा' कविता ५१

२. यामा पृष्ठ ११

तब क्षण-क्षण मधु प्याले होंगे ?'[1]

अपने दुःख में भी, अभाव में भी वे कोई ऐसी बात नहीं देखतीं, जिसके लिए वे संतापित हों। वे अपनी हीनता में भी केवल यही वरदान चाहती हैं :

'घन बनूँ वर दो मुझे प्रिय !
जलधि-मानस से नव जन्म पा
सुभग तेरे ही दृग व्योम में,
सजल श्यामल मंथर मूक-सा
तरल अश्रु विनिर्मित गात ले
नित घिरूँ झर-झर मिटूँ प्रिय
घन बनूँ वर दो मुझे प्रिय !'[2]

इस प्रकार प्रकृति ने उनके भावपक्ष का ही नहीं कलापक्ष का भी शृंगार किया। प्रतीकों द्वारा व्यंजना तो और कवियों ने भी की है, पर उसे अपने जीवन-दर्शन—ससीम का असीम से तादात्म्य—के लिए प्रकृति को माध्यम बनाना उनकी अपनी विशेषता है। उनके काव्य में प्रकृति इतनी घुल-मिल गई है कि उसे विश्लेषण के लिए अलग करके देखना भी कठिन है। हिन्दी के वर्तमान कवियों में महादेवी जी ने प्रकृति के द्वारा अपनी भावनाओं को परिपूत अभिव्यक्ति दी है और विराट की प्रेमानुभूति के लिए उनके व्यक्तित्व को विशालता तथा भव्यता दी है। यही उनके लिए प्रकृति की सबसे बड़ी देन है।

---

१. यामा—पृष्ठ २२६
२. यामा—पृष्ठ १४३

महादेवी वर्मा की कविता तथा चित्र-कला

प्रभाकर माचवे

['महादेवी की कविता में सर्वत्र एकस्वरता, एकरसता मिलती है, जो कला की दृष्टि से रस हानिपरक है।

उनमें आत्मपीड़न अत्यधिक है यानी कहीं भी उन्होंने अपने आपको उभारकर नहीं रखा है। और वैसे उन्होने अपने सिवा और किसी के भावों की बात भी कहाँ की है ?

अपनी अमर विचार-संपदा के कारण महादेवी की प्रतिभा ने ललित-कला के इन रूपों को स्थूल चक्षुरेन्द्रिय को आनन्द देने वाली चित्रकला तथा सूक्ष्म भाव-जगत् को छूनेवाली कविता को एकाकार कर दिया है। वर्ण वर्ण में पंक्ति बन गई है, रंग रेखाकार हो उठे हैं। टेकनीक की बारीकियों के अभाव में भी उनके चित्र अपने आप में उद्गार हैं।']

'Non voglio quello che esce da te, ma sol voglio te, O dolce Amore!'

(मैं तुझसे मिलने वाली चीज़ नहीं चाहती, परन्तु मैं तुझे ही चाहती हूँ, ओ मधुरतम प्रिय !)

—संत अगस्तीना

'देहभाव सर्वजाय ॥ तेव्हां विदेही सुख होय ॥१॥
तया निद्रे जे पहुडले ॥ भव जागृति नाहीं आले ॥२॥
ऐसी विश्रांति साधली ॥ आनंद-कला संचरली ॥३॥'
त्या एकीं एक होतां ॥ दासी जमी कैंची आतां ॥४॥'

(देह-भाव सब बिलम जाता है। तभी विदेह दशा में सुख होता है।

उस निद्रा में जो एकबार सो गये। वे इस भावजागृति में नहीं आये। उन्हें ऐसी विश्रांति मिली कि आनन्दकला संचरित हो गयी। उस एक के साथ एक हो जाने पर अब जनाबाई दासी कहाँ रह गयी ?)

नामदेव की दासी जनाबाई के आर्त्त अभंगों का मराठी में वही स्थान है जो हिन्दी में और गुजराती में मीरा के पदों का। वैसे तो विश्व-साहित्य में ही संख्या और गुण के परिमाण में लेखिकाएँ और कवयित्रियाँ कम ही हुई हैं; परन्तु जो भी हुईं उन्होंने सदा मुक्तक गीति-काव्य को ही अपनाया। गार्गी वाचकनवी हो या स्ट्रावो, मुक्ताबाई हो या हला, घोषा हो या शीला-भट्टारिका, दयाबाई हो या ताज, सुभद्राकुमारी चौहान हो या सरोजिनी नायडू, क्रिस्चिना रोजेटी हो या एला वीलर विलकाक्स, एलिजाबेथ ब्राउनिंग हो या तोरूदत्त किसी कवयित्री ने कोई महाकाव्य लिखा हो ऐसा उल्लेख साहित्य के इतिहास में नहीं मिलता। यानी नारी की काव्य-प्रतिभा ही गीति-काव्य-परक है यह स्पष्ट है।

महादेवी के गीति-काव्य के कला-पक्ष की समीक्षा से पहिले महादेवी सम्बन्धी दो-तीन भ्रांतियों का निराकरण अत्यन्त आवश्यक है :

एक, महादेवी इस युग की मीरा हैं।

दो, महादेवी रहस्यवादिनी हैं।

तीन, महादेवी बौद्ध-दर्शनानुयायिनी अर्थात् 'दुःखवाद या शून्यवाद' की समर्थिका हैं।

समीक्षण-गण कुछ भी कहते रहे हों, अभी मुझे 'साहित्य-संदेश' में एक अनेक उपाधि विभूषिता भद्र महिला का लेख पढ़ने को मिला, जिसका शीर्षक भी उतना ही विचित्र था 'श्री महादेवी जी की आरती और मन-मन्दिर को भावना' (देखिये, संख्या १२, अंक ८)। उस लेख का आरम्भ और अंत इस प्रकार से है:—

"श्री महादेवी जी आधुनिक युग की मीरा हैं, इसमें कुछ अत्युक्ति नहीं है। उनका छायावादी दृष्टिकोण रहस्यात्मक है। वे ब्रह्मपूजन को मानती हैं, लेकिन उनकी भावना और पूजन एक अनूठे ढंग का है। प्रस्तुत काव्य उनकी पूजन की भावना व्यक्त करता है।......

इस प्रकार आरती और मन-मन्दिर की भावना को लेकर श्री महादेवी जी ने जीव और ब्रह्म की ऐक्यता को स्थापित करने का कौशल बतलाया है। साधनावस्था में साधक के हृदय में, जगत की रागात्मक वृत्तियों का प्रलोभन, और ब्रह्मप्राप्ति की निर्मोह वृत्ति के बीच में एक बड़ा संघर्ष उत्पन्न होता है,

जिसका सुन्दर वर्णन गूढ़ भावों में किया गया है।"

साहित्य-समीक्षा के लिए परीक्षार्थियों में प्रमाण माने जाने वाली एक प्रतिष्ठित पत्रिका के बीसवीं सदी के मध्यभाग में छपे इस लेख में महादेवी जी की आरती उतारने की लेखिका-बहन की भावना का पूरा मूल्य जानते हुए भी मुझे कहने दीजिये कि इस भ्रांति का पोषण हिन्दी के अच्छे-अच्छे मान्य समीक्षकों ने भी किया है।

एक और लेख देखिये। प्रो० रघुवीरप्रसाद सिंह ने तो स्वयम् महादेवी जी के शब्द उद्धृत कर उन्हें सगुणोपासक (कृष्ण की उपासिका) भक्तिन बना डाला है—अपने 'मीरा और महादेवी' लेख में। उस लेख का आवश्यक अंश उद्धृत करता हूँ।

"मीरा और महादेवी हिन्दी-साहित्य के दो विभिन्न युगों की दो महान् कवयित्रियाँ हैं। जहाँ तक काव्यगत मूल-प्रेरणा का प्रश्न है दोनों एक दूसरे से अभिन्न हैं। मीरा और महादेवी दोनों की जीवनी पर सम्यक् दृष्टिपात करने से यह मालूम हो जाता है कि दोनों पर बचपन में भगवान् के भावमय भजन का पूरा प्रभाव पड़ा है। महादेवी का कथन है, "एक व्यापक विकृति के समय निर्जीव संस्कारों के बोझ से जड़ीभूत वर्ग में मुझे जन्म मिला है। परन्तु एक ओर साधनापूत, आस्तिक और भावुक माता और दूसरी ओर सब प्रकार की साम्प्रदायिकता से दूर कर्मनिष्ठ तथा दार्शनिक पिता ने अपने अपने संस्कार देकर मेरे जीवन का जैसा विकास दिया उसमें भावुकता बुद्धि के कठोर धरातल पर, साधना एक व्यापक दार्शनिकता पर और आस्तिकता एक सक्रिय, पर किसी वर्ग या सम्प्रदाय में न बँधने वाली चेतना पर ही स्थित हो सकती थी। जीवन की ऐसी ही पार्श्वभूमि पर माँ से पूजा, आरती के समय सुने हुए मीरा, तुलसी आदि के तथा उनके स्वरचित पदों के संगीत पर मुग्ध होकर मैंने ब्रजभाषा में पद-रचना आरंभ की थी।" मीरा के विषय में तो यह जनश्रुत प्रसिद्ध ही है कि वह बचपन में ठाकुर जी पर अपना तन-मन वार चुकी थीं।

महादेवी रूप की आराधिका नहीं अरूप की साधिका हैं। इसका कारण देशकालगत प्रभाव ही हो सकता है। स्वामी विवेकानन्द और राम कृष्ण परमहंस के कारण देश की चिन्ताधारा पर अद्वैतवाद का प्रभाव पड़ा और इससे छायावाद युग भी अनुप्राणित हुआ। महादेवी की कविताओं में भी उसी दार्शनिक चिन्तन का ब्रह्म उनके भावों का आलंबन बना जिससे उन्होंने

युग-युग का सम्बन्ध स्थापित कर अपना करुण-मधुर भाव काव्य के माध्यम से अर्पित किया।"

धन्य हो विवेकानन्द-रामकृष्ण ! तुमने बचा लिया। नहीं तो उक्त लेखक के मतानुसार महादेवी जी भी वृन्दावन के किसी मंदिर में तंबूरा लिये भजन गाती मिलतीं। आगे यही लेखक लिखते हैं कि 'महादेवी अपना प्रेम दार्शनिक शब्दावली में व्यक्त करती हैं। लेकिन उनकी प्रारम्भिक रचनाओं में उनका प्रेम-भाव बड़े ही सुस्पष्ट रूप से व्यंजित हुआ है। महादेवी को भी प्रणय-संकेत स्वप्न में ही मिलता है।···मीरा की रति-भावना में कोई दुःख नहीं है। उनकी भगवद्भक्ति स्पष्ट ही कान्तासक्ति है।···मीरा की प्रेम भावना उबलते हुए दूध की तरह बाहर छलक-छलक पड़ती है। मीरा की इस आकुल तन्मयता पर महाप्रभु चैतन्य की कीर्तन-प्रणाली का भी प्रभाव पड़ा है। चंद्रबली पांडेय का कथन है "मीरा की पूजा-पद्धति कुछ वल्लभ-कुल से भले हो प्रभावित हुई हो, किन्तु उनकी कीर्तन-प्रणाली तो सर्वथा गौरांग महाप्रभु के ही अनुकूल थी।" और आगे चलकर इस लेखक ने मीरा और महादेवी के कुछ अच्छे तुलनात्मक अंश भी दिये हैं यथा—

"महादेवी का दुःखवाद उन्हें वैयक्तिक सुख-दुःखसे आगे बढ़ाकर लोककी ओर उन्मुख करता है। लेकिन भोली-भाली मीरा अपनी प्रणय-भावना को महादेवी की तरह बौद्धिक संयम से नहीं बाँध सकती थी।"

कुछ उदाहरण लीजिए:—

'बरसै बदरिया सावन की,
सावन की मनभावन की।
सावन में उमग्यौ मेरो मनवा,
भनक सुनी हरि आवन की॥'

—मीरा

'मुस्काता संकेत भरा नभ
अलि क्या प्रिय आने वाले हैं ?
नयन श्रवणमय श्रवण नयनमय
आज हो रही कैसी उलझन।
रोम रोम में होता री सखि
एक नया उर का सा स्पन्दन।
पुलकों से बन फूल बन गये
जितने प्राणों के छाले हैं।'—महादेवी

'सुनी हो मैं हरि आवन की आवाज ।
म्हेंल चढ़ि-चढ़ि जोऊँ मेरी सजनी
कब आवैं महाराज।
दादुर मोर पपइया बोले
कोइल मधुरे साज ।
उमग्यौ इन्द्र चहूँ दिसि बरसै
दामिण छोड़ी लाज ।
धरती रूप नवा नवा धरिया
इन्द्र मिलण के काज ।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर
बेगि मिलो महाराज ।'

—मीरा

'लाये कौन सन्देश नये घन
अम्बर गर्वित
हो आया नत
चिर निस्पन्द हृदय में उसके
उमड़े री पुलकों के सावन !
जीवन जलकण से निर्मित सा
चाह इन्द्र धनु से चित्रित सा
सजल मेघ सा धूमिल है जग
चिर नूतन सकरुण पुलकित सा
तुम विद्युत् बन आओ पाहुन
मेरी पलकों पर पग धर धर ।'

—महादेवी

'सखी मेरी नींद नसानी हो ।
पिय को पन्थ निहारत सिगरी रैण बिहानी हो।'

—मीरा

'पथ देख बितादी रैन मैं प्रिय पहचानी नहीं ।'

—महादेवी

'पपइया रे पिय की वाणी न बोल ।'

—मीरा

'मुखर-पिक हौले हौले बोल।'

—महादेवी

'पतियाँ मैं कैसे लिखूँ लिखियो न जाय।
कलम धरत मेरो कर काँपत है नैनन है झर लाय॥'

—मीरा

'कैसे सन्देश प्रिय पहुँचाती।
दृग जल की सित मसि है अक्षय
मसि प्याली झरते तारक द्वय
पल पल के उड़ते पृष्ठों पर
सुधि से लिख साँसों के अक्षर
मैं अपने ही बेसुधपन में
लिखती हूँ कुछ कुछ लिख जाती।'

—महादेवी

असल में ऐसी तुलनाओं के मूल में सबसे बड़ी भूल यह है कि जो दो कवयित्रियाँ या साहित्यकार बहुत अलग-अलग देशकाल-परिस्थितियों के परिपार्श्व में पनपे हैं, उनमें समता-विषमता खोजना ही व्यर्थ है; क्योंकि बहुत सी बातें तो उनके युग के प्रभावरूप में रहती हैं। मीरा आज पुनः जीवित होतीं तो वे महादेवी ही बनती या और कुछ यह कहना उतना ही कठिन है जितना महादेवी जी के काव्य में उपनिषद् और वेदांत के ब्रह्म-तत्त्व को खोजने का निरर्थक यत्न करना।

इसी चर्चा से स्पष्ट हो गया कि महादेवी की रचनाओं के विषय में जो दूसरी और तीसरी बड़ी मान्यताएँ हैं कि वे रहस्यवादिनी हैं (अतः निर्गुण संतों की या बौद्ध-विज्ञानवादियों की निकटवर्तिनी हैं) और बौद्ध-दर्शन के प्रभाव से दुःखवाद की विवृति करने वाली कवयित्री हैं—यह दोनों भी उतनी ही अयथार्थ हैं जितनी कुछ आलोचकों द्वारा महादेवी में फ्रायड के मानदंड से कुंठित वर्जनाओं और इच्छा-पूर्ति का सरंजाम खोज निकालना।

काव्य में रहस्यवाद की स्थिति को समझने के लिए आवश्यक है कि कुछ मूलभूत तत्त्वों से परिचित हो जायँ। केवल कुछ बाह्य-भाव-साम्य तो सभी रहस्योन्मुखी कवियों में मिल जाता है, पर क्या वह पर्याप्त है?

जैसे, महादेवी ने कहा है—

'मेरे प्रिय को भाता है
तम के पर्दे में आना

ओ नभ की दीपावलियों
तुम चुपके से बुझ जाना ।'

इस भाव में और 'शबे-विसाल में क्या काम है जलने वालों का' कह कर सितारों को गुल करने वाले उर्दू कवि में या अंग्रेजी के 'मेटाफिज़िकल पोएट' (अध्यात्मिक कवि) वॉगैन का—

'O for that Night ! where I in him
Might live invisible and dim.'

समान हैं तो इससे क्या ? या रवीन्द्रनाथ ने गीतांजली के आरम्भिक गीत में कहा है कि 'मैं तुम्हारे हाथों में की वह वंशी हूँ जिसे भर-भर कर तुम बार-बार रिक्त कर देते थे ।' या महादेवी ने भी अपने एक गीत में 'दीपशिखा' में यह वंशरी का रूपक सार्थक बनाया है, तो क्या हम यह कहें कि दोनों ने मूलतः जलालुद्दीन रूमी नामक ईरानी सूफ़ी से यह कल्पना ली है ।

जिसने लिखा था—

'I rest a flute laid on thy lips,
A lute, I on thy breast recline
Breathe deep in me that I may sigh;
Yet strike my strings, and tears shall shine.'

और इस प्रकार का बहुत सा समान प्रतीक-संयोजन या संकेत-विधान प्राय: सभी रहस्यवादियों में मिल जाता है । परन्तु क्या केवल उस प्रकार की शब्दावली से कोई भी कवि रहस्यवादी हो जा सकता है ?

'सांध्यगीत' में महादेवी जी ने लिखा है : 'शलभ ! मैं शापमय वर हूँ !' और दीपशिखा में 'अग्नि पंथी मैं तुझे दूँ कौनसा वरदान !' तो इस प्रकार के शमा-परवाने या दीप-पतंग के उल्लेख अन्य कवयित्रियों में भी मिलते हैं :

१७६९ ई० की उर्दू-कवयित्री 'शोख़' ने भी लिखा था—

'शमा की तरह कौन ऐ जाने !
जिसके दिल की लगी हो, सो जाने !'

या

'अब्र छाया है, मेंह बरसता है,
जल्द आजा कि जी तरसता है !'

(उर्दू कवयित्रियाँ, दोआब : शमशेर बहादुरसिंह पृ० १५६)

और मराठी की नामदेव की समकालीना जनी ने भी कहा—

'नाद पड़े कानीं ॥ मग पैज घाली प्राणी ॥

आवडी अंतरीं ॥ गज मेला पड़े गारीं ॥
चोख पाहे अंग ॥ दीपें नाडला पतंग ॥
गोडी रसग का ॥ मच्छ अड़करन गष्ठा ॥
गंधें अली नेला ॥ मृगे जनी नोचि मेला ॥'

(यानी—नाद कानों पर आया, मृग ने अपने प्राणों की बाजी लगा दी। प्रेम से गज कर्दम में धँसता गया, अपनी रुचि से भर गया। सुन्दर अंग देखा और दीपक में पतंग जाकर अटक गया। मीठा काँटे के किनारे देखकर मछली बंसी में फँस गयी। गंध अलि को ले गया। जनी कहती है वहीं भाग)

परन्तु कुछ कवियों के संकेत-विधान में रहस्यवादियों की प्रिय शब्दावली आ जाने मात्र से क्या वे रहस्यवादी हो जाते हैं ?

रहस्यवाद की भारतीय-स्थिति को समझाने का न तो यह स्थल है,न अवसर। परन्तु मैं एलबर्ट श्वाइट्ज़रके 'इंडियन थॉट एन्ड इट्स डेवलपमेंट' में पृष्ठ २६३मे आगे भारतीय रहस्यवाद की विकासावस्थाओं का स्पष्टीकरण कर देना चाहता हूँ। आरंभिक कुतूहलमय रहस्यवाद प्रकृति की विराट्-शक्तियों के प्रति भय-विस्मयपूर्ण (वैदिक-औपनिषदिक); मध्ययुगीन नैतिक रहस्यवाद और उसकी तांत्रिक अराजकता तथा उच्छृङ्खल सर्व-नियम-नकार में परिणति; राममोहनराय के 'प्रकृति में परमात्म-तत्त्व' देखने के नये दर्शन के पश्चात् रवीन्द्रादि का सर्वास्तिवादी रहस्यवाद—इस विकास-रेखा में बहुत से रहस्य खिले हैं। दर्शन की मोटी-मोटी बातें जिन्हें ज्ञात हों, वे जानते हैं कि परमतत्त्व, ईश्वर, जीवात्मा और जड़-जगत् के विषय में भारतीय दार्शनिक चिंताधाराओं का विभिन्न दृष्टिकोण रहा है।

इस मत-मतांतर के झमेले में रहस्यवाद का इतना आसानी से निरूपण करना कि महादेवी जी ब्रह्म की उपासिका हैं, मुझसे यह कहने की हिम्मत नहीं होती। उन्हीं के शब्दों में कला के विषय में उनके विचार जानने से यही प्रतीत होता है कि वे छायावादी (यानी रोमैंटिक) कवयित्री हैं। परंतु अन्य छायावादियों की भाँति निरे सौंदर्य-शोध (यथा पंत) या आनंद-बोध (यथा प्रसाद) में वह खो नहीं गयीं परंतु आदर्शवाद की सूक्ष्म-छटा उन्हें प्रतीक-विधान में अटकाये रखती है।

महादेवी के ससीम-असीम की ही बात करें तो:—

	परमात्मा	जीवात्मा
१. चार्वाक	नहीं है	देह ही आत्मा है
२. बौद्ध	सर्वज्ञ बुद्ध से भिन्न कोई ईश्वर नहीं।	शून्यमय, विज्ञानमय
३. जैन	नहीं। तीर्थंकर सर्वज्ञ हैं।	देहसे भिन्न, देहके अकारण
४. सांख्य	जीव ही मुक्त पुरुष है।	अंतर्वाह्य निर्गुण
५. मीमांसक (प्रभाकर)	कर्म से अलग ईश्वर नहीं है।	कूटस्थ, जड़
,, (भाट्ट)		अंशतः जड़
६. न्याय-वैशेषिक	निमित्तकारण, उपादान-कारण नहीं। कर्मफल-दाता	कूटस्थ नहीं, जड़ है।
७. वैयाकरण	'पराख्य' शब्द	अंतर्वाह्य निर्गुण
८. पातंजल-योग	ईश्वर जीव से भिन्न निर्गुण	,,
९. अद्वैतवाद	सच्चिदानंदरूप ब्रह्म	ब्रह्म का ही अंश
१०. द्वैतवादी	सृष्टिकर्ता, सृष्टि से भिन्न	अणु परिमाण

उनके सर्वोत्तम ग्रंथ दीपशिखा' के 'चिंतन के क्षण से' नामक भूमिका में उन्होंने स्पष्टतः कहा है—'वहिर्जगत से अंतर्जगत तक फैले और ज्ञान तथा भाव-क्षेत्र में समान रूप से व्याप्त सत्य की सहज अभिव्यक्ति के लिए माध्यम खोजते-खोजते ही मनुष्य ने काव्य और कलाओं का आविष्कार कर लिया होगा। कला सत्य को ज्ञान के सिकता-विस्तार में नहीं खोजती, अनुभूति की सरिता के तट से एक विशेष बिंदु पर ग्रहण करती है।' (पृष्ठ २)

और 'जहाँ तक काव्य तथा अन्य ललित-कलाओं का सम्बन्ध है, वे उपयोग की उस उन्नत-भूमि पर स्थायी हो पाती हैं जहाँ उपयोग सामान्य रह सके।'''वास्तव में कलाकार तो जीवन का ऐसा संगी है जो अपनी आत्म-कहानी में, हृदय-हृदय की कथा कहता है और स्वयं चल कर पग-पग के लिए पथ प्रशस्त करता है। काँटा चुभाकर काँटे का ज्ञान तो संसार दे ही देगा, परन्तु कलाकार बिना काँटा चुभने की पीड़ा दिये हुए ही उसकी कसक की तीव्र मधुर अनुभूति दूसरे तक पहुँचाने में समर्थ है।' (पृष्ठ छः) और 'कवि का दर्शन, जीवन के प्रति उसकी आस्था का दूसरा नाम है। दर्शन में, चेतना के प्रति नास्तिक की स्थिति भी संभव है, परन्तु काव्य में अनुभूति के प्रति अविश्वासी कवि की स्थिति असंभव ही रहेगी।' (पृष्ठ ६)

पृष्ठ आठ पर वे लिखती हैं—'चरम सीमा पर जैसे यथार्थ विच्छिप्त गतिशील है वैसे ही आदर्श निष्क्रियता में स्थिर हो जाता है। एक विविध उपकरणों का बवंडर है और पूर्ण निमित पर अचल मूर्ति। साधारणतः जीवन में एक ही व्यक्ति यथार्थदर्शी भी है और आदर्शस्रष्टा भी, चाहे उसका यथार्थ कितना ही अपूर्ण हो और आदर्श कितना ही संकीर्ण।'

'नास्तिकता उसी दशा में सृजनात्मक विकास दे सकती है जब ईश्वरता से अधिक सजीव और सामंजस्यपूर्ण आदर्श जीवन के साथ चलता रहे। जहाँ केवल अविश्वास ही उसका संबल है वहाँ वह जीवन के प्रति भी आस्था उत्पन्न किये बिना नहीं रहती। और जीवन के प्रति अविश्वासी व्यक्ति का सृजन के प्रति भी आस्थावान हो जाना अनिवार्य है। ऐसी स्थिति का अन्तिम और अवश्यम्भावी परिणाम, जीवन के प्रति व्यर्थता की भावना और निराशा ही होती है। इसी से सच्चा कवि या कलाकार किसी न किसी आदर्श के प्रति आस्थावान रहेगा ही।' (पृष्ठ १३)

इसीलिए सच्चे रहस्यवाद और निराशावाद का कोई जोड़ नहीं है। नीत्शे ने अपने 'गे साइलेंस' (आनन्द-मौन) में गरजकर कहा था—"Where is God? he cried; well, I will tell You. We have murdered him—you and I...But how did we do this deed?...whither are we moving?...Are we not falling incessantly?...Are we not staggering through infinite nothingness?... Is night not approaching, more and more night....?"

इसी भावना से, खंडित जनमत के भाव से महादेवी ने कहा—

'आज जीवन के निकट परिचय के साथ कवि में उस अखंडता का भावन भी अपेक्षित है जो मनुष्य-मनुष्य को एक ही धरातल पर समानता दे सके।' (पृ० सत्रह)

'छायावाद को तो शैशव में कोई सहृदय आलोचक ही नहीं मिल सका।.... छायावाद एक प्रकार से अज्ञात-कुलशील बालक रहा, जिसे सामाजिकता का अधिकार ही नहीं मिल सका।...

कवियों में एक दो अपवाद छोड़कर शेष ऐसी अनिश्चित स्थिति में रहे और रहते आ रहे हैं जिसमें न लिखने का अनिवार्य परिणाम, उपवास चिकित्सा है।...नया कवि अपने अनेक वाणी में बोलनेवाले नये आलोचक

से उतना आतंकित है जितना दरबारी कवि राजा के षड्यंत्रकारी मंत्री से हो सकता था। (पृ० उन्नीस)

छायावाद की, मेरे मत से, सबसे बड़ी कमज़ोरी यह थी कि वह उत्तरोत्तर आत्माभिव्यंजन की अपेक्षा आत्म-गोपन में, आत्म-संकोचन में विश्वास करने लगा। स्वभावतः वह आत्म-हनन में जाकर रुका। इसकी विस्तृत समीक्षा मैंने सन् १६३८ में 'अरमानों की चिता' नामक कविता-पुस्तक की लंबी भूमिका में की थी। डायलैन टॉमस नामक वेल्श कवि का कथन है कि—

"Poetry is the rhythmic inevitably narrative movement from our clothed blindness towards a naked vision."

संक्षेप में महादेवी की कविता की समीक्षा के भूमिका रूप में इतनी बातें कहने के बाद मैं उनकी कविता और चित्रकला की कुछ प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख करना चाहता हूँ।

१—उनमें आत्मार्पण तथा आत्म-पीड़न अत्यधिक है। यानी कहीं भी उन्होंने अपने आपको उभार कर नहीं रखा है। और वैसे उन्होंने अपने सिवा और किसी के भावों की बात भी कहाँ की है?

२—उन्होंने अपनी उपमाओं, उत्प्रेक्षाओं, रूपकों और भ्रांतिमान, अन्योक्ति तथा सांग-रूपकों की भी एक परिधि बाँध ली है। उसी में उनकी कल्पनाएँ उड़ान भरती हैं, या चक्कर काटती हैं।

३—उनकी भाषा, चाहे गद्य हो या पद्य, साफ-सुथरी, सुघर, शिल्पित (Chiselled) है। कहीं खोजकर ही कोई शब्द-दोष मिले।

४—छंदों में विविधता का अभाव है, एकरसता जैसे उनकी रचनाओं में सर्वत्र संव्याप्त है।

५—उन्होंने गीत थोड़े ही लिखे हैं। परन्तु उनमें रचना का मँजाव-निखार बहुत ही संयत है। भावनाओं पर आत्म-संयम का आदर्श नियंत्रण है।

६—कहीं भी उनकी कल्पना में यांत्रिकता अथवा हठाकृष्ठता नहीं। अतः दूरान्वय या शब्द-अर्थ-दुरूहता की भी बाधा नहीं। ऋजु, प्रसाद-गुणमयी शैली है।

७—उनकी कविता गेय है।

कुमारी जनस्वामी ने अपने प्रबन्ध 'महादेवी वर्मा का काव्य' में लिखा है: "भाषा में संगीतात्मकता अपनी विशेषता रखती है। इसके लिए वर्ण-मैत्री,

शब्दमैत्री, पदमैत्री, कोमला तथा उपनागरिका वृत्ति इन गुणों की आवश्यकता होती है। महादेवी जी के शब्द प्रयोग में 'ट'वर्ग के वर्णों तथा कठोर वर्णों का बहुधा अभाव मिलता है। 'प' वर्ग तथा 'त' वर्ग के वर्ण म, र, ल, ण, न, तथा अनुस्वारयुक्त वर्णों का प्रयोग बहुलता से मिलता है। उनकी रचना में प्रचुर मात्रा में प्रयुक्त होने वाले कुछ शब्दों को देखिये—

मधु, मदिरा, मदिर, मादक, मादकता, विधु, मुसकान, सुरभि, सुरभित, समीर, स्पन्दन, पथिक, वेदना, पाहुन, तारक, लघु, सुधि, सुधि-सम्बल, पंथ, लहर, लास, लोल, झीना, करुणा की कोर, तुहिन कण, अश्रुकण, करुणेश, तरिणी, नाविक, सुधि-वसंत, सुमनतीर, नवल, नेह-राग, स्मित-पराग, मधुकन, अनजानी, बोझिल तडित्, इसमें म, र, ल, ण, न, अनुस्वार-युक्त स्वर जैसे संदेश, संकेत, आदि शब्दों के प्रयोग उपनागरिक वृत्ति हमें मिलती है। 'त' वर्ग, 'प' वर्ग, 'च' वर्ग के वर्णों में स्वाभाविक कोमलता होती है। जैसे—तारक, नवल, पंथ, पथिक, बोझिल, चरण, चंचल आदि।"

यह दुहराना उनके 'नीरजा' के उपरान्त के गीतों में अधिक हुआ है। परन्तु आरम्भिक गीतों में विशेषतः 'रश्मि' के 'अतृप्ति', 'आत्म-परिचय' आदि गीतों में विलक्षण मौलिकता और सहज नवीनता के दर्शन होते हैं। बाद में धीरे-धीरे जैसे उनकी कविता एक काट में बँधने लगती है। और 'सांध्यगीत' तथा 'दीपशिखा' में आकर तो इतना स्वयम् को पुनः पुन: विभिन्न रूपों से उद्धृत करने की वृत्ति बढ़ती है कि उनका कविता के रूप के प्रति आग्रह एक स्वयं-निर्मित बन्धन बन जाता है।

ऐसे समय हमारे समीक्षक गण यह नहीं विचार करते कि उनकी कविता की रसात्मकता कम होती जा रही है या बढ़ती जा रही है? 'पौनः पुन्य' के कारण क्या वस्तुत: रसनिष्पत्ति में बाधा पड़ती है यह एक विचारणीय प्रश्न है। ऐसी दशा में कल्पना के आवर्त्तन में आनन्द-लाभ और रस का भावन उनकी रचना में कैसे होता है?

'शम' को भावाभाव मानकर चलें तो बचे उनचास भावों को ही लें, जिनके बारे में भरत ने नाटय-शास्त्र में पृष्ठ ७२ पर 'रसानां भावनां च नाट्याश्रितानां चार्थानाम् आचारोत्पन्नानि आप्तोपदेशसिद्धानि नामानि भवन्ति' कहा है। रति, उत्साह, जुगुप्सा, क्रोध, हास, विस्मय, शोक, भय और (शम) यह नव रसांतर्गत स्थायी भाव हैं। सात्विक भाव हैं आठ। इनमें से रोमांच, स्वर-भेद और कंप तो सभी भावों के साथ चलते हैं; स्तम्भ

भय और विस्मय के साथ रहता है; स्वेद, वैवर्ण्य, अश्रु और प्रलय भय-शोक के साथ रह सकते हैं।

तैंतीस व्यभिचारी भावों में से मरण, व्याधि, ग्लानि, श्रम, आलस्य, निद्रा, स्वप्न, अपस्मार, उन्माद, मद, मोह, जड़ता, चपलता यह चौदह भाव तो शारीरिक अवस्थाओं के समान हैं।

स्मृति, मति, वितर्क हैं ज्ञानात्मक मनोऽवस्थाओं से समानान्तर।

और हर्ष, अमर्ष, धृति, उग्रता, आवेग, विषाद, निर्वेद, औत्सुक्य, चिंता, शंका, असूया, त्रास, गर्व, दैन्य, अवहित्थ और व्रीडा भावनात्मक मनोऽवस्थाओं से समतुल्य हैं।

महादेवी की कविता में रति, विस्मय, शोक और शम इन स्थायी भावों की और रोमांच, कंप, वैवर्ण्य, अश्रु और प्रलय इन सात्विक भावों की प्रधानता है। व्यभिचारियों में से मरण, ग्लानि, निद्रा, स्वप्न, उन्माद, भय, मोह, चपलता, स्मृति, वितर्क, आवेग, विषाद, निर्वेद, औत्सुक्य, चिन्ता, शंका, त्रास, गर्व और व्रीड़ा—इस प्रकार से पचास में से सत्ताईस भावों का ही विशेष प्रयोग किया गया है।

स्पष्ट है कि इस कारण उनके चित्रों में और गीतों में एकांगीपन आ गया है। एकांगिता उनकी रचनाओं में कहीं भी विरोधी रंग (कांट्रास्ट) नहीं उपस्थित करती। जैसे विरह के अनंत चित्र हैं, मिलन के चित्र अत्यन्त विरल हैं। दुःख, करुणा, वेदना, व्यथा का प्राधान्य है; सुख, हर्ष, आह्लाद, आनन्द का उस मात्रा में बहुत ही अभाव है। जैसे उनके काव्य-व्योम में उदासी की धुँधली बदली सदा, सर्वकाल छाई रहती है।

रस की निर्मिति के लिए कलाकृति के मूल में 'द्वन्द्व' बहुत आवश्यक है। महादेवी की कविता में सर्वत्र एकस्वरता, एकरसता मिलती है। जो कला की दृष्टि से रस-हानि-परक है। भामह ने तो कहा था कि काव्य के लिए कुछ भी वर्ज्य नहीं, पर महादेवी जी 'टीस' शब्द पसन्द नहीं करतीं। भामह की उक्ति है :

'न स शब्दो न तद्वाच्यं न सन्यायो न सा कला।
जायते यत्र काव्यांगमहो भारो महान् कवेः।'

इस एकरसता के कारण महादेवी जी की भावुकता में एक प्रकार की कुंठा, आत्मावरोध अतः विजड़ीकरण निर्माण हो गया है, जिसका मनोवैज्ञानिक फल है सतत प्रतीक्षा और निरंतर शाश्वत टोह की भावना। फ्रायड की शब्दावली में इसी को 'वेरड्राउनगुङ्' (Verdrangung) से 'वेरडिखुटुङ्'

(Verdichtung) और उसी से 'वौलेन उंड स्ट्रैबेन' (Wollen und streben) कहा गया है।

अब वर्षा की प्रतिमाओं को ही ले लीजिए। अमरुक ने भी शृंगारपरक उसका प्रयोग किया है, पर गाथासप्तशती का कैसा नागर संस्करण है, देखिये :

'धीरं वारिधरस्य वारिकिरतः श्रुत्वा निशीथे ध्वनिम्।
दीर्घोच्छ्वाससमुद्श्रुणा विरहणीं बालां चिरं ध्यायता॥
अध्वन्येन विमुक्तकंठमखिलां रात्रिं तथा क्रंदितम्।
ग्रामीणैः पुनरध्वगास्य वसतिर्ग्रामे निषद्धा यथा॥'

जौन डिवी ने 'आर्ट एण्ड एक्पीरिअंस' ग्रंथ में चतुर्थ अध्याय में अभिव्यंजना में कला तथा सहजता की विशद चर्चा की है। कलाकार की भावानुभूति अपने विषय के आसपास में यों आकृष्ठ हो जाती है जैसे चुम्बक से लौह-चूर्ण। परंतु इस अनुभूति के प्रकटीकरण में भी एक प्रकार की अनिवार्यता, अपरिहार्यता, अनिर्बंध, अनवरतता होती है, जिसका प्रत्यय क्रमशः श्लथ होने वाली छायावादियों की कला-शैली में स्पष्ट है। महादेवी वर्मा इस नियम की अपवाद नहीं हैं। उनका वेदनावाद उत्तरोत्तर उनकी कला की सीमा बन गया है।

मेरी बात का प्रमाण उनकी आत्मकथात्मक कविता 'बीन हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ!' में अन्तिम छंद देखिये—

'दूर तुमसे हूँ अखंड सुहागिनी भी हूँ!
आग हूँ जिसके ढुलकते बिन्दु हिमजल के;
शून्य हूँ जिसको बिछे हैं पाँवड़े पल के;
पुलक हूँ वह जो पला है कठिन प्रस्तर में;
हूँ वही प्रतिबिंब जो आधार के उर में;
नील घन भी हूँ सुनहली दामिनी भी हूँ!
नाश भी हूँ मैं अनन्त विकास का क्रम भी;
त्याग का दिन भी, चरम आसक्ति का तम भी;
तार भी, आघात भी, झंकार की गति भी;
पात्र भी, मधु भी, मधुप भी, मधुर विस्मृति भी;
अधर भी हूँ और स्मित की चाँदनी भी हूँ!'

इसमें उन्होंने जीवन के भद्र और रुद्र दोनों सत्य पक्षों का वैसा ही एक साथ उल्लेख करने का यत्न किया है जैसे शिवमंगलसिंह 'सुमन' ने बाद में

अपने एक गीत में—'मैं सुन्दर और असुन्दर दोनों साथ-साथ'। पर जीवन में मिट्टी और फूल, प्रलय और सृजन, नाश और निर्माण दोनों पक्ष होने पर भी महादेवी जी ने एक ही पक्ष पर क्यों ज़ोर दिया? इसका कारण उनकी 'रश्मि' की भूमिका में दुःखवाद के समर्थन पर उनकी उक्तियों में मिलेगा। देश परतन्त्र, दीन, दुःखी था; अतः महादेवी ने वेदनावाद अपनाया। 'दीपशिखा' के ५१ गीतों में प्रत्येक गीत में अश्रु का उल्लेख है।

महादेवी के चित्रों में करुण मुद्राओं का आधिक्य है। काँटों से बँधे हाथ, मृतप्राय शिशु, अँधेरा और टिमटिमाते दीप अधिक हैं। वे लिखती हैं:—

'व्यक्तिगत रूप से मुझे मूर्त्तिकला विशेष आकर्षित करती है, क्योंकि उसमें कलाकार के अंतर्जगत का वैभव ही नहीं, बाह्य आभास भी अपेक्षित रहता है।'...

...'चित्रकला में भी बहुत छोटेसे ज्ञान-बीजपर मैंने रंग-रेखाकी शाखाएँ फैला दी हैं।' दीपशिखा (पृ० इक्कीस)

'कुछ अजन्ता के चित्रों पर विशेष अनुराग के कारण और कुछ मूर्तिकला के आकर्षण से चित्रों में यत्र-तत्र मूर्ति की छाया आ गई है। यह गुण है या दोष यह तो मैं नहीं बता सकती, पर इस चित्र-मूर्ति सम्मिश्रण ने मेरे गीत को भार से नहीं दबा डाला है ऐसा मेरा विश्वास है।' (पृ० बाईस)

'मेरा चित्र गीत को एक मूर्त्त पीठिका मात्र दे सकता है, उसकी संपूर्णता बाँध लेने की क्षमता नहीं रखता।' (पृ० बाईस)

यों उनके चित्र कविताओं के 'इलस्ट्रेशन्स' मात्र हैं। उनकी शैली पर अजंता का तो उतना नहीं जितना रोरिक, चुगताई और कनु देसाई का प्रभाव दिखायी देता है। वैसे ही शैलश्रृंग, लंबी-लंबी रेखाएँ और सिलहुट।

वे लिखती हैं—

'काव्य इतना मूल्यवान क्यों हो कि सब तक न पहुँच सके यह भी समस्या है।' (पृ० बाईस)

परंतु केवल ५१ चित्र गीतों को पुस्तक 'दीपशिखा' के दाम बाईस रुपये हैं। इस ग्रंथ की जनता से दूरी पूरी करने के लिए शायद महादेवी जी ने ४३ में 'बंगदर्शन' भी प्रकाशित किया।

महादेवी जी की कविता के समान चित्र-कला की अपनी एक विशेषता है, व्यक्तिगत शैली है। कवि-चित्रकार रहस्यवादी विलियम ब्लेक ने लिखा था कि—'Painting as well as music and poetry exist and exults in imortal thoughts'

ऐसी ही अमर विचार-संपदा के कारण महादेवी की प्रतिभा ने ललित-कला के इन रूपों को—स्थूल चक्षुरेन्द्रिय को आनंद देने वाली चित्रकला तथा सूक्ष्म भाव-जगत् को छूने वाली कविता को एकाकार कर दिया है। वर्ण-वर्ण में पंक्ति बन गयी है। रंग रेखाकार हो उठे हैं। उनकी लगन और निष्ठा का वह अंतर है कि जैसे कभी बहुत पहिले संत-काव्य की परंपरा की कवयित्री सहजोबाई ने कह दिया था कि—

'उलटा सुलटा बीज गिरै ज्यों,
धरती माहीं कैसे।
उपजि रहै निहचै करि जानौ
हरि-सुमरन है ऐसे॥'

वैसे ही किसी नियमित चित्रकला-शिक्षण, अथवा 'पर्स्पेक्टिव' के गणित और टेकनीक की बारीकियों के ज्ञान के अभाव में भी, उनके ये चित्र अपने आप उद्गार हैं। उन्हें किसी परिचय को आवश्कता नहीं।

महादेवी के व्यक्तित्त्व में अपार करुणा है, जिसका सदुपयोग वे साहित्य-कार संसद् जैसी लोकोपयोगी संस्थाओं में कर रही हैं। हमें आशा है कि आज की युद्ध की आशंका से पीड़ित, संत्रस्त मानवता को 'बंग-दर्शन' की भाँति उनकी वाणी पुनः शांति का संजीवक हिम-सेक देगी। और कविता और चित्रकला का जैसा सुन्दर उपयोग उन्होंने अपनी 'स्व' की भाव-व्यंजना में किया, वैसे ही लोक-मंगल की मर्यादा की रक्षा करते हुए हिंदी-कवियों की श्रेष्ठ परंपरा के अनुसरण में वे देश और संसार के शांति का मार्ग प्रशस्त करने वाली रचनाएँ अपनी तूलिका और लेखनी से देंगी।

यद्यपि समीक्षक की बौद्धिकता से कुछ विश्लेषण मैंने ऊपर किया है, उनकी कला-साधना के प्रति मुझे बड़ी श्रद्धा है। अतः आज की विषमता और अन्याय से पीड़ित मानवता में मैं उनसे अलेक्सी सुर्कोव नामक तरुण सोवियत कवि की इस शब्दावली मे अंत में अपील करना चाहता हूँ :

'Speak up!
The hour has struck when stern, severe
Truth's rights by truth must be seized.'

(बोलो! घंटा बज उठा है। कठोर, कठिन। जब सत्य से सत्य का अधिकार छीनना है।)

महादेवी की दार्शनिक पृष्ठ-भूमि

मन्मथनाथ गुप्त

['महादेवी जी बुद्धिवाद में विश्वास नहीं रखतीं । जगत-व्यापार के समाधान के लिए बुद्धि को अयथेष्ट पाती हैं और इनके निकट भावपक्ष बुद्धि-पक्ष से पृथक् है । वे प्रेम-मार्गी सूफी सन्तों की विचारधारा को मानती हैं। उनका अध्यात्म परम्परागत धार्मिक रूढ़ियों से भिन्न है । वे ऐसा समझती हैं कि यदि परम्परागत धार्मिक रूढ़ियों को अध्यात्म की संज्ञा दी जाय तो उस रूप में काव्य में उनका कोई महत्व नहीं है ।']

हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में श्रीमती महादेवी वर्मा एक बहुत अद्‌भुत विभूति हैं । उन्होंने स्वयं लम्बी-लम्बी भूमिकाओं के रूप में अपनी कविता के सम्बन्ध में बहुत कुछ लिखा है, पर उससे जहाँ एक तरफ उनकी कविता को समझने में आसानी हुई है, उसी प्रकार इन भूमिकाओं के कारण उनकी कविताओं को समझना और भी दुरूह हो गया है । क्योंकि उनकी कविताओं की तरह उनकी भूमिकायें भी बड़ी जटिल और उलझनभरी हैं । अवश्य हम इस बात के लिये मजबूर नहीं हैं कि एक लेखक या कवि, नाटककार या उपन्यासकार अपनी रचना के सम्बन्ध में जो कुछ भी कहता है, उसे सम्पूर्ण रूप से मान ही लें । ऐसा हो सकता है कि एक लेखक या कवि अपनी रचना में सज्ञान रूप से जिस चीज़ को देना चाहता है, और जिस मात्रा में देना चाहता है, सम्भव है कि उसकी रचना में उस चीज़ के अलावा दूसरी चीज़ें हों, वह चीज़ हो ही नहीं या बहुत कम हो, उसकी मात्रा लेखक के वर्णन के अनुसार न हो, इत्यादि ।

फिर भी यह मानना पड़ेगा कि लेखक या कवि अपनी रचना के सम्बन्ध में जो कुछ कहता है वह बहुत महत्वपूर्ण है। किसी भी गम्भीर समालोचक को लेखक या कवि के इस प्रकार के वक्तव्यों को ध्यान में रखकर चलना पड़ेगा। वह उसे कितनी हद तक माने, माने या न माने यह दूसरी बात है, पर आलोचक इन कथनों की अवज्ञा नहीं कर सकता।

महादेवी जी बुद्धिवाद में विश्वास नहीं रखतीं। उनके निकट भावपक्ष या भावनाओं का महत्व अधिक है। वे कहती हैं—'साधारणतः अन्य व्यक्तियों के समान ही कवि की स्थिति भी प्रत्यक्ष जगत की व्यष्टि और समष्टि दोनों ही में है। एक में वह अपनी इकाई में पूर्ण है और दूसरी में वह अपनी इकाई से बाह्य-जगत की इकाई को पूर्ण करता है। उसके अन्तर्जगत का विकास ऐसा होना आवश्यक है जो उसके व्यष्टिगत जीवन का विकास और परिष्कार करता हुआ समष्टिगत जीवन के साथ उसका सामंजस्य स्थापित कर दे। मनुष्य के पास इसके लिए केवल दो ही उपाय हैं, बुद्धि का विकास और भावना का परिष्कार। परन्तु केवल बौद्धिक निरूपण जीवन के मूल-तत्वों की व्याख्या कर सकता है, उनका परिष्कार नहीं जो जीवन के सर्वतोन्मुखी विकास के लिये अपेक्षित है और केवल भावना जीवन को गति दे सकती है दिशा नहीं।'

केवल बौद्धिक निरूपण में उन्हें आस्था नहीं है। वे और भी कहती हैं—'इस बुद्धिवाद के युग में मनुष्य भावपक्ष की सहायता से अपने जीवन को कसने के लिये कोमल कसौटियाँ क्यों प्रस्तुत करे, भावना की साकारता के लिये अध्यात्म की पीठिका क्यों खोजता फिरे और फिर परोक्ष अध्यात्म को प्रत्यक्ष-जगत में क्यों प्रतिष्ठित करे यह सभी प्रश्न सामयिक हैं। पर इनका उत्तर केवल बुद्धि से दिया जा सकेगा। ऐसा सम्भव नहीं जान पड़ता क्योंकि बुद्धि का प्रत्येक समाधान अपने साथ प्रश्नों की एक बड़ी संख्या उत्पन्न कर लेता हैं।'

हमने जो उद्धरण दिये उनसे यदि किसी बात का परिष्करण होता है, तो इतना ही है कि महादेवी जी जगत-व्यापार के समाधान के लिये बुद्धि को अयथेष्ट पाती हैं, और उनके निकट भावपक्ष बुद्धिपक्ष से पृथक है, कम से कम बहुत से क्षेत्रों में पृथक है। हमें इसमें कोई आश्चर्य नहीं है क्योंकि आध्यात्मवाद में भी बुद्धि को एक हद तक ही हितकर माना जाता है। हमें इसके व्यौरे में जाने की आवश्यकता नहीं है। वे स्वयं अन्यत्र भी इस बात को स्पष्ट कर देती हैं कि प्रेम मार्गी सूफी सन्तों की विचारधारा को वे

मानती हैं। वे भावपक्ष को प्रधानता देने पर भी बुद्धिपक्ष को एकदम वर्जित करना पसन्द नहीं करतीं। अब प्रश्न यह उठता है कि बुद्धि-पक्ष और भाव-पक्ष में सामंजस्य किस प्रकार हो? कितनी मात्रा में बुद्धिपक्ष को मान्यता दी जाय और कितनी मात्रा में भावपक्ष को मान्यता दी जाय?

इसका वे स्वयं ही उत्तर देती हैं—'भावातिरेक को हम अपनी क्रियाशीलता का एक विशिष्ट रूपान्तर मान सकते हैं, जो एक क्षण में हमारे सम्पूर्ण अन्तर्जगत को स्पर्श कर बाह्य-जगत में अपनी अभिव्यक्ति के लिये अस्थिर हो उठता है, पर बुद्धि के दिशा-निर्देश के अभाव में इस भाव-प्रवेग के लिये अपनी व्यापकता की सीमायें खोज लेना कठिन हो जाता है, अतः दोनों का उचित मात्रा में सन्तुलन ही अपेक्षित रहेगा।' वे और भी स्पष्ट करके आगे कहती हैं—'कवि ही नहीं प्रत्येक कलाकार को अपने व्यष्टिगत जीवन की गहराई और समष्टिगत चेतना को विस्तार देनेवाली अनुभूतियों को भावना के साँचे में ढालना पड़ा है। हमें निष्क्रिय बुद्धिवाद और स्पन्दन-हीन वस्तुवाद के लम्बे पथ को पार कर कदाचित फिर चिर-सम्वेदन रूप सक्रिय भावना में जीवन के परमाणु खोजने होंगे ऐसी मेरी व्यक्तिगत धारणा है।"

महादेवी जी ने केवल इतना ही बतलाया कि भावपक्ष और बुद्धिपक्ष का उचित मात्रा में संतुलन होना चाहिये, पर उचित मात्रा क्या है इस पर वे कहीं भी कोई रोशनी नहीं डालतीं, और ऐसा उन्हें तार्किकरूप से करने की आवश्यकता भी नहीं है क्योंकि इस औचित्य की मात्रा का निर्णय एक बौद्धिक प्रक्रिया है, और जैसा कि उसका मतवाद है उसे देखते हुये यह कहा जा सकता है कि इस प्रश्न का निर्णय बुद्धिपक्ष नहीं बल्कि भावपक्ष करेगा। यह तो स्पष्ट है कि ऐसा कह देने पर फिर किसी प्रश्न की गुंजाइश नहीं रहती।

यद्यपि महादेवी जी बुद्धिवाद को निष्क्रिय मानती हैं, और उसे एक हद तक ही मान्यता देने को तैयार हैं, साथ ही साथ वह सूफी सन्तों की धारा में बहना चाहती हैं, फिर भी उनका अध्यात्म परम्परागत धार्मिक रूढ़ियों से भिन्न है, कम से कम यही उनका दावा है। वे ऐसा समझती हैं कि यदि परम्परागत धार्मिक रूढ़ियों को अध्यात्म की संज्ञा दी जाय तो उस रूप में काव्य में उनका कोई महत्व नहीं है। उनके शब्दों में ही सुनिये—'यदि परम्परागत धार्मिक रूढ़ियों को हम अध्यात्म की संज्ञा देते हैं तो उस रूप में काव्य में उसका महत्त्व नहीं रहता। इस कथन में अध्यात्म

को बलात् लोकसंग्रही रूप देने का या उसकी ऐकान्तिक अनुभूति अस्वीकार करने का कोई आग्रह नहीं है। अवश्य ही वह अपने ऐकान्तिक रूप में भी सफल है, परन्तु इस अरूप रूप की अभिव्यक्ति लौकिक रूपकों में ही तो सम्भव हो सकेगी।

'जायसी की परोक्षानुभूति चाहे जितनी ऐकान्तिक रही हो परन्तु उनकी मिलन-विरह की मधुर और मर्मस्पर्शिनी अभिव्यंजना क्या किसी लोकोत्तर लोक से रूपक लाई थी ? हम चाहे आध्यात्मिक संकेतों से अपरिचित हों परन्तु उनकी लौकिक कलारूप सप्राणता से हमारा पूर्ण परिचय है। कबीर की ऐकान्तिक रहस्यानुभूति के सम्बन्ध में भी यही सत्य है।'

वे मानती हैं कि उनकी कविता जिस नवीनता की ओर गई, उसने अस्पष्टता, सूक्ष्म की अभिव्यक्ति, वैज्ञानिक दृष्टिकोण का प्रभाव, यथार्थ से पलायनवृत्ति आदि बताकर अतीत और वर्तमान से सम्बन्धहीन एक आकस्मिक आकाशचारी अस्तित्व देने का प्रयत्न किया गया है। पर वे इन आक्षेपों का कुछ उत्तर देने के बजाय इतना कहकर सन्तोष कर लेती हैं कि 'इन आक्षेपों की अभी जीवन में परीक्षा नहीं हो सकी है, अतः ये हमारे मानसिक-जगत में विशेष मूलय रखते हैं।'

महादेवी जी दुःखवादी हैं। स्मरण रहे कि हमारे यहाँ के प्राचीन दर्शन-शास्त्रों में कई दुःखवाद को ही आधारशिला मानकर चलते थे। इसलिये यदि यह कहा जाय कि महादेवी जी प्राचीन परम्परा की लीक में हैं तो कोई अत्युक्ति न होगी। स्वाभाविक रूप से दु.खवादी का ध्येय मुक्ति या निर्वाण या इसी प्रकार की कोई अवस्था हो सकती है। इसी कारण उनकी कविता की टेक यही है :—

> 'नहीं अब गाया जाता देव,
> थकी अंगुली, हैं ढीले तार,
> विश्ववीणा में अपनी आज,
> मिला लो यह अस्फुट झंकार।'

प्रकृति को भी वे इसी रूप में देखती हैं :

> 'रजतकरों की मृदुल तूलिका,
> से ले तुहिन बिन्दु सुकुमार,
> कलियों पर जब आँक रहा था,
> करुण कथा अपनी संसार।
> तरल हृदय की उच्छ्वासें जब

भोले मेघ लुटा जाते,
अंधकार दिन की चोटों पर
अंजन बरसाने आते।'

× × ×

'पीड़ा का साम्राज्य बस गया,
उस दिन दूर क्षितिज के पार' इत्यादि।

× × ×

'रजत प्याले में निद्रा ढाल,
बाँट देती जो रजनी बाल,
उसे कलियों में आँसू घोल,
चुकाना पड़ता किसका मोल'

× × ×

'दुःख के पद छू बहते झर-झर
कण-कण से आँसू के निर्झर
हो उठता जीवन मृदु उर्वर
लघु मानस में वह अतृप्ति असीम जग को आमंत्रित कर लाता।'

इस प्रकार जहाँ भी खोल जाइये, वहीं पर दुःखवाद का पुट मिलेगा। इसी कारण मुक्ति या निर्वाण ही कवयित्री का ध्येय है।

'जब असीम से हो जायेगा,
मेरी लघुसीमा का मेल,
देखोगे तुम देव! अमरता,
खेलेगी मिटने का खेल।'

यह मिटने का खेल ही उनके निकट एक मात्र खेल है। प्रकृति की ओर वह बहुत ज़ोर से आकृष्ट होती हैं, पर जैसा कि मैं बता चुका प्रकृति को वे अनिवार्य रूप से दुःखमय देखती हैं:—

'देकर सौरभ दान पवन से,
कहते जब मुरझाये फूल,
जिसके पथ में बिछे वही,
क्यों भरता इन आँखों में धूल।
अब इनमें क्या सार, मधुर जब गाती भौंरों की गुंजार,
मर्मर का रोदन कहता है, कितना निष्ठुर है संसार।'

इसी प्रकार अन्य बीसियों कवितायें उद्धृत की जा सकती हैं। उन्हींके शब्दोंमें

सुनिये कि वे अपने दुःखवाद के सम्बन्ध में क्या कहना चाहती हैं। वे लिखती हैं—'अपने दुःखवाद के विषय में भी दो शब्द कह देना आवश्यक जान पड़ता है। सुख और दुःख के धूपछाँहीं डोरों से बुने हुए जीवन में मुझे केवल दुःख ही गिनते रहना क्यों इतना प्रिय है बहुत लोगों के आश्चर्य का कारण है। इस क्यों का उत्तर दे सकना मेरे लिए भी किसी समस्या के सुलझा डालने से कम नहीं है। संसार जिसे दुःख और अभाव के नाम से जानता है वह मेरे पास नहीं हैं। जीवन में मुझे बहुत दुलार, बहुत आदर और बहुत मात्रा में सब कुछ मिला है, परन्तु उस पर दुःख की छाया नहीं पड़ सकी। कदाचित यह उसी की प्रतिक्रिया है कि वेदना मुझे इतनी मधुर लगने लगी है।

'इसके अतिरिक्त बचपनसे ही भगवान बुद्ध के प्रति एक भक्तिमय अनुराग होने के कारण उनकी संसार को दुःखात्मक समझने वाली फिलासफ़ी से मेरा असमय ही परिचय हो गया था।

'अवश्य ही उस दुःखवाद को मेरे हृदय में एक नया जन्म लेना पड़ा परन्तु आज तक उसमें पहले जन्म के कुछ संस्कार विद्यमान हैं जिनसे मैं उसे पहिचानने में भूल नहीं कर पाती—

'दुःख मेरे निकट जीवन का ऐसा काव्य है जो सारे संसार को एक सूत्र में बाँध रखने की क्षमता रखता है। हमारे असंख्य सुख हमें चाहे मनुष्यता की पहली सीढ़ी तक भी न पहुँचा सकें किन्तु हमारा एक बूँद आँसू भी जीवन को अधिक मधुर, अधिक उर्वर बनाये बिना नहीं गिर सकता। मनुष्य सुख को अकेला भोगना चाहता है परन्तु दुःख सबको बाँट कर—विश्व-जीवन में अपने जीवन को, विश्व-वेदना में अपनी वेदना को, इस प्रकार मिला देना जिस प्रकार एक जलबिन्दु समुद्र में मिल जाता है, कवि का मोक्ष है।

'मुझे दुःख के दोनों ही रूप प्रिय हैं, एक वह जो मनुष्य के संवेदनशील हृदय' को सारे संसार से एक अविच्छिन्न बन्धन में बाँध देता है और दूसरा वह जो काल और सीमा के बन्धन में पड़े हुए असीम चेतन का क्रन्दन है।

'अपने भावों का सच्चा शब्द-चित्र अंकित करने में मुझे प्रायः असफलता ही मिली है, परन्तु मेरा विश्वास है कि असफलता और सफलता की सीढ़ियों द्वारा ही मनुष्य अपने लक्ष्य तक पहुँच पाता है।

'इससे मेरा यह अभिप्राय कदापि नहीं है कि मैं जीवन भर 'आँसू की माला' ही गूँथा करूँगी और सुख का वैभव जीवन के एक कोने में बन्द पड़ा रहेगा।

'परिवर्तन का ही दूसरा नाम जीवन है। जिस प्रकार जीवन के उषाकाल में मेरे सुखों का उपहास सा करती हुई विश्व के कण-कण से एक करुणा की धारा उमड़ पड़ी है उसी प्रकार सन्ध्याकाल में जब लम्बी यात्रा से थका हुआ जीवन अपने ही भार से दबकर कातर क्रन्दन कर उठेगा तब विश्व के कोने-कोने में एक अज्ञातपूर्व सुख मुस्करा पड़ेगा। ऐसा ही मेरा स्वप्न है।'

यह तो हुआ महादेवी का दर्शन-शास्त्र। जैसा कि मैं पहले ही बता चुका यह दुःखवाद भारत के लिये कोई नवीन वस्तु नहीं है। ऐन वैदिक युग के बाद से ही इस प्रकार के विचारों की प्रधानता चली आ रही है। षड्दर्शन के जो प्राप्त संस्करण हैं, तथा बौद्ध, जैन आदि सारे दर्शन इसी प्रकार के दुःखवाद को लेकर चले और पनपे। फिर भी महादेवी के दुःखवाद में और पहले के दुःखवादियों में एक बहुत बड़ा फ़र्क़ यह है कि महादेवी अपने इस दुःखवाद के कारण उन लोगों की तरह प्रकृति से और विस्तृत रूप से जगत व्यापार से आँखें हटा नहीं लेतीं, बल्कि वह उनकी तरफ और भी प्रबलता के साथ खिंचती है। वे पार्थिव मिलन को कोई महत्व न देती हुई भी सर्वत्र मिलन और विरह की भाषा, प्रणय और प्याले की बोली को अपनाती हैं, वे मधुमय मुरली की तान, चल-चितवन से बेख़बर नहीं होती। इन्हीं कारणों से वे जिस कविता की सृष्टि करती हैं, वह आधारभूत रूप से दुःखवादी होते हुये भी एक अजीब गुदगुदी पैदा करने में समर्थ होती है, विरह में मिलन का कहीं पर पुट आ जाता है, दुःख एक रोमांटिक रूप में हमारे सामने आता है। दूसरे शब्दों में वे दुःखवाद को कविता का रूप देने में समर्थ होती हैं और यही उनकी रचना की लोकप्रियता का एक बहुत बड़ा कारण है। अवश्य असली कारण तो सामाजिक है, सचमुच ही हम जिस दुनिया में रहते हैं, विशेषकर महादेवी ने जिस युग में काव्य-साधना की, उस युग में आम जनता के जीवन में दुःख का ही बोलबाला था। महादेवी ने इस दुःख के सागर में पैठ कर कुछ मुक्ता-रत्न चुने, उनसे पेट तो नहीं भरा, और न किसी समस्या का समाधान हुआ, पर यह ज़रूर हुआ कि लोग इनकी चकाचौंध से अपने कष्टों को पल भर के लिये ही सही विस्मृत हो गये।

संभव है कि जब यह दुःखवाद का मेघ हम पर से हटे, तब लोग दुःखवादी दर्शन या कविता को अपनाना पसन्द न करें, पर महादेवी जी ने अपनी कविताओं में जिस सुन्दर संतुलित मधुर भाषा का प्रयोग किया है, उसके कारण उनकी कविता हिन्दी-साहित्य में अमर रहने के लिये बाध्य है। स्मरण रहे कि महादेवी ने जिस युग में काव्य-साधना की, उस युग में बहुत

से लोग कहें या न कहें यह विश्वास करते थे कि हृदय को स्पर्श करने वाली कविता केवल उर्दू में लिखी जा सकती है, हिन्दी खड़ी-बोली में नहीं। उस समय यह काव्य-साधिका हमारे सम्मुख आई, और धीरे-धीरे इस संदेह-जाल को दूर कर दिया। इस दृष्टि से उनकी काव्य-रचना हिन्दी-साहित्य में एक नवयुग प्रवर्त्तिका है।

महादेवी के रेखा-चित्र

गोपालकृष्ण कौल

['टेढ़ी-मेढ़ी रेखाओं से बने 'स्कैच' चित्रकार की जीवन के प्रति होने वाली सजीव अनुभूति की साकार अभिव्यक्ति करते हैं।

'रेखाचित्र' न कहानी है और न गद्यगीत, न निबन्ध है और न संस्मरण; रेखाओं से जीवन के विविध रूपों का आकार देने की प्रणाली की विशेषता को अपनाकर ही शब्दों द्वारा जीवन के विविध रूपों को साकार करने वाले शब्द-चित्रों को 'रेखा-चित्र' की संज्ञा प्रदान की गई।

महादेवी के 'रेखा-चित्र' उनके जीवन से सम्बन्धित हैं। जिन पात्रों का चित्रण इनमें हुआ है वे कलाकार की जीवन-कथा का हृदय छूने वाले अंग हैं।']

चित्र भावना की नीरव-अभिव्यक्ति होता है। उसमें रेखाएँ और रंग बिना भाषा के ही बोल उठते हैं। किन्तु चित्र केवल रेखाओं और रंगों से ही नहीं, शब्दों से भी खींचे जाते हैं। अभिव्यक्ति के लिखित प्रकार के रूप में भावना के चित्रण के लिए शब्द और रेखाएँ समान उपकरण हैं—दोनों ही रहस्यमय अनुभूति को मानस की गहराई से सतह पर लाकर अभिव्यक्त करने का प्रयत्न करते हैं।

महादेवी वर्मा ने अपनी रहस्यमय भावनाओं को अभिव्यक्त करने के लिए—शब्द और रेखाएँ—दोनों को ही अपनी कला का उपकरण बनाया है। चित्रण में उन्हें विशेष रुचि है। उनके गीति-काव्य में अनेक शब्द-चित्र हैं। जैसे शेक्सपियर और कीट्स के सामने नया भाव आते ही—उसके नए-नए चित्र भी बनने लगते थे और उन्होंने अपने काव्य में भावों का चित्रीकरण करके भावनाओं को एक साकारता-सी प्रदान की—वैसे ही महादेवी वर्मा भी

रहस्यमय भावना की अभिव्यक्ति अपने काव्य में प्रतीकों से छोटे छोटे चित्र प्रस्तुत करके होती हैं। महादेवी—कवि के साथ कुशल चित्रकार भी हैं। शायद इसीलिए वे काव्य में भी चित्र बनाती हैं। 'दीपशिखा' काव्य-संग्रह में महादेवी जी के चित्रों के गीत और गीतों के चित्र हैं। उसमें उन्होंने रेखा और शब्द—दोनों में ही कविता को आकार प्रदान किया है। जैसे चित्रकार प्रकृति के अनेक सुन्दर-असुन्दर उपकरणों को रेखांकित करके चित्र में भावना को रूप प्रदान करता है उसी प्रकार महादेवी रहस्यमय भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए अपने काव्य-चित्रोंको प्रस्तुत करने में प्रकृति के अनेक उपकरणों को प्रतीक के रूप में प्रयोग करती हैं। वर्षा से करुणा, ग्रीष्म से क्रोध, पतझर से दुःख, वसन्त से आनन्द को संकेत द्वारा अभिव्यक्त करती हैं। सुख के लिए वे 'मलय-पवन', 'मधु' और 'रश्मि' आदि शब्दों का प्रयोग करती हैं। आँसू के लिए उन्होंने 'मकरन्द' 'नक्षत्र' और 'तुहिन-कण' आदि शब्दों का प्रयोग किया है। जीवन के प्रतीक के रूप में उन्होंने तरी, प्याली, लहर आदि शब्दों का प्रयोग किया है। इसप्रकार स्पष्ट शब्दों में भावाभिव्यक्ति न करके, प्रतीकों से रहस्यमय भावना को अभिव्यक्त करने की शैली चित्रकार की शैली है, क्योंकि जब कवि मात्र शब्द से अपने को अभिव्यक्त नहीं कर पाता तभी वह ऐसे प्रतीक-चित्र प्रस्तुत करता है। किन्तु यह उसकी मजबूरी नहीं, बल्कि उसके कलागत सौन्दर्य की विशेषता बन जाती है।

महादेवी वर्मा अपने गीति-काव्य में व्यक्ति-प्रधान हैं, समाज की अभिव्यक्ति का उसमें अभाव है। उसमें वे व्यष्टि हैं, समष्टि नहीं। वैसे उसमें प्रकृति के विराट सौन्दर्य के दर्शन किए गए हैं, जड़ मे चेतन के स्पन्दन को अनुभव किया गया है, किन्तु जो चेतन का यथार्थ रूप है—जन-जीवन, उसके दर्शन का उसमें अभाव है। इसलिए गीति-काव्य में उनकी व्यक्ति-साधना है। प्रियतम के रूप में 'ब्रह्म' उनका साध्य, विरह उनकी साधना, और परमात्मा से मिलने को बेचैन आत्मा उनकी साधिका है। गीति-काव्य में वे प्रेमिका हैं, प्रणयिनी हैं। प्रेम की अतृप्त प्यास, विरक्तिमय अनुराग, वासनाहीन विरह-पीड़ा और एक अज्ञात ईश्वरीय सौन्दर्य के प्राकृतिक सौन्दर्य मे दर्शन—उनके काव्य के विषय हैं। वे वेदना, करुणा और दुःख की कवि हैं। 'रश्मि' की भूमिका में उन्होंने लिखा है:—

—'संसार साधारणतः जिसे दुःख और अभाव के नाम से जानता है वह मेरे पास नहीं है। जीवन में मुझे बहुत दुलार, बहुत आदर और बहुत मात्रा में सब कुछ मिला है; उस पर पार्थिव दुःख की छाया नहीं पड़ी। कदाचित

यह उसी की प्रतिक्रिया है कि वेदना मुझे इतनी मधुर लगती है।'

जो पार्थिव है, उससे उनकी विरक्ति है। उनका अध्यात्मिक दुःख है और वेदना में अलौकिक अनुराग का रस है। किन्तु पार्थिव और स्थूल मान कर काव्य में उन्होंने जन-जीवन के समष्टि रूप समाज की यथार्थ और जाग्रत चेतना को स्थान नहीं दिया। वैसे गीति काव्य व्यक्ति-प्रधान कला-साधना है, किन्तु समाज के प्रति कवि के जागरूक दृष्टिकोण की झलक उसमें प्रतिबिम्बित हो सकती है, यदि कवि का समाज के प्रति कोई जागरूक दृष्टिकोण हो। वर्तमान समाज में व्याप्त दुःख, दैन्य, विषमता और उत्पीड़न की झलक उनकी गीति-काव्य में नहीं क्योंकि उसमें जो दुःख और वेदना है वह भी उनके अलौकिक प्रेम की विरह-पीड़ा के लक्षण मात्र हैं। इसीलिए उन्होंने काव्य के अधिकांश उपमान और प्रतीक भी प्रकृति से ग्रहण किए हैं, जन-जीवन से नहीं। किन्तु महादेवी के रेखाचित्रों में समाज के प्रति आकर्षण है। गीति-काव्य में जो कला व्यक्ति-प्रधान थी, रेखाचित्रों में वह समाज-प्रधान हो गयी है। जन-जीवन में प्राप्त दुःख, दैन्य और उत्पीड़न के चित्रों को उन्होंने शब्दों की रेखाओं से चित्रित किया है। इन रचनाओं में समाज के प्रति महादेवी जी के एक जागरूक दृष्टिकोण के दर्शन होते हैं।

रेखाचित्र लिखने की शैली लेखकों को चित्रकला से प्राप्त हुई है। टेढ़ी-मेढ़ी रेखाओं से बने 'स्कैच' चित्रकार की जीवन के प्रति होने वाली सजीवन अनुभूति की साकार अभिव्यक्ति करते हैं। रेखाओं से जीवन के विविध रूपों का आकार देने की प्रणाली की विशेषता को अपनाकर ही शब्दों द्वारा जीवन के विविध रूपों को साकार करने वाले शब्द-चित्रों को 'रेखाचित्र' की संज्ञा प्रदान की गयी। रेखाचित्र न कहानी है और न गद्यगीत; न निबन्ध है और न संस्मरण वह एक स्वतन्त्र कला है। रेखाचित्र केवल व्यक्तियों का ही नहीं, स्थान, वातावरण और भावात्मक व्यक्तित्व का भी खींचा जाता है। रेखा-चित्रकार और कैमरामैन का काम एक-सा है। जैसे कैमरामैन जो जैसा है, उसको वैसा ही कैमरे द्वारा चित्रित करने का प्रयत्न करता है। किन्तु यथा-तथ्य चित्रण में मात्र कैमरे का लैन्स ही काम नहीं करता बल्कि कैमरामैन की 'एँगिल' देने और 'पोस' लेने की पैनी दृष्टि भी बड़ा काम करती है। रेखा-चित्रकार भी एक पैनी दृष्टि रखता है। वह वस्तु या व्यक्ति में स्थित अनेक प्रभावों और प्रतिक्रियाओं के दर्शन करके मात्र शरीर का ढाँचा ही नहीं खींचता, बल्कि मन, आत्मा और जीवन की विशेषताओं का भी नक्शा अपनी रेखाओं में प्रस्तुत करता है। 'रेखाचित्र' की सीमा बड़ी नहीं हो सकती। उसका

अधिक विस्तार उसके सौन्दर्य को नष्ट कर देता है। उसमें गठन होना चाहिए और शब्द रेखाओं में अभिव्यक्ति की शक्ति 'थम्ब-नेल स्कैच' लघुतम रेखा-चित्र का आधुनिकतम नमूना है, जिसमें चार छः पंक्तियों में ही चित्र प्रस्तुत किया जाता है। ऐसे रेखाचित्र अभी हिन्दी में नहीं लिखे जाते। किन्तु रेखा चित्र 'लिरिक' नहीं हैं, इसलिए कलाकार व्यक्ति का रेखाचित्रण करते हुए भी समाज को नहीं भूल सकता। वह व्यक्ति प्रधान होकर सबाल रखाचित्र नहीं अंकित कर सकता। इसके लिए उसे जनजीवन का सामीप्य प्राप्त करना अनिवार्य है।

इसीलिए गीतिकाव्य में व्यक्ति-प्रधान महादेवी की भावना रेखाचित्रों में समाज-प्रधान हो गयी है। रेखाचित्रों में उनकी अनुभूति मात्र प्रणयिनी की अनुभूति नहीं। उनमें मातृत्व, की ममता, बहिन का स्नेह और नारीत्व की विविध अनुभूति की अभिव्यक्ति है। उनमें जन-जीवन में व्याप्त दुःख, दैन्य, अशिक्षा, उत्पीड़न आदि के प्रति विराट सहानुभूतिपूर्ण करुणा और ममता है—कहीं कहीं विद्रोह भी है किन्तु वह ममता और करुणा से अभिभूत है। किन्तु महादेवी की कला में यदि कहीं जन-जीवन और समाज का प्रतिबिम्ब मिलता है तो इन रेखाचित्रों में ही, इसलिए महादेवी के साहित्य में इनका विशिष्ट स्थान है। दूसरे इन रेखाचित्रों का संबंध महादेवी के जीवन से है। जिन पात्रों का चित्रण इनमें हुआ है वह कलाकार की जीवन-कथा का हृदय छूने वाले अंग हैं। 'अतीत के चल-चित्र' की भूमिका में उन्होंने लिखा है:—

'इन स्मृति-चित्रों में मेरा जीवन भी आगया है। यह स्वाभाविक भी था। अँधेरे की वस्तुओं को हम अपने प्रकाश की धुँधली या उजली परिधि में लाकर ही देख पाते हैं; उसके बाहर तो वे अनन्त अन्धकार के अंश हैं। मेरे जीवन की परिधि के भीतर खड़े होकर चरित्र जैसा परिचय दे पाते हैं वह बाहर रूपान्तरित हो जायगा।'

यद्यपि, 'स्मृति की रेखाएँ' और 'अतीत के चलचित्र' में महादेवी जी के जीवन-संस्मरण भी निहित हैं, फिर भी उनमें रेखाचित्र ही अधिक हैं। उनके रेखाचित्रों के पात्र ऐतिहासिक महापुरुष नहीं बल्कि भारतीय जन-जीवन के वे कुरूप चिन्ह है, जो कुछ तो अशिक्षा और शोषण से दीन और सरल बन गए हैं और कुछ महादेवी की ममता और करुणापूर्ण सहानुभूति से। दलित और पिछड़ा हुआ मानकर जिन व्यक्तित्वों की हम उपेक्षा कर देते हैं, महादेवी ने अपनी विराट सहानुभूति के सहारे उनका अन्तरंग अध्ययन कर इन रेखाचित्रों में प्रस्तुत किया है। इनमें कहीं कहीं दबा हुआ विद्रोह भी

मुखरित होता है। विशेषत: भारतीय नारीत्व के विविध रूपों का अध्ययन भी इनमें प्रस्तुत किया गया है।

'स्मृति की रेखाएं' में पहला रेखाचित्र एक देहाती वृद्ध महिला का है, जिसका नाम भक्ति है, जो अशिक्षा और अज्ञान के अन्धकार में अनेक दुर्गुणों के साथ कुछ ऐसे गुण भी रखती है, जो उसके व्यक्तित्व का प्रबल आकर्षण हैं। दूसरा चित्र एक चीनी फेरी वाले का है, जो अपने देश को छोड़कर अपनी खोई हुई बहिन को तलाश करने के लिए कपड़े की फेरी लगाता फिरता है। विगत जीवनमें उसने कितना कष्ट और व्यथा उठायी, इसका चित्र महादेवी की करुणापूर्ण शब्द-रेखाओं में उभर कर सामने खड़ा हो जाता है। इसके अतिरिक्त इस संग्रह में गाँव की गरीबी, पहाड़ी श्रमपूर्ण अभाव-ग्रस्त जीवन, धोबियों की पारिवारिक झाँकी के मन हिला देने वाले भावना पूर्ण रेखाचित्र इस संग्रह में हैं।

'अतीत के चलचित्र' में पहले रेखाचित्र में श्रमजीवी ग्रामीण नौकर के जीवन की झाँकी है, जो घर से छुटपन में भाग आता है और महादेवी के परिवार में बचपन से प्रौढ़ावस्था तक ईमानदारी से काम करता है—भृत्य रामू के चरित्र के गुण-दोष उभर कर सामने आगए हैं।

दूसरे रेखाचित्र में एक बाल-विधवा का चित्रण है, जो परिवार के अत्याचार और उपेक्षापूर्ण वातावरण में बिना बोले ही घुट-घुट के अपना जीवन बिताती है। बिना बोले ही उसकी करुण आँखें उसके जीवन की तमाम वेदना को व्यक्त करती हैं।

तीसरे रेखाचित्र में विमाता के दुर्व्यवहार से पीड़ित एक निरीह बालिका का चित्रण है।

चौथे रेखाचित्र में भंगियों के पारिवारिक चित्रण के साथ उपेक्षित भारतीय नारीत्व के रूपदलित समाज की नारी सबिया का कर्मठ चरित्र है, जो अशिक्षित और पीड़ित होते हुए भी उत्सर्ग की महान भावना से अनुप्राणित है।

सब्ज़ी बेचने वाले अन्धे अलोपी, बदलू कुम्हार और कर्मठ पहाड़ी महिला लछमी के रेखाचित्र जन-जीवन के विविध रूप हैं।

इन चित्रों के चरित्र लेखिका के विगत और वर्तमान से साक्षात सम्बन्ध रखते हैं, इसलिए इन संग्रहों में रेखाचित्र ही नहीं हैं, रेखाचित्र के अतिरिक्त संस्मरण भी हैं जिन्हें व्यक्ति-प्रधान निबन्ध भी कहा जा सकता है, किन्तु इन चलचित्रों और स्मृति की रेखाओं में जो रेखाचित्र हैं, उनमें विशेष बल है

और वे हिन्दी साहित्य के लिए गौरव की वस्तु हैं। चीनी फेरी वाले के रेखाचित्र को हिन्दी के प्रसिद्ध संस्मरण लेखक और रेखाचित्रकार बनारसीदास चतुर्वेदी ने साहित्य का चिरस्मरणीय रेखाचित्र बताया है। अलोपी, रामा, बदलू और सबिया के रेखाचित्र भी हिन्दी में अपने ढंग के सर्वप्रथम और सफल रेखाचित्र हैं।

महादेवी जी के रेखाचित्रों में पात्र स्वयं कम बोलता है, इसलिए संवाद कम हैं किन्तु जितने संवाद हैं वे चरित्र की सूत्ररूप में व्याख्या करने में समर्थ हैं। लेखिका स्वयं उनके विषय में अधिक बोलती हैं, किन्तु उसके बोलने में ही चरित्र बोल उठता है। क्योंकि इन रेखाचित्रों में संस्मरण के अंश भी विद्यमान है, इसलिए लेखिका की दृष्टि चरित्रों को चारों ओर से घेरे रहती है। वह चरित्र को अपनी ममता और करुण सहानुभूति की गोद में बैठाकर उसकी रेखाएँ खींचती है। महादेवी कवि हैं, इसलिए रेखाओं में भावना और कल्पना के रंग भरती हैं। वे सादी रेखाओं से ही चित्र को नहीं खींचतीं। उनके वाक्य लम्बे होते हैं किन्तु शिथिल नहीं—उनमें भावनाओं की अभिव्यक्ति की प्रभावपूर्ण चुस्ती है। इन रेखाचित्रों में चरित्र की अतल गहराई में घुसकर मानवीय भावनाओं के मोती चुन-चुन कर सतह पर लाने का सफल प्रयास है। वे केवल रेखाओं में आकृति और मुद्रा को ही अंकित नहीं करतीं, वरन् मन के सूक्ष्म-भावों को भी उभारकर शब्द-रेखाओं में बाँधने का प्रयत्न करती हैं। हिन्दी में रामवृक्ष बेनीपुरी चोटी के रेखाचित्रकार हैं किन्तु उनके रेखाचित्र कहानी या कथा-प्रधान होते हैं और आकृति प्रमुख होती है, किन्तु महादेवी के रेखाचित्रों में कहानी के साथ कविता भी रहती है। पं० बनारसीदास चतुर्वेदी ने अधिकतर बड़े लोगों के रेखाचित्र और संस्मरण लिखे हैं, किन्तु महादेवी ने जीवन में आने वाले उन उपेक्षित चरित्रों को अपनाया है, जिनमें भारतीय समाज की ज्वलन्त समस्याएँ साकार हैं।

इन रचनाओं में लेखिका का समाज के प्रति एक जागरूक दृष्टिकोण भी है। कवि के रूप में जितनी वे पार्थिव समस्याओं से दूर हैं—इन रचनाओं में उतनी ही समीप हैं। यद्यपि इनमें लेखिका युग चेतना के अनुरूप विद्रोहिणी नहीं, फिर भी उसमें जैसे बुद्ध की करुणा और माता के विराट मातृत्व के दर्शन होते हैं। वह घृणा से अधिक ममता और सहानुभूति में विश्वास करती है, इसलिए उसकी विद्रोह की आग पर करुणा और सहानुभूति का हिम आच्छादित है, फिर भी कहीं कहीं वह दबाया नहीं जा सका है,

विशेषतः नारी के प्रति होने वाले अत्याचार से वह व्याकुल हो उठती हैं। लछमा का चित्र खींचते हुए नारी पर होने वाले पुरुष के अत्याचारके प्रति वह कह उठती हैं:—

'एक पुरुष के प्रति अन्याय की कल्पना से ही सारा पुरुष-समाज उस स्त्री से प्रतिशोध लेने को उतारू हो जाता है और एक स्त्री के साथ क्रूरतम अन्याय का प्रमाण पाकर भी सब स्त्रियाँ उसके अकारण दण्ड को अधिक भारी बनाए बिना नहीं रहतीं।'

'अतीत के चलचित्र' के छठे संस्करण में व्यभिचार से उत्पन्न सन्तान की माँ को समाज जब सहन नहीं कर सकता और जब कि उस अबोध नारी को धोखा दिया गया है तब वह कह उठती हैं:—

'यदि यह स्त्रियाँ अपने शिशु को गोद में लेकर साहस से कह सकें कि 'बर्बरों! तुमने हमारा नारीत्व, पत्नीत्व सब ले लिया, पर हम अपना मातृत्व-किसी प्रकार न देंगी, तो इनकी समस्याएँ तुरन्त सुलझ जावें।''

इस प्रकार इन रेखा-चित्रों में विद्रोही वाणी भी है। इनमें सामाजिक चेतना है। जीवन के प्रति महादेवी के दृष्टिकोण का परिचय देने के लिए उनकी सामाजिक कला की श्रेष्ठ रचनाएँ हैं, जिनमें व्यक्ति में समय की जागरूक समस्याओं की हलचल को देखने का प्रयत्न किया गया है।

महादेवी में रेखाचित्र लिखने की प्रबल शक्ति है। वे एक चित्रकार हैं और गीति-काव्य में भावना-चित्रों को प्रस्तुत करने वाली श्रेष्ठ कलाकार हैं। यद्यपि संस्मरण का संस्पर्श होने से उनकी कुछ रचनाएँ पूर्ण रेखाचित्र नहीं कही जा सकतीं, किन्तु उनमें भी रेखाचित्रों के स्फुट अंश दिखाई पड़ते हैं। हिन्दी में छायावादी शैली के गद्य, सबल रेखाचित्र और भावना में संस्मरण की दृष्टि से 'स्मृति की रेखाएँ' और 'अतीत के चलचित्र' उनकी सबल और ऐतिहासिक रचनाएँ हैं जिनमें उनका रेखा-चित्रकार का रूप प्रधान है।

'नीरजा' : एक विश्लेषण

विजयेन्द्र स्नातक

['नीरजा' महादेवी जी के अनुभूति एवं चिंतन-प्रधान अठ्ठावन गीतों का संकलन है। काव्याङ्गों की दृष्टि से यह मुक्तक गीति-काव्य के भीतर आती है। आत्म-साक्षात्कार का आनन्द पाकर जैसे साधक परितोष पाता है वैसा ही परितोष-भाव 'नीरजा' की अनेक कविताओं में व्यक्त हुआ है। जिन कविताओं में कल्पना का विशेष आग्रह न होकर अनुभूति को चित्रित किया गया है, निःसन्देह वहाँ काव्यानन्द के साथ एक प्रकार की नैसर्गिक रसानुभूति भी उपलब्ध होती है।

सचमुच 'नीरजा' के विरह, दुःख, वियोग और अद्वैतपरक गीतों में एक ऐसी चमक है जो एक साथ मानस को आलोक से परिपूर्ण कर देती है। जैसे रात्रि के तमाच्छन्न आकाश में उल्का का प्रकाश सहसा फैल कर उजियाले की दिव्य छटा दिखाता है वैसे ही इन गीतों का आलोक भी, जहाँ कहीं गंभीर चिंतन में कवयित्री नहीं उतरी है, वहाँ काव्य के चरम सौन्दर्य का दर्शन कराता है।']

महादेवी वर्मा की रचनाओं में 'नीरजा' का स्थान कई दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है, रसानुभूति के उत्कर्ष के साथ अभिव्यंजना का क्रमिक विकास 'नीरजा' में स्पष्ट परिलक्षित होता है। 'नीरजा' कवयित्री की काव्यानुभूति की तीसरी सोपान है, किन्तु इस सोपान तक पहुँचते-पहुँचते उसे मंजिल की आभा-मंडित चोटियाँ दिखाई पड़ने लगी हैं। कल्पना का प्राधान्य अब क्षीणतर होकर चिन्तन और अनुभूति के रूप में परिवर्तित हो गया है, आनन्द और उल्लास का स्निग्ध आलोक कवयित्री के अन्तर

में 'नीरजा' के विकास में सक्षम होकर उसे हर्ष के वातावरण में विचरण करने की प्रेरणा दे रहा है। श्री रायकृष्ण दास के शब्दों में—'नीरजा' में 'नीहार' का उपासना-भाव और भी सुस्पष्टता और तन्मयता से जाग्रत हो उठा है। इसमें अपने उपास्य के लिये केवल आत्मा की करुण अधीरता ही नहीं, अपितु हृदय की विह्वल प्रसन्नता भी मिश्रित है। 'नीरजा' यदि अश्रुमुखी वेदना के कणों से भीगी हुई है तो साथ ही आत्मानन्द के मधु से मधुर भी है। मानो, कवि की वेदना, कवि की करुणा अपने उपास्य के चरण स्पर्श से पूत होकर आकाश-गंगा की भाँति इस छायामय जग को सींच देने में ही अपनी सार्थकता समझ रही है।" इन पंक्तियों में 'नीरजा' को अश्रुमुखी वेदना के कणों के साथ आत्मानन्द के मधु से मधुर कहा गया है। संसार को अपनी शान्त-स्निग्ध भावधारा से आप्लावित करने वाली 'नीरजा' को कवयित्री की उत्कृष्ट और महत्वपूर्ण रचना हमने प्रारम्भ में इन्हीं विशिष्ट गुणों के कारण कहा है। 'नीरजा' में काव्यानुभूति के उत्कर्ष के साथ आनन्दानुभूति के मनोरम स्थलों का भी अभाव नहीं है।

'नीरजा' महादेवी जी के अनुभूति एवं चिन्तन प्रधान अट्ठावन गीतों का संकलन है। काव्याङ्गों की दृष्टि से यह मुक्तक गीतिकाव्य के भीतर आती है। अन्तर्मुखी सूक्ष्म भावनाओं को व्यक्त करने के लिए गीतिकाव्य सर्वश्रेष्ठ साधन स्वीकार किया जाता है। यद्यपि गीत शब्द के विषय में आज-दिन भ्रांतियों का अभाव नहीं—सभी शीर्षक-हीन लघु-काय कविताओं को लोग गीति-काव्य के नाम से व्यवहृत करते हैं। गीति-तत्व के अभाव में हमने अनेक कविताओं को गीतिकाव्य में परिगणित होते देखा है, किन्तु गीत की यदि सीमा-मर्यादा निर्धारित की जाय तो संगीत और काव्य के समुचित समन्वय को ही गीत कहा जा सकता है। संगीत के अन्तर्गत उसका प्रधान धर्म गेयता का होना नितान्त आवश्यक है। महादेवी जी के गीतों में हम इन दोनों तत्वों के पूर्ण समावेश के साथ अन्तर्दर्शन और आत्मनिष्ठता की प्रधानता देखकर उनकी प्रभावोत्पादकता पर मुग्ध हुए बिना नहीं रह सकते। 'नीरजा' के गीतों में रागात्मक अनुभूति की तीव्रता एक ऐसा समाहित प्रभाव उत्पन्न करती है कि कुछ क्षणों के लिए मानसिक आवेगों का प्रसार गीत के भाव के अतिरिक्त कहीं और जाता ही नहीं। कहना न होगा कि ऐसा मोहक प्रभाव गीतों के कला-पक्ष की परिपूर्णता के कारण उत्पन्न नहीं होता और न उनकी संगीता-त्मकता का ही यह फल है—यह तो निश्चय ही गीतों के अन्तराल में समाविष्ट सूक्ष्म भाव-गरिमा है जो पाठक को अपने में लीन किये रखने की

अनुपम शक्ति रखती है। जिन पदों में यह भाव-अभिव्यंजना की दुर्बोधता या भाव की अति सूक्ष्मता के कारण अव्यक्त रह गया है, वहाँ कलापक्ष के चमत्कार पर पाठक नहीं रीझता। 'नीरजा' में ऐसे अनेक गीत हैं जो अपनी भाव-वस्तु की गहनता के कारण अज्ञेय से बने रह जाते हैं। उनकी यह अज्ञेयता क्यों है यह जानने के लिये कवयित्री की भावाभिव्यंजन-शैली की अपेक्षा भाव-वस्तु का अनुशीलन ही अधिक आवश्यक है। भाव-प्रसार की क्षमता जिन गीतों में न्यून मात्रा में है उनमें भी गेयता और आत्मनिष्ठ भावना का अभाव नहीं है।

जैसा कि हमने प्रारम्भ में कहा है कि 'नीरजा' के गीत अनुभूति और चिन्तन प्रधान होने के कारण 'नीहार' और 'रश्मि' के गीतों से अधिक आत्म-चेतना पूर्ण है। आत्म-चेतना की जागृति गीति-काव्य की आत्मा है। अपने हृदय का हर्ष-विषाद प्रकट करने के लिए गीत एक ऐसा सरस माध्यम है जिसमें हमारी भावना और अनुभूति को प्रतिफलित होने का पर्याप्त अवकाश मिलता है। महादेवी जी ने स्वयं गीत का स्वरूप स्पष्ट करते हुए लिखा है कि 'गीत का चिरन्तन विषय रागात्मिका-वृत्ति से सम्बन्ध रखने वाली सुख दुःखात्मक अनुभूति से ही है। साधारणतः गीत व्यक्तिगत सीमा में सुख-दुःखात्मक अनुभूति का वह शब्द रूप है जो अपनी ध्वन्यात्मकता में गेय हो सके।' 'नीरजा' के गीतों में हम उक्त परिभाषा को पूर्णरूप से चरितार्थ होता हुआ पाते हैं।

'नीरजा' के गीत-तत्त्व के मूल रूप को समझने के लिए उसकी अभि-व्यंजना-शैली के अन्य उपादानों का हृदयंगम करना भी आवश्यक है। महा-देवी जी ने जिस युग में काव्य-क्षेत्र में पदार्पण किया वह छायावाद का उत्कर्षकाल था, छायावादी अभिव्यंजना इतनी समृद्ध और परिपुष्ट हो चुकी थी कि उसमें निम्न कोटि के प्रतिभाहीन कवि के पाँव जमना सम्भव न था। महादेवी जी ने छायावादी काव्य-प्रणाली की अभिनव मान्यताओं को स्वीकार करके भी उसमें अपना व्यक्तित्व सबसे पृथक रखा, इस व्यक्तित्व की स्थापना में उन्हें छायावादी प्रवृत्तियों में नूतनता का संचार करना पड़ा जो उनकी रहस्यानुभूति का मूल बीज है। महादेवी जी के कवि-व्यक्तित्व की विशिष्टता उनके काव्य-वैशिष्ट्य का प्राण है, छायावाद का मूलदर्शन समझने में उन्होंने अपना नवीन मौलिक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया, और हमें यह कहने में संकोच नहीं कि छायावाद के मूल-दर्शन को जिस समग्रता के साथ इन्होंने पहचाना कदाचित 'प्रसाद' जी को छोड़कर किसी अन्य छायावादी कवि ने

उतनी व्यापकता से उसे ग्रहण नहीं किया। छायावाद के दर्शन का मूल उन्होंने 'सर्वात्मवाद' में बताकर अपनी काव्य-धारा में केवल प्रकृति के प्रति ही प्रीति व्यंजित नहीं कि प्रत्युत जड़-चेतन सभी में सार्वत्रिक प्रीति एवं प्रणय निवेदन देखा। इस सर्वात्मवाद का आदर्श भले ही प्राचीन आत्मवादी दर्शनों या उपनिषदों के समान ब्रह्मपरक न हो किन्तु इसमें प्रिय के प्रति आकुल आत्मा की पुकार बड़े ऊर्जस्वित स्वरों में गूँजती है। उपनिषदों का आत्मवाद दर्शन के चक्रव्यूह में आकर फँस गया था और शंकर के अद्वैतवाद सिद्धान्त के प्रवर्तन से पहले तक वैराग्य-भावना के प्रचार का ही प्रकारान्तर से साधन बना रहा। महादेवी जी ने अपनी कविता में रहस्य-भावना को स्थान देते हुए यद्यपि अद्वैतमत की अवहेलना नहीं की है, किन्तु उनका अद्वैत काव्य की मृदुल-मोहक सरणियों में होकर माधुर्य-सिक्त हो गया है। उनकी रहस्य-भावना में भक्तों और निगुणियों की रूढ़ि के अनेक स्थलों पर समावेश होने का कारण भी उनकी आत्मनिवेदन की परम्परा तथा यही 'मधुरतम व्यक्तित्व की सृष्टि' कहा जाता है। काव्यात्मक परिच्छेद में रहस्य-भावना के साथ ईश्वरोन्मुख प्रेम की अभिव्यक्ति चिर-अनादि से चली आ रही है, कवयित्री ने 'नीरजा' के इस प्रकार के प्रेम का बड़ा सजीव और सुन्दर वर्णन किया है। इस वर्णन में जिस अलौकिक 'प्रिय' का आह्वान, मिलन, विछोह, निवेदन, उत्सर्ग और समर्पण है वह भौतिक अस्तित्व न रखते हुए भी उसी प्रकार भौतिक है जिस प्रकार कबीर, जायसी आदि की रहस्यवादी कविता में। अन्तर्मुखी भावनाओं की प्रधानता के कारण महादेवी जी अपनी रचनाओं में प्राकृतिक सुख-दुःख अथवा उसके सामंजस्य का कोई उल्लेख नहीं करतीं। प्राकृतिक दृश्यों का बाह्य-अंकन भी इसी कारण उनकी कविता में अपेक्षाकृत विरल है। यह ठीक है कि अन्य छायावादी कवियों की भाँति वे भी प्राकृतिक पदार्थों को चेतन अस्तित्व प्रदान करती हैं और कल्पना के द्वारा उन्हें मूर्त रूप देकर उनमें भावनाओं का आरोप भी करती हैं, किंतु इस प्रक्रिया में उनकी अपनी मौलिकता निर्माण-चातुरी में है, उनके उपकरण अन्य छायावादी कवियों से कुछ इतर कोटि के होते हैं, इसीलिए उन्हें छाया-वादी होने पर भी रहस्यवादी कोटि में मूर्धन्य स्थान प्राप्त है। रहस्यवाद का प्रसार चिन्तन-क्षेत्र में ही होता है। अपनी पहली रचना 'नीहार' से ही महादेवी जी अद्वैतवाद का सहारा पाकर इस ओर अग्रसर हुई है, किन्तु 'नीरजा' में आकर वे चिंतनमात्र से अद्वैत भावना को पल्लवित नहीं करतीं। अनुभूति का आश्रय भी उनका सम्बल बनकर उन्हें रहस्योन्मुख

करता है। 'नीरजा' की कविताओं में तो वे प्रियतम को अपने अन्तर में बसा हुआ देखकर तुष्ट भी होती हैं। आत्म-साक्षात्कार का आनन्द पाकर जैसे साधक परितोष पाता है, वैसा ही परितोषभाव 'नीरजा' की अनेक कविताओं में व्यक्त हुआ है। जिन कविताओं में कल्पना का विशेष आग्रह न होकर अनुभूति को चित्रित किया गया है, निस्सन्देह वहाँ काव्यानन्द के साथ एक प्रकार की नैसर्गिक रसानुभूति भी उपलब्ध होती है।

रहस्यवादी कविता में आत्मा और परमात्मा के विरह का वर्णन मिलन और दर्शन की अपेक्षा अधिक मार्मिक और आकर्षक होता है। 'नीरजा' में भी विरह-दशा का वर्णन बहुत ही श्लाघ्य और मनोरम है। प्रियतम के विरह से भी जीवन की सार्थकता का अनुभव हो सकता है, जीवन को विरह का जलजात बताते हुए 'नीरजा' के विरहजन्य उपादानों से ही निर्माण का विवरण प्रस्तुत किया गया है :

'विरह का जलजात जीवन, विरह का जल जात !
वेदना में जन्म करुणा में मिला आवास,
अश्रु चुनता दिवस इसका अश्रु गिनती रात,
जीवन विरह का जलजात !

आँसुओं का कोष उर, दृग अश्रु की टकसाल,
तरल जल कण से बने घन सा क्षणिक मृदु गात,
जीवन विरह का जल जात !'

प्रिय की अनुभूति के वर्णन अद्वैत-भावना के साथ 'नीरजा' के स्थान-स्थान पर उपलब्ध होते हैं। प्रियतम का सान्निध्य पाकर आत्मा अहंकार से तृप्त नहीं होती वरन् वह वेसुध सी होकर उसमें तादात्म्य-सुख पाती है, उसे प्रिय-परिचय की आकांक्षा भी नहीं रहती, जग-परिचय की इच्छा नहीं रहती, स्वर्ग और अपवर्ग में लय होने की स्पृहा भी निःशेष हो जाती है:—

'तुम मुझमें प्रिय ! फिर परिचय क्या !
तारक में छवि प्राणों में स्मृति,
पलकों में नीरव पद की गति,
लघु उर में पुलकों की संसृति
भर लाई हूँ तेरी चंचल
और करूँ जग में संचय क्या
तुम मुझमें प्रिय फिर परिचय क्या !'

तादात्म्य के स्वरूप-वर्णन में महादेवी जी ने दोनों का पार्थक्य जिस

काव्यमयी शैली से—जय किया है वह निराला के 'तुङ्ग हिमालय शृङ्ग और मैं चंचलगति सुर सरिता'—का ध्यान दिला देता है। यथार्थ में, प्रेयसि और प्रियतम के पृथक् अस्तित्व का भ्रम ही हमारे मोहपाश का कारण है, उसे समझने से दोनों की एकता समझी जा सकती है—

'चित्रित तू मैं हूँ रेखा क्रम,
मधुर राग तू, मैं स्वर संगम,
तू असीम मैं, सीमा का भ्रम,
काया छाया में रहस्यमय !
प्रेयसि प्रियतम का अभिनय क्या !'

संसार के समस्त पदार्थों में गति और परिवर्तन उपस्थित करने वाला असीम शक्ति-युत प्रिय विश्व के कण-कण में व्याप्त रहकर भी हमें दूर लगता है और विरही आत्मा युग-युगान्तर से करुण विलाप करके उसकी वियोग ज्वाला में जलता रहता है। 'नीरजा' के 'पथ देख बितादी रैन मैं प्रिय पहचानी नहीं'—गीत में प्राकृतिक दृश्यों की अवतारणा करके इस भाव को बड़ी सरस शैली से व्यक्त किया है। अपनी रहस्यानुभूति को लौकिक रूप के द्वारा व्यक्त करने में महादेवी जी को आशातीत सफलता मिली है। 'रश्मि' और 'नीहार' में भी लौकिक रूपकों की प्रचुरता है, किन्तु 'नीरजा' में तो इनकी छवि देखते ही बनती है। इन रूपकों में भी छटा उस स्थल में और दीप्तिमय हो जाती है जब कवयित्री अपने अन्तर के हर्षातिरेक में बेसुध होकर गीत लिखने बैठती हैं। हृदय की सच्ची अनुभूति के अंकन में लीन होकर जब वे गा उठती हैं तब उसमें न कहीं कृत्रिमता रहती है और न कहीं अस्पष्टता। नीचे के गीत में स्वभाविक सरल भावकी स्निग्ध व्यंजना देखकर महादेवी जी की कला का मूल्याङ्कन करिये—

'बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ !
नयन में जिसके जलद वह तृषित चातक हूँ,
शलभ जिसके प्राण में वह निठुर दीपक हूँ,
फूल को उर में छिपाये विकल बुलबुल हूँ,
एक होकर दूर तन से छाँह वह चल हूँ,
दूर तुम से हूँ अखंड सुहागिनी भी हूँ !
नाश भी हूँ मैं अनन्त विकास का क्रम भी,
त्याग का दिन भी चरम आसक्ति का तम भी,
तार भी आघात भी झंकार की गति भी,

पात्र भी, मधु भी, मधुप भी मधुर विस्मृति भी,
अधर भी हूँ और स्मित की चाँदनी भी हूँ,
बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ!'

आत्मा का परमात्मा के प्रति आकुल प्रणय-निवेदन 'नीरजा' के गीतों में प्रचुर मात्रा में हैं। रहस्यवाद की भावना को व्यक्त करने के लिए साधारणतः चार मुख्य स्तरों का क्रमिक विकास होता है जो महादेवी जी की 'यामा' में संकलित चारों कृतियों में देखा जा सकता है। वैयक्तिक सुख दुःख की सीमा को पार कर जब आत्मा दुःख-वेदना के द्वारा भी सुख और हर्ष का अनुभव करने लगती है तभी भावात्मक रहस्यवाद का चरम उत्कर्ष काव्य में आता है। भावनात्मक रहस्यवाद के चित्र प्रस्तुत करने वाले कवि को लौकिक सुख-दुःख को अलौकिक में लीन करने की क्षमता होना अनिवार्य है। महादेवी जी ने स्वयं लिखा है—'नीरजा' और 'सान्ध्य-गीत' मेरी उस मानसिक स्थिति को व्यक्त कर सकेंगे जिससे अनायास ही मेरा हृदय सुख दुःख में सामजंस्य का अनुभव करने लगा।' यही कारण है कि 'नीरजा' में व्यक्त वेदना के गीत आनन्द का पथ प्रशस्त करते हैं, दुःख का नहीं। यह वेदना अलौकिक होकर आत्मानन्द से परिपूर्ण हो जाती है और प्रियतम के पास ले जाने में सहायक होती है। 'नीरजा' का पहला ही गीत जिस अश्रु-नीर को लेकर अवतीर्ण होता है वह 'दुःख से आविल सुख से पंकिल' है। वह 'जीवन पथ का दुर्गमतम तल, अपनी गति से कर सजल सरल' युग तृषित तीर को शीतल करता है। 'कौन तुम मेरे हृदय में' गीत लिखते हुए भी इसी प्रकार की वेदना के मधुर रूप को अङ्कित किया गया है। 'पा लिया मैंने किसे इस वेदना के मधुर क्रय में?' कहकर वेदना द्वारा ही उसकी प्राप्ति कही गई है। वेदना और दुःख की स्थिति को महादेवी जी सदैव उच्च स्थान देती हैं। 'दुःख मेरे निकट जीवन का ऐसा काव्य है जो सारे संसार को एक सूत्र में बाँध रखने की क्षमता रखता है।' दुःख के आत्मिक रूप को उन्होंने अपनी कविता में मुखरित किया है। प्रियतम के आह्वान में भी दुःख-मार्ग का संकेत इस बात का द्योतक है कि वे दुःख को त्याग, उत्सर्ग और समर्पण का साथी-संगी मानती हैं।

दुःखवाद 'नीरजा' के गीतों में जहाँ कहीं व्यक्त हुआ है वहाँ लौकिक सीमाओं से ऊपर अलौकिक आनन्द-पथ को प्रशस्त करता हुआ ही है:—

'तुम दुख बन इस पथ से आना!
शूलों में नित मृदु पाटल-सा, खिलने देना मेरा जीवन,

क्या हार बनेगा वह जिसने सीखा न हृदय को बिंधवाना,
नित जलता रहने दो तिल तिल, अपनी ज्वाला में उर मेरा,
इसकी विभूति में, फिर आकर अपने पद-चिह्न बना जाना।
तुम दुख बन इस पथ से आना।'

दुःख में अपने अस्तित्व को लीन करके आत्मानन्द लाभ करना ही जीवन की सार्थकता है, 'मिटने वालों की बेसुध रँग-रलियाँ' ही विश्व में सौरभ, राग, आलोक और हास्य की सृष्टि करती हैं।

'मेरे हँसते अधर नहीं जग की आँसू लड़ियाँ देखो
मेरे गीले पलक छुओ मत मुर्झाई कलियाँ देखो—'

गीत में इसी भाव की सुन्दरतम व्यंजना है।

इस दुःख से संतप्त होने पर आत्मा की तितिक्षा इतनी हो जाती है कि वह सब कुछ सहने में अपने को समर्थ पाती है। मृत्यु का भी भय उसे रंचकमात्र आतंकित नहीं करता। संसार की समस्त विभीषिकाओं पर विजय पाकर परमात्मा के मिलन के लिए उन्मुख आत्मा सतत अपने पथ पर अग्रसर होती रहती है:—

'कमलदल पर किरण अंकित चित्र हूँ मैं क्या चितेरे?
है युगों का मूक परिचय देश से इस राह से,
होगई सुरभित यहाँ की रेणु मेरी चाह से,
नाश के निश्वास से मिट पायँगे क्या चिह्न मेरे?
नाच उठते निमिष पल मेरे चरण की चाप से,
नाप ली निस्सीमता मैंने दृगों की माप से,
मृत्यु के उर में समा क्या पायँगे अब प्राण मेरे?'

प्रिय के अद्वैत भाव के साथ अपने भीतर-बाहर समाविष्ट पाकर साधिका को उसकी पूजा-अर्चना का उपक्रम आडम्बर प्रतीत होता है। अपने जीवन को ही वह असीम का सुन्दर मन्दिर मानती है और फिर 'क्या पूजा क्या अर्चन रे!' कह कर इस बाह्याडंबर की उपेक्षा करती है। सचमुच ही 'नीरजा' के विरह, दुःख, वियोग और अद्वैतपरक गीतों में एक ऐसी चमक है जो एक साथ मानस को आलोक से परिपूर्ण कर देती है। जैसे रात्रि के तमाच्छन्न आकाश में उल्का का प्रकाश सहसा फैलकर उजियाले की दिव्य छटा दिखाता है वैसे ही इन गीतों का आलोक भी, जहाँ कहीं गंभीर चिंतन में कवयित्री नहीं उतरी हैं, वहाँ काव्य के चरम-सौन्दर्य का दर्शन होता है।

'नीरजा' में महादेवी जी की चिन्तन-दिशा में अवश्य उल्लेखनीय परि-

वर्तन हुआ है। आत्मा और परमात्मा के अस्तित्व के साथ इसमें प्रकृति या विश्व का अस्तित्व भी रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करता हुआ दृष्टिगत होता है। द्वैत रहित होकर ही संकल्प-विकल्प की द्विविधा मिटती है। जब कोई भिन्नता नहीं रह जाती तब फिर यह जड़-चेतन सभी तद्रूप भासने लगता है :—

'यह क्षण क्या द्रुत मेरा स्पन्दन,
यह रज क्या नव मेरा मृदुतन,
यह जग क्या लघु मेरा दर्पण
प्रिय तुम क्या चिर मेरे जीवन।'

'नीहार' और 'रश्मि' की कविताओंमें प्रकृति उनके साथ सहानुभूति प्रकट करती थी, किन्तु 'नीरजा' में आकर कवयित्री को विश्वास हो चला है कि उसके प्रिय के आगमन की बेला सन्निकट है। उनके आगमन से पहले चिर सुहागिनी का आभरण उन्हें अपने अंग-प्रत्यङ्ग पर सजाना है। अतः वसन्त रजनी को शृंगार करने के लिए उत्साहित करती है—प्रकृति की वसन्त कालीन छटा का भी इसी प्रसंग में चित्रण कवयित्री ने कर दिया है:—

'तारक मय नव वेणी वंधन,
शीश फूल कर शशि का नूतन,
रश्मि वलय सित घन अवगुंठन
मुक्ताहल अविराम बिछा दे चितवन से अपनी
पुलकती भार वसन्त रजनी।'

'नीरजा' की मूल-भावना का यथार्थ परिचय देने वाली उनकी 'मधुर मधुर मेरे दीपक जल' कविता है। इस गीत में दीपक कवि के व्यक्तित्व का प्रतीक है। अपने सुकुमार-कोमल शरीर को अपने जीवन के प्रत्येक अणु को दीपक की वर्तिका की भाँति जलाती हुई कवयित्री अपने प्रियतम का पथ आलोकित करना चाहती है। अपने मोम की भाँति गला कर आलोक फैलाने वाली दीप-शिखा में विश्व-कल्याण और संसार-सेवा का जो उदात्त आदर्श दृष्टिगत होता है वह काव्य का ही नहीं संसार का आदर्श है :—

'युग युग प्रतिदिन प्रतिक्षण प्रतिपल
प्रियतम का पथ आलोकित कर
सौरभ फैला विपुल धूप वन,
मृदुल मोम सा घुल रे मृदु तन,
दे प्रकाश का सिन्धु अपरिमित,

तेरे जीवन का अणु गल गल ।'

भाव-पक्ष के साथ ही 'नीरजा' की काव्य-सामग्री बहुत समृद्ध है। प्रकृति के अनेक सुन्दर दृश्य-चित्र, रजनी और दिवस के वर्णन, जहाँ हमारी भावनाओं को उत्तेजित और अनुभूति को तीव्र बनाते हैं, वहाँ साथ ही साथ प्रकृति-वर्णन के भी सुन्दरतम स्थल प्रस्तुत करते हैं। विभावरी, वसन्त, रजनी, यामिनी, आदि के द्वारा कवयित्री ने भावोत्कर्ष की शैली का अच्छा परिचय दिया है। 'नीरजा' में गीतों के साथ लोक-गीतों और उर्दू शैली से रूपान्तर करके नवीन गीतों का प्रयोग दृष्टिगत होता है। गीति-काव्य की नूतन शैली को दृष्टि में रखकर यदि नीरजा के छन्द, लय, संगीत, ध्वनि, ताल आदि पर विचार किया जाय तो निस्सन्देह वह छायावादी युग की इस दिशा में अन्यतम श्रेष्ठ रचना है। 'नीरजा' में गीति-काव्य का पूर्ण विकास है, इसमें तो सन्देह का अवकाश है ही नहीं।

यामा का दार्शनिक आधार

नन्ददुलारे बाजपेयी

['महादेवी के काव्य में वैराग्य-भावना का प्राधान्य है। महात्मा बुद्ध की भांति नहीं (बुद्ध की मूर्तियों में भी दुःख की मुद्रा नहीं मिलती) किन्तु बौद्ध सन्यासियों और सन्यासिनियों सरीखी एक चिन्ता-मुद्रा, एक विरक्ति, एक तड़प, शान्ति के प्रति एक अशान्नि महादेवी जी की कविता में सब जगह देखी जा सकती है। किन्तु इस कारण उनकी कविता में एकरूपता 'मोनोटनी, नहीं आई है, जैसा कुछ लोग आरोप करते हैं। उनमें प्रचुर वैभिन्य है।']

'यामा' श्री महादेवी वर्मा का सम्पूर्ण काव्य संग्रह है। इसके चार यामों में उनकी चारों स्फुट रचना-पुस्तकें संगृहीत हैं। इनके अतिरिक्त महादेवी जी की कोई अन्य रचना शायद प्रकाश में नहीं आई है। अवश्य यहाँ मेरा मतलब केवल उनकी काव्य-रचनाओं से ही है। ये सब को सब मुक्तक पद्य और गीत रूप में हैं, जिनकी संख्या दो सौ से कुछ कम है। साथ ही 'यामा' में महादेवी जी की लिखी भूमिकाएँ और उनके बनाये कितने ही चित्र हैं, जिनसे उनके काव्य पर आवश्यक प्रकाश पड़ता है।

अच्छा होता यदि हम बिना कोई भूमिका बाँधे ही 'यामा' का अध्ययन (यहाँ अध्ययन से मेरा मतलब उसकी विशेषताओं के पर्यवेक्षण से है) आरम्भ कर सकते, किन्तु ऐसा करने में एक कठिनाई दीखती है। 'यामा' केवल एक संग्रह पुस्तक ही नहीं है, उसमें महादेवी जी का पूरा काव्य-व्यक्तित्व को हम नवीन काव्यधारा से एक दम अलग रख कर नहीं देख सकते। साम्य और वैषम्य के वे सूत्र हमें संक्षेप में देखने होंगे जिनके द्वारा महादेवी जी सामयिक

काव्यजगत् से बँधी हुई हैं। उनके लिए एक छोटी-सी, उपयुक्त, 'सेटिंग' हमें तैयार करनी होगी।

हिन्दी में महादेवी जी का प्रवेश छायावाद के पूर्ण ऐश्वर्य-काल में हुआ था, किन्तु आरम्भ से ही उनकी रचनाएँ छायावाद की मुख्य विशेषताओं से प्रायः एकदम रिक्त थीं। मानव अथवा प्रकृति के सूक्ष्म किन्तु व्यक्त सौंदर्य में आध्यात्मिक छाया का भान मेरे विचार से छायावाद की एक सर्वमान्य व्याख्या हो सकती है। इस व्याख्या में आये 'सूक्ष्म' और 'व्यक्त' इन अर्थ-गर्भ शब्दों को हम अच्छी तरह समझ लें। यदि वह सौन्दर्य सूक्ष्म नहीं है, साकार होकर स्वतंत्र क्रियाशील है और किसी कथा या आख्यायिका का विषय बन गया है तो हम उसे छायावाद के अंतर्गत नहीं ले सकेंगे। छायावाद के इस सीमांत पर हम स्काट और बाइरन जैसे अँगरेजी के कवियों को पाते हैं जिन्होंने विमोहक और तल्लीनताकारी नारी-सौंदर्य को लम्बी कथाओं के सूत्र में ताना है, और प्रकृति की अनिर्वचनीय सुषमा को पृष्ठभूमि बनाकर चित्रित किया है। वे प्रकृत छायावादी नहीं कहे जा सकते। और छायावाद के दूसरे सीमांत पर वर्ड्स्वर्थ को देखते हैं जिसकी प्रकृति के प्रति इतनी सार्वत्रिक प्रीति है कि वह व्यक्त सौंदर्य के प्रति निस्पन्द, बेपहचान निगूढ़-सी मालूम देती है; सब कुछ तो सुन्दर ही है, ऐसी भावमयता में मग्न-सी हो गई है। वह भी प्रकृत छायावादी नहीं है। प्रकृत छायावादी तो अँगरेजी में प्राकृतिक सूक्ष्म सौंदर्य-भावना का एकमात्र अधिष्ठाता 'शेली' ही हुआ है जो एक ओर कुछ समीक्षकों द्वारा (जो सूक्ष्म के विरोधी हैं) हवाई और आसमानी बताया गया है किंतु दूसरी ओर जिसे नास्तिक (अव्यक्त सत्ता का विरोधी) कहे जाने का श्रेय भी प्राप्त है। आशा है, छायावाद की इस मध्यवर्तिनी भूमि पर पाठकों की दृष्टि गई होगी।

मुझे आशा नहीं है कि छायावाद की मेरी यह व्याख्या निकट भविष्य में सर्वमान्य हो सकेगी, किन्तु इसकी दार्शनिक और काव्यात्मक शैली इतना सुस्पष्ट व्यक्तित्व रखती है और यह अन्य निकटवर्ती वादों से इतना पृथक् अस्तित्व बनाये हुए है कि कोई कारण नहीं कि यह आखिरकार एक अलग वाद के रूप में स्वीकार न कर लिया जाय। संप्रति हिन्दी के अधिकांश समीक्षक छायावाद और रहस्यवाद के बीच कोई स्पष्ट विभाजन नहीं कर रहे। नवीन काव्ययुग के निर्माता स्वर्गीय प्रसादजी का इस विषय का विवरण विशेष ध्यान देने योग्य हैं। वर्तमान रहस्यवाद के सम्बन्ध में वे लिखते हैं—'विश्वसुन्दरी प्रकृति में चेतनता का आरोप संस्कृत वाङ्मय में प्रचुरता

से उपलब्ध होता है। यह प्रकृति अथवा शक्ति का रहस्यवाद सौंदर्य-लहरी के 'शरीरं त्वं शम्भो' का अनुकरण मात्र है। वर्तमान हिन्दी में इस अद्वैत रहस्यवाद की सौंदर्यमयी व्यञ्जना होने लगी है, वह साहित्य में रहस्यवाद का स्वाभाविक विकास है। इसमें अपरोक्ष अनुभूति, समरसता तथा प्राकृतिक सौंदर्य के द्वारा 'अहं' का 'इदम्' से समन्वय करने का सुन्दर प्रयत्न है।'

अब, विश्वसुन्दरी प्रकृति में चेतनता की भावना सार्वत्रिक भी हो सकती है और एक-एक सुन्दर वस्तुगत भी हो सकतो है। शम्भु अथवा आत्मा का शरीर सारा सृष्टि प्रसार ही है, इस दृष्टि से व्यक्त वस्तु-मात्र में सौंदर्य की एक ही धारा प्रवाहित है। प्रकृति में कुछ भी असुन्दर नहीं, यहाँ व्यष्टि-भेद नहीं है। पुनः प्राकृतिक सौंदर्य के द्वारा अहं (आत्मा) का इदम् (प्रकृति) से समन्वय करने का प्रयत्न व्यष्टि सौंदर्य को स्वीकार करता है। इस प्रकार प्रसादजी ने व्यष्टि सौंदर्य-दृष्टि (छायावाद) और समष्टि सौंदर्य-दृष्टि (रहस्यवाद) में कोई स्पष्ट अन्तर नहीं किया। किन्तु मैं इस अन्तर का विशेष रूप से आग्रह करता हूँ क्योंकि इसने दो विशेष पृथक-पृथक् काव्य शैलियों की सृष्टि की हैं। व्यष्टि सौंदर्यबोध एक सार्वजनीन अनुभूति है। यह सहज ही हृदयस्पर्शी है, यह सक्रिय और स्वावलम्बिनी काव्यचेतना की जन्मदात्री है। इसे मैं प्राकृतिक अध्यात्म कह सकता हूँ। समष्टि सौंदर्यबोध उच्चतर अनुभूति है। फिर भी यह प्रत्येक क्षण रूढ़िबद्ध होने की सम्भावना रखती है। इसमें इन्द्रियानुभूति की सहज प्रगति या विकास के लिये स्थान नहीं है। यह क़दम-क़दम पर धर्म के कठघरे में बन्द होने की अभिरुचि रखती है।

काव्य में यह रहस्यवाद, बड़े-बड़े दुर्दिन देख चुका है। अपने अतिप्राकृत स्वरूप के कारण पहले तो इसकी अभिव्यक्ति ही अतिशय दुर्गम और दुरुह है, किन्तु कुछ सच्चे रहस्यवादियों ने कुछ अनोखे रास्ते निकाले भी तो उन पर चलनेवाले बहुत से झूठे रहस्यवादी नकलनवीस निकल आये। उन्होंने काव्य की पूरी-पूरी अधोगति कर डाली। सारी प्रकृति को समाहित करनेवाले निर्गुण प्रेम की विशुद्ध व्यंजना विषयवासना का नंगा नाच बन कर रह गई। उपनिषदों का ऊर्जस्वित आत्मवाद सपूर्ण कर्तव्यों से हाथ समेटने का बहाना सिद्ध हुआ। योग और तन्त्र-शास्त्रों की प्रकृति को आत्मा में लय करने की सारी प्रक्रिया जो पूर्ण मनुष्यत्व का साधन थी अनहोनी सिद्धियों और तामसिक उपचारों का दूसरा नाम बन गई। शारीरिक, मानसिक, नैतिक और आत्मिक सबलता का प्रचारक रहस्यवाद 'ना घर मेरा ना घर तेरा चिड़िया रैनबसेरा' गा कर भीख माँगने वालों का ब्रह्मास्त्र

बन गया। एक ओर तो यह नकली रहस्यवाद की प्रगति हुई और दूसरी ओर रुढ़िबद्ध होकर रहस्यकाव्य विनय के पदों, भक्तिगीतों, धार्मिक आख्यानों आदि में परिणत हो गया। अवश्य ही ईरान और फ़ारस के कुछ निर्गुनियों ने रहस्य काव्य की वास्तविक मर्यादा स्थिर रक्खी किन्तु उनकी संख्या अँगुलियों पर गिने जाने के योग्य है। यह इतनी भी है, यह कम गौरव की बात नहीं क्योंकि हम कह चुके हैं कि रहस्यानुभूति एक अति विरल वस्तु है और उसकी काव्य-प्रक्रिया भी उतनी ही दुरूह और दुःसाध्य है।

रहस्यकाव्य की मुख्य परम्पराओं में हम नीचे लिखे भेदों की परिगणना कर सकते हैं। यदि हम प्रकृति की ओर से आत्मसत्ता की ओर आगे बढ़ें तो इस गणना का क्रम इस प्रकार होगा--विश्वसुन्दरी प्रकृति में चेतनता का आरोप, यह पहली सीढ़ी है। इसके अन्तर्गत सुख और दुख का सामंजस्य, जिसे प्रसाद जी ने समरसता कहा है, आ जाता है। यही प्रसादजी की 'अपरोक्ष अनुभूति' भी है महादेवी जी ने इसे छायावाद की सीमा में मानकर एक दूसरे ढङ्ग से कहा है—'छायावाद की प्रकृति घट, कूप आदि में भरे जल की एकरूपता के समान अनेक रूपों में प्रकट एक महाप्राण बन गई अतः अब मनुष्य के अश्रु, मेघ के जलकण और पृथ्वी के ओसबिंदुओं का एक ही कारण, एक ही मूल्य है।' वास्तव में यह रहस्यवाद का पहला और व्यापक उपक्रम है जिसमें भावना-बल से 'एकोऽहं बहुस्याम्' को 'एकोऽहं' की ओर प्रतिवर्तित करते हैं। सांसारिक सुख-दुःख राग-विराग आदि जितने भी द्वन्द्व हैं सब को एक ही चेतन से संबद्ध करने की यह प्रणाली रहस्यवाद के प्रथम सोपान पर मिलती है। इस सोपान पर हम महादेवी जी को नहीं पाते। यद्यपि अपनी आध्यात्मिक अनुभूतियों के विकास के सिलसिले में उन्होंने लिखा है कि 'पहले बाहर खिलने वाले फूल को देखकर मेरे रोम-रोम में ऐसा पुलक दौड़ जाता था मानों वह मेरे हृदय में ही खिला हो, परन्तु उसके अपने से भिन्न प्रत्यक्ष अनुभव में एक अव्यक्त वेदना भी थी; फिर यह सुख-दुःख-मिश्रित अनुभूति ही चिन्तन का विषय बनने लगी और अन्त में अब मेरे मन में न जाने कैसे उस भीतर-बाहर में एक सामंजस्य ढूँढ़ लिया है, जिसने सुख दुःख को इस प्रकार बुन दिया कि एक के प्रत्यक्ष अनुभव के साथ दूसरे का अप्रत्यक्ष आभास मिलता रहता है,' किन्तु महादेवी जी के काव्य में प्राकृतिक सुख-दुःख का अथवा उसके सामंजस्य का कोई उल्लेख नहीं मिलता। प्रकृति के किसी भी दृश्य का मानव मनोभाव का आकलन उनकी

रचनाओं में नहीं के बराबर है। दृश्य प्रकृति में हिमालय पर ही उनकी एक रचना 'यामा' में देखने को मिली किन्तु वहाँ भी अन्तर्मुखी भावना ही उभर पाई है। प्रकृति के रूपों, दृश्यों और भावों को महादेवी जी ने चेतना का प्रेरक न रखकर उन सब को एक-एक चेतन व्यक्तित्व-सा दे दिया है। उनकी पहली ही रचना में 'निशा की धो देता राकेश; चाँदनी में जब अलकें खोल; कली से कहता था मधुमास बता दो मधुमदिरा का मोल', यद्यपि व्यक्त सौन्दर्य की भी झलक लिये हुए है किन्तु वहाँ वह गौण है और महादेवी जी की रचनाओं में उत्तरोत्तर गौण होता गया है। आगे चलकर सारी प्रकृति और उसके समस्त उपकरण एक निखिल वेदना की अनेक-रूप अभिव्यक्ति के लिए भाँति-भाँति की दौड़ लगाते हैं, जिसे हम इसी निबंध में देखेंगे। प्रकृति की परिपूर्ण छवि की आत्मरूप प्रतिष्ठा हमें वर्ड्सवर्थ में ही मिलती है। कुछ लोग हिन्दी में गुरु भक्तसिंह को वर्ड्सवर्थ का स्थानापन्न मानते हैं, किन्तु प्रकृति की आध्यात्मिकता की अनुभूति गुरु-भक्तसिंह में हमें विशेष नहीं मिलती। एक-एक डाली, एक-एक लता, एक-एक पत्ती अथवा उद्भिज्ज को चेतन क्रियाशील उल्लेख कर देने से ही उनकी आध्यात्मिकता प्रकाश में नहीं आती। यह चेतन व्यक्तित्व देने (या 'पर्सानिफाई' करने) की प्रकृति ही ह्रासोन्मुख होकर 'चिड़ियों का विवाह, नामक ग्रामीण गीत में परिणित हो गई है जिससे सब चिड़ियों को विवाह-सम्बन्धी एक एक काम सिपुर्द किया गया है। समरसता (सुख-दुःख का आध्यात्मीकरण) और अपरोक्ष आध्यात्मिक अनुभूति का हिन्दी में सब से सुन्दर उदाहरण प्रसाद जी का 'आँसू' काव्य है।

रहस्यवाद के इस सोपान से ऊपर उठने पर हम प्राकृत या अपरोक्ष अनुभूति को छोड़कर परोक्ष अनुभूति के क्षेत्र में प्रवेश करते हैं। महादेवी जी के काव्य की यही भूमि है। परोक्ष अनुभूति के भी कितने ही भेदोपभेद हैं जिन्हें दार्शनिक दृष्टि से तीन मुख्य भागों में बाँटा जा सकता है—सगुण साकार, सगुण निराकार और निर्गुण निराकार। एक दिव्य व्यक्तित्व पर, वह प्रेम-मय हो, करुणामय हो अथवा शक्तिमय या आनन्दमय, आस्था रखनेवाले सगुण साकार के अनुयायी होते हैं। महादेवी जी की अधिकांश रचना का यही दार्शनिक आधार दीखता है। वे लिखती भी हैं—'मानवीय सम्बन्धों में जब तक अनुराग-जनित आत्मविसर्जन का भाव नहीं घुल जाता तब तक वे सरस नहीं हो पाते और जब तक यह मधुरता सीमातीत नहीं हो जाती तब तक हृदय का अभाव दूर नहीं होता। इसी से इस (प्राकृतिक) अनेकरूपता

के कारण पर एक मधुरतम व्यक्तित्व का आरोपण कर उसके निकट आत्म-निवेदन कर देना इस काव्य का दूसरा सोपान बना जिसे रहस्यमय रूप के कारण रहस्यवाद का नाम दिया गया।' मधुरतम व्यक्तित्व की यह नियोजना महादेवी जी के काव्य में मौजूद है किन्तु उसके निकट आत्मनिवेदन करनेवाले बहुत से भक्त कवि हो गये हैं जिनका धार्मिक दृष्टि से पर्याप्त आदर है किन्तु जिन्हें रहस्यकाव्य का स्रष्टा नहीं कहा जा सकता। स्पष्ट है कि महादेवी जी ने अपने इस वक्तव्य में आवश्यक सतर्कता से काम नहीं लिया। यही नहीं, उन्होंने रूढ़िबद्ध धार्मिक काव्य और वास्तविक रहस्य काव्य का स्पष्ट अन्तर सदैव अपने सामने नहीं रक्खा है जिससे उनकी रचनाओं में स्थान-स्थान पर प्रकृत अध्यात्म की जगह रूढ़ि के चिह्न मिलते हैं।

सगुण साकार दार्शनिकता का सब से बड़ा खतरा यही है कि वह निःसीम सौंदर्यसत्ता का रहस्य खोकर सीमारेखाओं में आ जाता और वास्तविक परोक्ष अनुभूति-संपन्न काव्य का विषय न रहकर, धर्म और उपासना का आधार बन जाता है। सगुण दार्शनिकों और कवियों ने इस कठिनाई को खूब अच्छी तरह समझा था। इसीलिए उन्होंने बचत के कई उपाय निकाले थे। प्रथम, उन्होंने उस मधुरतम व्यक्तित्व को अलौकिक सत्ता-सम्पन्न अंकित करने की चेष्टा की। इसके लिए दार्शनिकों को दिव्य सत्ता सम्बन्धी एक नई दार्शनिक प्रक्रिया ही चलानी पड़ी जिसमें उस दिव्य व्यक्तित्व के सभी उपकरणों, उसके नाम, रूप, लीला और धाम को तथा उससे संपृक्त वस्तुव्यापार को बार-बार अप्राकृत घोषित करना पड़ा। किन्तु काव्य अथवा कलाओं का काम केवल घोषणा से नहीं चलता। उन्हें ऐसी प्रतीक-योजना का सहारा लेना पड़ा जिससे वस्तुतः अलौकिक का आभास मिल सके। कवियों को उस मधुरतम चरित्र के निर्माण में दिव्य सौंदर्यसृष्टि की अशेष कला समाप्त कर देने पर भी सीमा के अन्दर संतोष नहीं हुआ। उन्हें पद-पद पर उस व्यक्तित्व की महिमा का अलग से निर्देश करते रहना पड़ा, जिस पद्धति को हम 'श्रीमद्भागवत' और 'रामचरितमानस' में भी देखते हैं। फिर भी ससीमता और असीमता, साकारता और रहस्य में जो मौलिक अन्तर है उसकी पूर्ति नहीं हुई। फलतः सीता-राम और राधा-कृष्ण की पूर्ण परोक्ष अनुभूति काव्य के अन्दर नहीं हो सकी। तब रामायत कवियों ने रहस्य का पल्ला छोड़कर चरित्र की व्यक्त महत्ता के आग्रह द्वारा महाकाव्य की सृष्टि कर डाली और कृष्णायत कवियों ने प्रेम और सौंदर्य की अशेष तरंगिणी बहाकर राधाकृष्ण की जो चरितावली निर्माण की वह रोमांचक भावों से भर गई। किंतु रहस्यवाद के निकट होते

हुए भी वह रहस्यकाव्य नहीं कहा जा सकता। अवश्य इस चरित्र के दो प्रधान प्रसंगों—रास और भ्रमरगीत में हम रहस्य काव्य के सारे लक्षण पाते हैं। रहस्य के क्षेत्र में वैष्णव कवियों की वास्तविक सफलता इन्हीं दो प्रसंगों को लेकर है।

जब उस मधुरतम व्यक्तित्व के प्रति आत्मनिवेदन का क्रम आरंभ हुआ तब तो काव्य स्पष्टतः धार्मिक घेरे में आ गया। यहाँ मेरा मतलब उन विनय-गीतों से है जिनका कृष्णकाव्य में भी प्राचुर्य है और जिनसे तुलसीदास जी की 'विनयपत्रिका' भरी हुई है। इस प्रकार के काव्य में प्रकृत रहस्यात्मक अनुभूतियों की टोह लगाना व्यर्थ श्रम है। मूर्त प्रतीकों में अलौकिक अमूर्त तत्त्व का साक्षात्कार कराने वाली समुन्नत रहस्य-कला उसमें हम नहीं पाते। यदि हममें पर्याप्त काव्य-भावना का विकास होता तो उन्हें उन्नत रहस्यकाव्य कहना हमने कभी का छोड़ दिया होता। धार्मिक काव्य की दृष्टि से उनका आदर सदैव रहेगा, किंतु प्रकृत काव्य की दृष्टि से नहीं।

मेरा यह आशय नहीं है कि महादेवी जी ने 'मधुरतम व्यक्तित्व' की सृष्टि करके रहस्य की इतिश्री कर दी है और न मैं यही कह रहा हूँ कि उसके प्रति उनका आत्मनिवेदन भी धार्मिक कवियों के ही ढंग का है। प्रचुर कल्पना-गुण के कारण महादेवी जी ने रहस्यात्मकता कभी खोई नहीं किंतु उनकी रचनाओं में भक्तों और निर्गुणियों की रूढ़ि भी कम नहीं मिलती। इसे हम आगे चलकर देखेंगे। इसका मुख्य कारण मधुरतम व्यक्तित्व की नियोजना और आत्मनिवेदन की परंपरागत प्रेरणा ही है। किंतु महादेवी जी के पास फिर से लौटने के पहले हम रहस्यवाद की शेष दोनों श्रेणियों को भी थोड़े में देख लें।

सगुण निराकार शैली सूफ़ियों की है। सच पूछिए तो परोक्ष रहस्यकाव्य का सच्चा स्वरूप हमें इन्हीं में मिलता है। प्राकृतिक प्रेम-प्रतीकों के भीतर परोक्ष प्रेम-सत्ता का इतना प्रगाढ़ धाराबद्ध प्रवेश और पुनः-पुनः उस अव्यक्त का नैसर्गिक आवाहन और आलेख हम अन्यत्र कहाँ पाते हैं? अवश्य, जहाँ यह प्रेम कथानक का रूप धारण करता है, वहाँ वही कठिनाई सूफ़ियों के सामने भी आती है जो वैष्णव साकारोपासकों के सामने आई है। यहाँ सूफ़ियों ने कथा को सैद्धांतिक दृष्टि से रूपक मात्र घोषित किया है किंतु इससे समस्या सुलझ नहीं पाई। फलतः सूफ़ी आख्यानक काव्यों में रूपक की चिंता न कर, सारी वर्णना के भीतर अति मोहक प्राकृतिक सौंदर्य-तल्लीनता, प्रेम के प्रति परिपूर्ण आत्मविसर्जन और फिर भी उसकी दुष्प्राप्ति का संकट दिखाकर अव्यक्त

प्रेम-रहस्य का इंगित किया गया है। इन कथानकों को रहस्यकाव्य कहने में फिर भी संकोच रह ही जाता है। यह स्पष्ट ही इसलिए कि कथा के सूत्र साद्यंत रहस्य की रक्षा नहीं कर सकते और यदि उन्हें रूपक मान लें तो सहज काव्य-सौंदर्य की हानि हो जाती है। इसीलिए कथानकों वाले जायसी आदि कवियों को रूपक के स्वरूप की चिंता न कर सारे काव्य को, चाहे वह माया-रूपिणी नागमती अथवा विद्यारूपिणी पद्मावती का प्रसंग हो, आत्मविसर्जन-कारी अलौकिक प्रेम-पीर से आप्लुत कर देना पड़ा है। फिर भी कथा का चक्र स्थान-स्थान पर बाधक बन ही गया है।

कुछ समीक्षक इसी निराकार प्रेमव्यंजना के भीतर, व्रज में विहरण करने वाली, गिरिधर-मूर्ति की उपासिका, चिरंतन प्रेम और चिर-विरहमयी मीरा के काव्य को भी शुमार करते हैं किंतु ऐसा करने का हमें कोई प्रत्यक्ष कारण नहीं दीखता। जिन्होंने सूरदास जी के 'गोपीविलाप' और 'भ्रमरगीत' का अध्ययन किया है उन्हें मीरा को किसी निराकार कृष्ण की उपासिका बना देने की आवश्यकता नहीं प्रतीत होगी। अवश्य मीरा एक नारी थीं और गिरिधर के प्रति उनका प्रियतम भाव था किंतु ऐसा ही भाव गोपियों का भी था जो निराकार की उपासिका नहीं थीं। स्वप्न में प्रियतम के दर्शन आदि के उल्लेख गोपियों के विरह-वर्णन में भी मिलते हैं और मीरा में भी। महा-देवी जी और मीरा दार्शनिक दृष्टि से एक ही परंपरा की अनुयायिनी प्रतीत होती हैं।

निर्गुण निराकार ही आध्यात्मिक दार्शनिकता की चरम कोटि है। एक अखंड, अव्यय चेतन तत्त्व जिसमें त्रिकाल में भी कोई भेद किसी प्रकार सम्भव नहीं, जिस चिर स्थिर आत्मतत्व के अविचल गौरव में संसार की उच्चतम अनुभूतियाँ भी मरीचिका-सी प्रतीति होती हैं, वह परिपूर्ण आह्लाद जिसमें स्मित-तरंगों के लिए कोई अवकाश नहीं, रहस्यवाद का सर्वोच्च निरूप्य है। इसके ओजस्वी निरूपण उपनिषदों के जैसे और कहीं नहीं मिलते। आगे चलकर इसकी महामहिमा का क्षय होने लगा, इसमें विरह के कमजोर अंग जुड़ने लगे और क्रमशः यह वैराग्यमूलक करुण साधनाओं का अधिष्ठान बना दिया गया। काव्य में जब तक इसका केवल सांकेतिक स्वरूप रहा तब तक यह अधिक विकृत नहीं हुआ था (उदाहरणार्थ आरम्भिक बौद्ध-साहित्य में) किंतु जब इसमें सांप्रदायिक शब्दावली प्रवेश करने लगी और इडा-पिंगला आदि की चर्चा बढ़ गई तब काव्यदृष्टि से इसका ह्रास होने लगा। कबीर की चमत्कार-पूर्ण प्रतिभा और अन्तर्दृष्टि के फलस्वरूप एक बार फिर यह अवर

तत्त्व प्रकाश में आया किन्तु इस बार यह उतना ओजस्वी और महिमामय नहीं था। कारण, इस बार प्रतिस्पर्द्धिनी माया भी दलबल सहित उपस्थित थी। कबीर से आगे बढ़ने पर माया रानी की छाया भी काव्य में ज़ोर पकड़ने लगी और क्रमशः अक्षर की सत्ता असंख्यक्षरों की अन्तिम सीमा पर जा पहुँची। जहाँ आरम्भ में भेदों की अस्वीकृति इष्ट थी वहाँ अन्त में भेदों का प्राबल्य ही प्रमुख बन गया। ऐसी अवस्था में निश्चल अध्यात्मसत्ता अपने पूर्व गौरव में कैसे स्थिर रहती ?

ऊपर मैं प्रसंगवश कह चुका हूँ कि महादेवी जी के काव्य में छायावाद-युग की विशेषताएँ नहीं मिलतीं। प्राकृतिक सौंदर्य के प्रति 'पल्लव' वाले पंतजी का (इस प्रयोग के लिए क्षमा चाहता हूँ) सा विमोहक आकर्षण उनमें नहीं, इसके बदले वे प्रकृति के एक-एक रूप या उसकी एक-एक वृत्ति को साकार व्यक्तित्व देकर उनके व्यापारों की कल्पना करती हैं जिनमें उनकी समृद्ध कल्पना-शीलता प्रकट हुई है। अवश्य यह कल्पना-बाहुल्य ही छायावाद-युग की एक विशेषता उनके काव्य में दीखती है। किंतु वे कल्पनाएँ सब जगह सीधी और चोट करने वाली नहीं हैं, उनका प्रत्यक्ष रूप सहज आँखों के सामने नहीं आता। कहीं-कहीं तो उन प्रतीकों का वह कल्पित व्यापार हमारे सौंदर्य-संस्कारों के प्रतिकूल पड़ जाता है और कहीं-कहीं वह इतना क्लिष्ट होता है कि हम ईप्सित सौंदर्य की झाँकी नहीं पा सकते। इन दोनों का एक-एक उदाहरण मैं देना चाहता हूँ—

रजनी ओढ़े जाती थी, झिलमिल तारों की जाली।
उसके बिखरे वैभव पर, जब रोती थी उजियाली॥

यह प्रभात का दृश्य है। रजनी का झिलमिल तारों की जाली ओढ़कर जाना, बड़ी ही सरल और मार्मिक कल्पना है। किंतु उजियाली का रोना हम साधारणतः कहीं नहीं देखते ? वह प्रायः हँसती ही आती है। यहाँ हमें अपनी अभ्यस्त अनुभूतियों को दबाकर यह कल्पना करनी पड़ती है कि प्रभातकाल की नमी, अथवा ओस—आँसू के रूप में उजियाली रो रही है।

क्लिष्ट कल्पना का एक उदाहरण मैंने यह चुना है—

निःश्वासों का नीड़ निशा का बन जाता जब शयनागार।
लुट जाते अभिराम छिन्न मुक्तावलियों के वंदनवार॥
तब बुझते तारों के नीरव नयनों का यह हाहाकार!
आँसु से लिख-लिख जाता है कितना अस्थिर है संसार॥

आकाश में रात्रि के समय अचानक बादल छा गये हैं और पानी बरसने

लगा है। इसी अवस्था की कल्पना यह जान पड़ती है। अथवा यह रात्र्यंत की कल्पना है। रात्रि के मुक्तावलियों के अभिराम वंदनवार (तारिकापंक्ति), छिन्न होकर लुट गये हैं। निःश्वासों का नीड़ उसका शयनागार बन गया है (इसका इतना ही अर्थ मेरी समझ में आ पाता है कि रात्रि दुःखपूर्ण निःश्वास ले रही है)। तारे बुझ रहे हैं, बूँदें गिरने लगी हैं, वही मानों बुझते तारों के नीरव नयनों का हाहाकार और उसके आँसू हैं जिनके द्वारा यह लिखा जा रहा है; 'संसार कितना अस्थिर है!' कितनी कल्पना हमें ऊपर से करनी पड़ती है, कृपया विचार कीजिए? और अब भी मुझे निश्चय नहीं कि मेरा अर्थ ठीक ही है।

जिस क्षण को महादेवी जी की कल्पना ने पकड़ा है—तारों से हँसते हुए आकाश में सहसा मलिन बादलों का छा जाना, अथवा निशान्त में तारों का डूबना, वह काव्योपयुक्त और अति सुन्दर है, किन्तु क्या यही बात उनके इस चित्रण के सम्बन्ध में कही जा सकती है?

इसके दो कारण मुझे दीखते हैं। एक तो यह कि महादेवी जी की कविताएँ इतनी अन्तर्मुख हैं कि वे प्रकृति के प्रत्यक्ष स्पंदनों, उनकी ध्वनियों और संकेतों से सुपरिचित नहीं; और दूसरा यह कि वे काव्य के एक-एक बन्द को एक-एक चित्र के रूप में सजाना चाहती हैं, जिसमें वस्तुओं और व्यापारों की योजना संश्लिष्ट हुआ करती हैं। और चूँकि वे मानसिक वृत्तियों और वातावरणों को भी उन्हीं वस्तु व्यापारों के द्वारा ध्वनित करना चाहती हैं, इसलिए यह कार्य उनके लिए दुःसाध्य हो जाता है। उनके इन दीर्घ चित्रणों की तुलना अन्य प्रमुख छायावादियों से कीजिए तो अन्तर आप दीखेगा—

देख वसुधा का यौवन-भार. गूँज उठता है जब मधुमास।
विधुर उर के-से मृदु-उद्गार, कुसुम जब खुल पड़ते सोच्छ्वास।
न जाने सौरभ के मिस कौन संदेशा मुझे भेजता मौन!

—सुमित्रानंदन पंत ('मौननिमन्त्रण')

अथवा—

पवन में छिपकर तुम प्रतिपल, पल्लवों में भर मृदुल हिलोर।
चूम कलियों के मुद्रित दल, पत्र-छिद्रों में गा निशि-भोर॥
विश्व के अन्तस्तल में चाह, जगा देती हो तड़ित-प्रवाह॥

—निराला ('स्मृति')

अवश्य ये चित्र अधिक हलके और अलंकृत हैं, इनमें सूक्ष्मतर रूप-

योजना और भावव्यंजना की वह महत्त्वाकांक्षा भी नहीं है, यह हम स्वीकार करेंगे, किन्तु तब हम महादेवी जी से कहेंगे कि वे अपनी उच्चतर कला-आकांक्षा के उपयुक्त सामग्री का भी संचय करें। यह कहना भी उचित न होगा कि जिस सूक्ष्मतर भावभूमि के चित्र महादेवी जी देती हैं उसमें अस्पष्टता अनिवार्य है। अस्पष्टता काव्य का कोई गुण नहीं है, यह चित्रण की दुर्बलता ही है। अस्पष्ट, छाया-भावों का चित्रण भी सुस्पष्ट मोती के पानी जैसा भीतर से दमकता और नैसर्गिक होना चाहिए। काव्य की विशेषता तो इसी में है।

महादेवी जी ने भी जहाँ अलंकृत चित्रांकण छोड़कर सीधा रास्ता पकड़ा है, वहाँ बड़ी सजीव कविता का स्रोत बह चला है—

स्वर्ग का था नीरव उछ्वास, देव-वीणा का टूटा तार।
मृत्यु का क्षणभंगुर उपहार, रत्न वह प्राणों का शृङ्गार॥
नई आशाओं का उपवन, मधुर वह था मेरा जीवन।

और जहाँ वे कल्पना के अर्द्धस्फुट या दुरूह उपमानों को छोड़कर इसी सरलता के साथ रूपांकण भी करने लगी हैं (यद्यपि ऐसे स्थल बहुत थोड़े हैं) वहाँ उनके चित्र खूब साफ़ आये हैं; जैसे—

जाग-जाग सुकेशिनी री,
अनिल ने आ मृदुल हौले शिथिल वेणी-बंध खोले;
पर न तेरे पलक डोले। बिखरती अलकें झरे जाते
सुमन वर-वेषिनी री।
छाँह में अस्तित्व खोये, अश्रु से सब रंग धोये।
मंदप्रभ दीपक सँजोये, पंथ किस का देखती तू,
अलस स्वप्न निवेशिनी री!

पाठक देखेंगे कि यह सौन्दर्य-चित्रण आध्यात्मिक रहस्य-मुद्राओं से परिपूर्ण है, इसे छायावाद की परम्परा में हम नहीं ले सकते। इनमें एक विलक्षण उदासीनता, सात्त्विकता, शान्ति और निश्चलता झलकती है। छायावाद की चेतनता, चाञ्चल्य और चटक इनमें नहीं। महादेवी जी के काव्य की यह एक सार्वत्रिक विशेषता है।

किन्तु महादेवी जी की अधिकांश रचनाओं में ऊपर के-से भाव-सङ्केतक रूप-चित्र नहीं मिलते, भावों का चित्रण ही प्रधानतः मिलता है। मेरी अपनी दृष्टि से रूपचित्रण की सहायता बिना रहस्यवाद की काव्य-कला का पूर्ण प्रस्फुटन नहीं हो सकता। जो स्वयं अदृश्य वस्तु है उसे अस्फुट उपमानों से

व्यक्त करना, पाठकों को काव्य-रस से अंशतः वञ्चित ही रखना है। जैसे 'बेसुध पीड़ा' के सम्बन्ध में ये पंक्तियाँ—

इसमें अतीत सुलझता अपने आँसू की लड़ियाँ
इसमें असीम गिनता है वे मधुमासों की घड़ियाँ

किन्तु इनकी गणना कहाँ तक की जाय, यह महादेवी जी की प्रधान काव्य-शैली ही है। तो भी इसके अन्दर कुछ उच्च कोटि की रचनाएँ भी उन्होंने की हैं। जहाँ व्यक्त रूप किसी न किसी प्रकार आ गये हैं वहाँ रचना प्रायः सुन्दर हुई है—

किसी नक्षत्र-लोक से टूट,
विश्व के शतदल पर अज्ञात।
ढुलक जो पड़ी ओस की बूँद,
तरल मोती-सा ले मृदु गात—
नाम से जीवन से अनजान,
कहो क्या परिचय दे नादान!

अथवा—

स्मित तुम्हारी से छलक यह ज्योत्स्ना अम्लान,
जान कब पाई हुआ उसका कहाँ निर्माण!
अचल पलकों में जड़ी-सी तारिकाएँ दीन,
ढूँढतीं अपना पता विस्मित निमेषविहीन।
... ...
कौन तुम मेरे हृदय में?
कौन मेरी कसक में नित मधुरता भरता अलक्षित?
कौन प्यासे लोचनों में घुमड़ घिर झरता अपरिचित?
अनुसरण निःश्वास मेरे कर रहे किसका निरन्तर?
चूमने पद-चिह्न किसके लौटते यह श्वास फिर-फिर?

यह पिछला पद प्रसाद जी के 'कौन हो तुम इसी भूले हृदय की चिर खोज?' का स्मरण दिलाता है, यद्यपि महादेवी जी और प्रसाद जी की रहस्यभावना में यह सुस्पष्ट अन्तर है कि महादेवी जी का झुकाव सदैव करुणा और भक्ति की ओर रहता है जब कि प्रसाद जी प्रायः तादात्म्य (वही तू है) का सङ्केत करते हैं।

'मत अरुण घूँघट खोल री' और 'शृङ्गार कर ले री सजनि' रहस्यात्मक रूप-विन्यास के सुन्दर उदाहरण हैं।

'सान्ध्यगीत' में दार्शनिक एकाग्रता उच्चतर हो उठी है, किन्तु काव्य-उपादान उतनी ही मात्रा में समृद्ध नहीं हो पाया। इसीलिए सम्भवतः इन गीतों की रहस्यभावना ही प्रधान स्थान पा गई है, उपयुक्त रूपयोजना उन्हें नहीं मिल सकी। भावना का वैसा ही विकास होते हुए भी 'सांध्यगीत' में और महाकवि रवीन्द्र की 'गीताञ्जलि' में दो मुख्य अन्तर हैं। उनकी अजेय काव्यशक्ति कभी उनकी भावना का साथ नहीं छोड़ती। भावना की दौड़ में पिछड़ जाने पर ही काव्य को—

पंकज कली, पंकज कली
क्या तिमिर कह जाता करुण,
क्या मधुर दे जाती किरण !

जैसी अन्योक्ति पद्धति पकड़नी पड़ती है। यद्यपि यह अन्योक्ति ऊँचे दर्जे की है, किन्तु अन्योक्ति कितने ही ऊँचे दर्जे की हो, उसकी काव्य से भिन्न बौद्धिकता बिना खटके नहीं रह सकती। दूसही बात यह है कि रवि बाबू की रचनाओं में कल्पना की जो एकतानता, जो प्रसार, जो अटूट शृङ्खला मिलती है वह इन गीतों में उतनी नहीं। तो भी छोटे-छोटे टुकड़ों में अपने ढंग की सफ़ाई और काफ़ी काम महादेवी जी के बहुत से गीतों में मिलता है।

प्रसाद के 'आँसू', निराला की 'स्मृति' जैसी उदात्त और एकतान कल्पना तथा 'पल्लव' का-सा सौंदर्योन्मेष महादेवी जी में नहीं है, किन्तु वेदना का विन्यास, उसकी वस्तुमत्ता ('आब्जेक्टिविटी') का बहुरूप और विवरण पूर्ण चित्रण, जितना महादेवी जी ने दिया है, उतना वे तीनों कवि नहीं दे सके हैं।

'सांध्यगीत' की पहली ही कविता में सांध्य-गगन और जीवन का बिंब-प्रतिबिंब स्वरूप महादेवी जी के काव्य में चित्रांकण-कला का एक सफल उदाहरण है, भले ही प्रकृत भावोच्छ्वास का प्रवेश उसमें न हो।

मैंने ऊपर कहा है कि छायावाद काव्य के व्यक्त प्रकृति के सौन्दर्य-प्रतीकों को न लेकर महादेवी जी ने उन प्रतीकों की अव्यक्त गतियों और छायाओं का संग्रह किया है। इससे उनकी रचनाओं में वेदना की विवृत्ति और रहस्यात्मकता बढ़ गई है किन्तु वे स्थल कहीं-कहीं अधिक दुरूह भी हो गये हैं। उदाहरण के लिए यह रचना लीजिए—

उच्छ्वासों की छाया में, पीड़ा के आलिंगन में,
नि:श्वासों के रोदन में, इच्छाओं के चुम्बन में,
उन थकी हुई सोती-सी, उजियाली की पलकों में,

बिखरी उलझी हिलती-सी मलयानिल की अलकों में,
सूने मानस-मन्दिर में, सपनों की मुग्ध हँसी में,
आशा के आवाहन में, बीते की चित्रपटी में,
रजनी के अभिसारों में, नक्षत्रों के पहरों में,
ऊषा के उपहासों में, मुस्काती-सी लहरों में,
जो बिखर पड़े निर्जन में निर्भर सपनों के मोती,
मैं ढूँढ़ रही थी लेकर धुँधली जीवन की ज्योती।

लाक्षणिकता उसी हद तक काव्य में काम दे सकती है जिस हद तक वह उसके धारावाही सौन्दर्य में रोड़े न अटकाये। महादेवी जी के काव्य की जो भूमि है उसी भूमि की रचनाएँ कतिपय छायावादी कवियों की भी मिलती है, किन्तु उसकी व्यंजना व्यक्त सौंदर्य-प्रतीकों के और सीधी लाक्षणिकता के आधार पर होने के कारण स्पष्टतर हुई है। उदाहरणार्थ हम निराला जी की ख्यातिप्राप्त रचना 'तुम तुंग हिमालय-शृंग और मैं चञ्चल गति सुरसरिता' को लें तो दोनों का अन्तर साफ दिखाई देगा। हमारे कहने का मतलब यह नहीं कि महादेवी जी के ऐसे प्रयोग सर्वत्र दुरूह हो गये हैं, कहीं-कहीं वे अतिशय मार्मिक हैं। जैसे—

उन हीरक के तारों को कर चूर बनाया प्याला।
पीड़ा का सार मिलाकर प्राणों का आसव डाला।
मलयानिल के झोकों में अपना उपहार लपेटे।
मैं सूने तट पर आई बिखरे उद्गार समेटे।
काले रजनी अञ्चल में लिपटी लहरें सोती थीं।
मधुमानस की बरसाती वारिदमाला रोती थीं।

ये पंक्तियाँ हमें प्रसाद जी के 'आँसू' की सुन्दर कड़ियों की याद दिलाती हैं। अवश्य प्रसाद जी में सौंदर्य-संवेदन के दोनों स्वरूप 'आनंद' और 'वेदना' का एक सा प्रसार मिलता है किन्तु महादेवी जी में उसके पिछले अंश की ही प्रधानता है।

अपनी इस एकपक्षिता के दो कारण महादेवी जी ने बताये हैं जो इस प्रकार हैं—'जीवन में मुझे बहुत दुलार, बहुत आदर और बहुत मात्रा में सब कुछ मिला है, उस पर पार्थिव दुःख की छाया नहीं पड़ी। कदाचित यह उसी की प्रतिक्रिया है कि वेदना मुझे इतनी मधुर लगने लगी है।' इसके अतिरिक्त 'बचपन से ही भगवान् बुद्ध के प्रति एक भक्तिमय अनुराग होने के कारण उनकी संसार को दुःखात्मक समझने वाली फिलासफी से मेरा अस-

मय ही परिचय हो गया था।' इस दुःख के स्वरूप को और अधिक स्पष्ट करती हुई वे लिखती हैं—'दुःख मेरे निकट जीवन का ऐसा काव्य है जो सारे संसार को एक सूत्र में बाँधे रखने की क्षमता रखता है। हमारे असंख्य सुख हमें चाहे मनुष्यता की पहली सीढ़ी तक भी न पहुँचा सकें किन्तु हमारा एक बूँद आँसू भी जीवन को अधिक मधुर, अधिक उर्वर बनाये बिना नहीं गिर सकता।'

इस स्पष्टीकरण में महादेवी जी ने सुख और दुःख के स्वरूप को अस्पष्ट ही रख छोड़ा है। उन्होंने दुःख के आध्यात्मिक स्वरूप और सुख के भौतिक स्वरूप सामने रखकर विचार किया है। किन्तु इसके विपरीत सुख का एक आध्यात्मिक और दुःख का भौतिक स्वरूप भी है जिसकी ओर उनकी दृष्टि नहीं गई। दुःख की तामसिक, राजसिक और सात्विक तीनों अभिव्यक्तियाँ हो सकती हैं, उसी प्रकार सुख की भी। यह सब कुछ उस संवेदन पर अवलम्बित है जिससे सुख और दुःख का निःसरण होता है। महात्मा बुद्ध ने दुःखवाद को आध्यात्मिक अर्थ में लिया है, उसी प्रकार भारतीय दर्शनों ने 'आनंद' का आध्यात्मीकरण कर लिया है। इसलिये भौतिक आधार पर सुख और दुःख का जो व्यतिरेक (या 'क़ंट्रास्ट') महादेवी जी ने ऊपर दिखाया है, उसे मैं उनकी व्यक्तिगत सात्त्विकता का परिणाम मान सकता हूँ। उसे दार्शनिक सत्य या काव्य की कसौटी मानने के लिए मैं तैयार नहीं हूँ।

यह स्त्रियोचित सात्त्विकता भी महादेवी जी के काव्य की सार्वत्रिक विशेषता हैं। इससे उनके काव्य को एक सुन्दर क्रान्ति मिली है; यद्यपि कहीं-कहीं अति सरलता, सौन्दर्य स्पर्श से वंचित भी रह गई है। जैसा कि मैं ऊपर कह चुका हूँ, महादेवी जी की वेदना पहले व्यक्तिगत भावुकता अथवा रूढ़ि भक्तिभावना के रूप में रही है जो क्रमशः निखरती गई है। अब मैं इनके एक एक उदाहरण दूँगा—

भावुकता का स्वरूप निम्नांकित 'फैंसी' में प्रकट हुआ—

चाहता है यह पागल प्यार, अनोखा एक नया संसार।
कलियों के उच्छ्वास शून्य में ताने एक वितान,
तुहिन-कणों पर मृदु कंपन से सेज बिछा दें गान—
जहाँ सपने हों पहरेदार, अनोखा एक नया संसार।

रूढ़िगत भक्ति भावना मुझे वहाँ दीखती है जहाँ महादेवी जी ने रहस्यमय आध्यात्मिक सत्ता को स्थूल उपास्य का रूप दे दिया है अथवा जहाँ

प्राकृतिक सौंदर्य का, जिसमें कवि-हृदय बिना मुग्ध हुए नहीं रहता, स्थान-स्थान पर प्रतिषेध किया है।

निराली कलकल में अभिराम, मिलाकर मोहक मादक गान।
छलकती लहरों में उद्दाम, छिपा अपना अस्फुट आह्वान।
न कर हे निर्झर भङ्ग समाधि, साधना है मेरा एकान्त।

किन्तु नीचे के पद्य में रूढ़िरहित आध्यात्मक निरूपण है :—

छाया की आँख-मिचौनी, मेघों का मतवालापन,
रजनी के श्याम कपोलों पर ढरकीले श्रम के कन।
फूलों की मीठी चितवन, नभ की यह दीपावलियाँ,
पीले मुख पर संध्या के वे किरणों की फुलझड़ियाँ।
विधु की चाँदी की थाली मादक मकरन्द भरी-सी,
जिसमें उजियाली रातें लुटतीं घुलती मिसरी-सी।
भिक्षुक से फिर जाओगे जब लेकर यह अपना धन,
करुणामय तब समझोगे, इन प्राणों का मँहगापन।

'न थे जब परिवर्तन दिन-रात, नहीं आलोक तिमिर थे ज्ञात' से आरम्भ होने वाला पूरा गीत भी रूढ़ पद्धति पर बना है। किन्तु आगे चल कर जहाँ वेदना तप कर निखर उठी है, वहाँ रूढ़ि का लेश भी नहीं दीखता और काव्य ऊँचे धरातल पर आ पहुँचा है। यहाँ वेदना खूब सशक्त संवेदन की छटा लेकर आती है—

देव, अब वरदान कैसा?
वेध दो मेरा हृदय माला बनूँ प्रतिकूल क्या है।
मैं तुम्हें पहचान लूँ इस कूल तो उस कूल क्या है!
छीन सब मीठे क्षणों को इन अथक अन्वेषणों को।
आज लघुता ले मुझे दोगे निठुर प्रतिदान कैसा?
जन्म से यह साथ हैं मैंने इन्हीं का प्यार जाना।
स्वजन ही समझा दृगों के अश्रु को पानी न माना!
इन्द्र-धनु से नित सजी-सी, विद्यु हीरक से जड़ी सी।
मैं भरी बदली रहूँ चिर मुक्ति का सम्मान कैसा?

इस अवस्था की अनुभूतियों का वैविध्य और काव्य की मनोहारिता महादेवी जी में ऊँची श्रेणी की है। कोई भी छायावादी इतने अटल भाव से इस भूमि में स्थिर नहीं रह सका। इस भूमि की प्रदीप्त अनुभूतियों का ऐसा संकलन नवीन युग का कोई हिन्दी कवि नहीं कर सका है। तो भी हम

कहेंगे कि महादेवी जी का काव्य व्यक्तिगत दुःख को सब जगह आध्यात्मिक ऊँचाई तक नहीं ले जा सका है ।

महादेवी जी जिस नये क्षेत्र में जिस नवीन ढङ्ग से काम कर रही हैं, इससे उनकी कठिनाइयों का अनुमान हम कर सकते हैं । एक तो परोक्ष स्तर की निगूढ़ अनुभूतियों का संग्रह फिर उसका परिष्करण और उन्हें उपयुक्त व्यंजना देना, तीनों ही आयास-साध्य हैं । फिर महादेवी जी अपनी व्यंजना शैली में भी एक नवीनता रखती हैं । ऐसी अवस्था में हमें आश्चर्य नहीं होता कि भाषा, तुकों और छन्दों के विन्यास की ओर वे पर्याप्त सतर्क नहीं हो सकीं । महादेवी जी की भाषा में हमें समृद्ध छायावादी चमत्कृति नहीं मिलती । तुकों के सम्बन्ध में भी काफी शिथिलता दीखती है, छन्दों और गीतों में भी एकरूपता अधिक है । भावों को काव्याभिव्यंजना देन के सिल-सिले में कहीं-कहीं सुन्दर कल्पनाओं के साथ ढीले प्रयोग एक पंक्ति के बाद दूसरी ही पंक्ति में मिल जाते हैं—

जिन नयनों की विपुल नीलिमा में मिलता नभ का आभास ।
जिस मानस में डूब गये कितनी करुणा कितने तूफान ।
जिन अधरों की मन्द हँसी थी नव अरुणोदय का उपमान ।
किया देव ने जिन प्राणों का केवल सुषमा से निर्माण ।
ओठों की हँसती पीड़ा में आहों के बिखरे त्यागों में ।
जो तुम आ जाते एक बार
कितनी करुणा, कितने सँदेश पथ में बिछ जाते बन पराग ।

इन उद्धरणों की पहली पंक्तियाँ जितनी सुन्दर और काव्योपयुक्त हुई हैं, उतने ही प्रत्येक दूसरी पंक्ति के चिह्नित प्रयोग चिंत्य हो गये हैं । कई पंक्तियाँ शुष्क गद्य-सी प्रतीत होती हैं—

मैं मदिरा तू उसका खुमार ।
मैं छाया तू उसका आधार ।

चल चितवन के दूत सुना उनके पल में रहस्य की बात ।
मेरे निर्निमेष पलकों में मचा गये क्या-क्या उत्पात ।
गये तब से कितने युग बीत, हुए कितने दीपक निर्वाण ।
नहीं पर मैंने पाया सीख, तुम्हारा-सा मनमोहन गान ॥

नीचे लिखी पंक्ति ध्वनि-शैथिल्य का एक उदाहरण है—

शिथिल मधु-पवन गिन-गिन मधुकण,
हरसिंगार झरते हैं झर-झर ।

'तुम बिन,' 'उन बिन,' जैसे प्रयोग अधिक नहीं अखरते और 'पथ बिन अन्त' भी चल जाता है। 'मैं न जानी,' 'मैं प्रिय पहचानी नहीं' जैसे व्याकरण असम्मत प्रयोग भी अप्रिय नहीं लगते। तो भी कहना पड़ता है कि महादेवी जी की रहस्यानुभूति जितनी समृद्ध है, उनकी काव्य-प्रतिभा उतनी ही उत्कृष्ट नहीं और भाषा शक्ति भी सीमित है। किन्तु अभी महादेवी जी जी निरन्तर विकास के मार्ग पर बढ़ रही है, वे किस दिशा में कितना बढ़ेंगी यह अब तक अज्ञात है। इसलिए उनकी किसी भी विशेषता पर अन्तिम मुहर अभी नहीं लगाई जा सकती।

अब यहाँ मुझे उन मतदाताओं के समाधान में कुछ अन्तिम शब्द कहने होंगे जो महादेवी जी की अनुभूतियों पर काल्पनिकता का आरोप करते हैं। उनकी समझ में नहीं आता कि किस जगत् की बातें वे कर रही हैं और उनसे हमारा क्या सम्बन्ध हो सकता है। इन्हीं में से वे कुछ लोग भी हैं जो आधुनिक कोलाहल में व्यस्त होने के कारण या तो महादेवी जी के काव्य-जगत् में पहुँच ही नहीं पाते, अथवा दो-चार चीजों की बानगी लेकर, शेष सब एकरूप ही हैं, कहने की जल्दबाजी करते हैं। इन सब को मेरा उत्तर यह है कि महादेवी जी के काव्य का आधार उसी अर्थ में काल्पनिक कहा जा सकता है जिस अर्थ में कबीर और मीरा का काव्याधार काल्पनिक है, जिस अर्थ में 'गीतांजलि' और 'आँसू' काल्पनिक हैं। जो महादेवी का अध्ययन नहीं कर सकते वे इन कवियों का भी अध्ययन कैसे कर सकते हैं, अथवा इनको भी एकरूप क्यों नहीं ठहरा सकते! यहाँ मैं उन महानुभावों का शुमार नहीं कर रहा जिनकी राय में रहस्यवाद किसी प्राचीन वर्बर युग की स्मृति है, मनुष्य की अविकसित बाल्यभावना की सृष्टि है और जो वैज्ञानिक विकास-सिद्धान्त से बहुत दूर की चीज हो गई है। ऐसे लोग तो काव्याध्ययन के अधिकारी भी हैं, मैं नहीं मानता।

ऊपर मैंने प्रसंगवश 'मीरा' का नाम ले लिया है। साथ ही कुछ अन्य अन्य कवियों के नाम भी आये हैं जिनसे महादेवी जी की तुलना करने का मेरा मन्तव्य नहीं रहा, केवल काव्य की आधारभूमि मिलती-जुलती दिखानी थी। फिर भी अक्सर लोगों का आग्रह रहा है कि मीरा और महादेवी के काव्य की तुलना के सम्बन्ध में कुछ कहूँ। मेरा कहना यह है कि मीरा और महादेवी के काव्य का आधार बहुत अंशों में एक-सा है किंतु ये दोनों दो युगों की सृष्टियाँ हैं। अपने-अपने युगों के अनुरूप ही इन दोनों का काव्य-व्यक्तित्व है। मीरा का काव्य नैसर्गिक भावोद्रेक का नमूना है। वह

अलौकिक प्रेम और विरह से भीगे हुए हृदय का उद्गार है। इसमें काव्य-कला की बारीकियाँ हमें नहीं मिलतीं, मूर्तिमान विरह की तड़प और मिलन के स्पंदन सुन पड़ते हैं। प्रकृति और कल्पना की सहायता से भावों का चित्रण वे नहीं करने बैठीं। मध्ययुग के सभी समुन्नत कवियों की यह अप्रतिम नैसर्गिकता उनकी अपनी चीज है। उस तरह की चीज आज इस बौद्धिक विकास के युग में ढूँढ़ना दोनों युगों का अपमान करना है। महादेवी जी में भी अनुभूति की सच्चाई है औरगहराई है किन्तु वे काव्यकला में सजकर आई हैं। मीरा अपने प्रियतम की खोज में राजमहल छोड़कर निकल आई थीं और उन्हें गृह-वन पुकारती फिरती थीं। उनका काव्य पुकार साकार है। महादेवी जी की ध्वनि अधिक धीमी और अधिक सभ्य होनी समुचित ही है।

विशुद्ध काव्यदृष्टि से महादेवी मीरा की ऊँचाई पर कम ही पहुँचती हैं। काव्यकला से सज्जित होने पर भी उनकी कविता में तीव्र नैसर्गिक उन्मेष नहीं, साथ ही उनमें एकाङ्गिता भी है। उक्त भावनाशिशु के लिए मुक्त आकाश में पक्षी की भाँति उड़कर चराचर जगत् की जो सौंदर्य-सामग्री, जो सहज आस्वाद्य फल, कविगण प्रस्तुत किया करते हैं, महादेवी जी में उसकी कमी है। भावना-शिशु का प्यार उन्हें अपना नीड़ छोड़ने नहीं देता। फलतः उनके काव्य में प्राकृतिक उपमानों का वैविध्य नहीं है। उनकी कविता कुछ अंशों में कोरी भावना-निष्ठा से, जो व्यक्तिगत है, निजड़ित है। अपनी बात स्पष्ट करने के लिए मैं 'प्रसादजी' की दो पंक्तियाँ लेता हूँ। ये उनके 'चन्द्रगुप्त' नाटक में आई हैं, विषय है देश प्रेम का—

अरुण यह मधुमय देश हमारा,
जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।

× × ×

लघु सुरधनु से पंख पसारे, शीतल मलय समीर सहारे।
उड़ते खग जिस ओर मुँह किये, समझ नीड़ निज प्यारा।

कवि अपने मूल विषय को लेकर कितनी दूर चला गया है, व्यक्तिगत भाव के भार से कितना छूटा हुआ! पक्षियों का अनुकूल पवन के सहारे, छोटे-छोटे इन्द्रधनुषों के-से पंख पसारे, अपनी ईप्सित दिशा में नीड़ों की ओर उड़ना, और मेरा देश। (सुख, सौंदर्य और अपनेपन की व्यंजना) अनजान क्षितिज को कूल-किनारा मिलना—सहारा मिलना, और मेरा देश (आश्रय, दाक्षिण्य और औदार्य का भाव)! और साथ ही क्षितिज को किनारा मिलने

और पक्षियों के नीड़ की ओर उड़ने की मूर्तिमत्ता कितनी सहज, भव्य और हृदयग्राहिणी है। यह भावना तो है ही, किन्तु समुन्नत काव्य के वेष में। महादेवी जी की शक्ति भावना के विश्लेषण में है, प्राकृतिक रूपों और उपमानों द्वारा उसे व्यंजित करने में नहीं बाह्यनिरपेक्षता और अन्तरंगता जो महादेवीजी में एक सीमा तक बढ़ी हुई है, उसकी काव्यशक्ति को परिपूर्ण विकास नहीं दे रही है।

सभी उच्चकोटि के रहस्यवादी कवियों और स्वयं मीरा में भी भावना का प्राचुर्य उपयुक्त प्राकृतिक उपमाओं और कल्पनाओं के सहारे, काव्यात्मक परिच्छेद में व्यक्त हुआ है। बल्कि हृदय के सूक्ष्म की व्यंजना के लिए अन्य कवियों की अपेक्षा रहस्यवादी कवि को प्रकृति की—उसकी एक-एक भावभंगी, रूप रंग, गति अनुगति की—और भी महीन परख रखनी पड़ती है; अन्यथा उसका काम नहीं चल सकता।

मीरा का काव्य दिव्य प्रेम और विरह पर आश्रित है, जो एक ओर उसे सहज हृदयग्राही बनाता है और दूसरी ओर काव्य के विषय को विस्तीर्ण कर देता है। महादेवी के काव्य में वैराग्यभावना का प्राधान्य है। महात्मा बुद्ध की भाँति नहीं (बुद्धि की मूर्तियों में दुःख की मुद्रा नहीं मिलती) किन्तु बौद्ध-संन्यासियों और संन्यासिनियों सरीखी एक चिन्ता-मुद्रा, एक विरक्ति, एक तड़प, शान्ति के प्रति एक अशांति महादेवी जी की कविता में सब जगह देखी जा सकती है। किन्तु इस कारण उनकी कविता में एकरूपता 'मोनोटनी' नहीं आई है; जैसा कुछ लोग आरोप करते हैं। उनमें प्रचुर वैभिन्य है।

आशा है मैंने दोनों का अन्तर यथासंभव थोड़े में स्पष्ट कर दिया है।

अब मैं अन्त में यह कहूँगा कि आधुनिक कवियों में महादेवी जी का क्या स्थान है, इसका निर्णय करना अभी हमारे लिए असामयिक होगा। इस युगके अग्रगण्य कवियोंमें संभवत: उनका स्थान सुरक्षित रहेगा(केवल इसलिए नहीं कि भारत अध्यात्म-प्रधान देश है, बल्कि उनके काव्यगुणों के कारण) किन्तु उनमें उन्हें कौन-सा विशेष पद प्राप्त होगा यह तो समय ही बता सकता है। मैं कह चुका हूँ कि उनका विकास अभी बन्द नहीं हुआ है।

'यामा' का आलङ्कारिक सौन्दर्य

ओमप्रकाश

['महादेवी जी ने श्वासों के तार में अपने सपनों को गूँथकर वेदना-चर्चित बंदनवार बनाया है, जीवन के घट को दुःखरूपी जल से भरा है। उनके दोनों नेत्र झिलमिलाते हुए दो दीपक हैं। आँसू का तेल भरा जा रहा है। और सुधिरूपी बत्ती जलकर पद ध्वाने पर प्रकाश कर रही है।

अपने अलंकारों द्वारा श्रीमती वर्मा ने न जाने प्रकृति के कितने मनोहर चित्र खींचे हैं। उनके अधिकतर चित्रों में प्रकृति में करुणा-मूर्ति नारी का ही साधनामय स्वरूप दिखाई पड़ता है।']

महादेवी वर्मा के काव्य में कला का जो सौन्दर्य दृष्टिगोचर होता है उसकी समता के लिए खड़ीबोली में स्वर्गीय प्रसाद जी के काव्य-सौन्दर्य के अतिरिक्त कोई दूसरा नहीं दिखाई पड़ता। श्रीमती वर्मा का काव्य मुक्तक है जिसमें, सौन्दर्य ही प्रधान उद्देश्य होता है। और प्रसाद जी का झुकाव भी मुक्तक काव्य की ओर है; अतः प्रबन्ध कल्पना में अपनी प्रतिभा को व्यय न करके दोनों ने सौन्दर्य सृष्टि में अधिक सफलता प्राप्त की है। काव्य-सौंदर्य में प्रथम अवयव छंद, दूसरा भाषा तथा तीसरा अलंकार होता है; यह हम पहले कह चुके हैं। प्रस्तुत लेख में श्रीमती वर्मा के प्रसिद्ध काव्य 'यात्रा' का अलंकारों की दृष्टि से विश्लेषण करके उसके मूल्यांकन का प्रयत्न किया जायगा।

यद्यपि श्रीमती वर्मा अपने इस ग्रन्थ में रूपक, उपमा तथा अपन्हुति के प्रयोग द्वारा सौन्दर्य-चित्रण में अधिक सफल हुई हैं फिर भी सबसे अधिक ध्यान आकर्षित करनेवाला प्रयोग 'सांग रूपकों' का है; संख्या अधिक न

होते हुए भी उनका अपना महत्व है। कुछ सांग रूपक तो साधारण चमत्कार के लिए ही आये हैं—

'रवि-शशि तेरे अवतंस लोल।
सीमंत-जटित तारक अमोल॥
चपला विभ्रम, स्मित इन्द्र-धनुष।
हिमकण बन झरते स्वेदनिकर॥
अप्सरि! तेरा नर्तन सुन्दर॥' (१८०)

किन्तु सबसे अधिक चमत्कार-पूर्ण आरती का साँग रूपक है, जिसे पढ़ कर सूर के 'हरि जू की आरती बनी' वाले पद का ध्यान आ जाता है, जहाँ श्लेष तथा अनुप्रास का भी मनोहर पुट उस प्राचीन अप्रस्तुत को नवीन रूप में उपस्थित करता है—

'प्रिय मेरे गीले नयन बनेंगे आरती।
श्वासों में सपने कर गुंफित॥
बन्दनवार वेदना चर्चित।
भर दुःख से जीवन का घट नित॥
मूक क्षणों से मधुर भरूँगी भारती॥१॥
दृग मेरे दो दीपक झिलमिल।
भर आँसू का स्नेह रहा ढल॥
सुधि तेरी अविराम रही जल।
पदध्वनि पर आलोक रहूँगी वारती॥२॥
यह लो प्रिय निधियों मय जीवन।
जग की अक्षय स्मृतियों का धन॥
सुख सोना करुणा हीरक कण।
तुमसे जीता आज तुम्हीं को हारती॥३॥' (१८१)

इस गीत में श्वासों के तार में अपने सपनों को गूँथ कर वेदना-चर्चित वन्दनवार बनाया है, जीवन के घट को दुःख रूपी जल से भरा गया है और मूक क्षणों को आरती के सुन्दर श्लोकों से भरा गया है। दोनों नेत्र झिल-मिलाते हुए दो दीपक हैं। आँसू का तेल भरा जा रहा है और सुधि रूपी बती जल कर पदध्वनि पर प्रकाश कर रही है। फिर असंख्य धन, निधि, सोना तथा हीरक लुटा दिये जाते हैं। सांग रूपक तथा अनुप्रास तो हैं ही, 'भर', 'वारती' तथा 'स्नेह' पर श्लेष भी है।

इसी प्रकार एक दूसरा सुन्दर सांगरूपक बंसतरजनी का है, जिसमें

समासोक्ति का भी सुन्दर चमत्कार है :—

'धीरे-धीरे उतर क्षितिज से आ बसन्त रजनी ।
तारकमय नव वेणी बन्धन ।
शीशफूल कर शशि का नूतन ॥
रश्मिवलय सित घन-अवगुण्ठन,
मुक्ताहल अभिराम बिछादे ।
चितवन से अपनी ॥' (१२२)

यहाँ बीच की ३ पंक्तियों को सांगरूपक के लिए लिखा गया है किन्तु अन्त में सारे छन्द को समासोक्ति में अवसित कर दिया है, इसलिए सौंदर्य और भी बढ़ जाता है । 'नीहर' में इस प्रकार के अलंकारों की कमी है किंतु 'रश्मि', 'नीरजा' में इनकी अधिकता है । अधिकतर सांग रूपक अधिक लम्बे नहीं हो पाये हैं ।

'यामा' में दूसरा प्रचलित अलंकार 'समासोक्त' है; इस अलंकार द्वारा श्रीमती वर्मा ने न जाने प्रकृति के कितने मनोहर चित्र खींचे हैं । किन्तु हमें यह अलंकार अधिकतर 'संसृष्टि' तथा 'संकर' के रूप में मिलता है, अपने विविक्त रूप में बहुत कम । अधिकतर चित्रों में प्रकृति में करुणा मूर्ति नारी का ही साधनामय स्वरूप दिखाई पड़ता है । पहिला ही गीत देखिए :—

'निशा की, धो देता राकेश ।
चाँदनी से जब अलकें खोल ॥ (१)

यहाँ निशा और राकेश के पारस्परिक व्यवहार—अलकें खोलकर धो देना—से नायक और नायिका के कामुकतापूर्ण व्यवहार की प्रतीति होती है । 'नीहार' ही में दूसरा उदाहरण देखिए :—

'गुलाबों से रवि का पथ लीप ।
जला पश्चिम में पहला दीप ॥
विहँसती सन्ध्या भरी सुहाग ।
दृगों से झरता स्वर्ण-पराग ॥' (७१)

यहाँ सन्ध्या के व्यवहार में किसी ऐसी नायिका की प्रतीति होती है जो अपने प्रिय की साधना में तत्पर रहकर अपने को सौभाग्यवती मानती हुई आनन्द का अनुभव करती है । 'विहँसती', 'दृगों' आदि शब्दों का प्रयोग इसी प्रतीति के लिए हुआ है । 'गुलाल', 'दीप' और 'स्वर्ण-पराग' में उपमेय के छिपे रहने और उपमान मात्र के प्रयोग से 'रूपकातिशयोक्ति' भी है ।

'नीरजा' में साधारण तथा प्रचलित प्रयोगों द्वारा इस अलंकार का चमत्कार देखने योग्य है। प्रायः उपमा तथा उत्प्रेक्षा की सहायता लेकर 'संसृष्टि' कर दी गई है :—

'मृदुल अंक धर, दर्पण सा सर।
आज रही निशि दृग इंदीवर॥' (१२३)

यहाँ पर निशा के व्यवहार में उस नायिका के व्यवहार की प्रतीति होती है जो अपनी गोद में दर्पण रखकर अपने नेत्रों में अंजन लगाती है। 'दर्पण सा सर' में उपमा, 'दृग-इंदीवर' में रूपक तथा 'मृदुल अंक' में रूपकातिशयोक्ति है। इसलिए इन अलंकारों से संश्लिष्ट समासोक्ति सारे छन्द में है। एक दूसरे छन्द में उत्प्रेक्षा द्वारा समासोक्ति को अनुप्राणित किया गया है:—

'झूम गर्वित स्वर्ग देता।
नत धरा को प्यार सा क्या ?' (१२८)

यहाँ गर्वित स्वर्ग का झूमकर नत धरा को प्यार देने में कामुक तथा स्वाभिमानी नायक का सहमी हुई नायिका को चूमने वाले व्यवहार की प्रतीति होती है। 'प्यार-सा' कह कर संभावना द्वारा उत्प्रेक्षा है।

जैसा कि हम देख चुके हैं रूपकातिशयोक्ति, समासोक्ति, सांगरूपक, अतिशयोक्ति, उपमा और उत्प्रेक्षा अलंकारों की बहुलता इन गीतों में प्रकृति के अनेक मनोहर तथा आकर्षक चित्र खींचती है। कुछ साधारण अलंकारों का चमत्कार भी, यद्यपि अधिक मात्रा में नहीं है, दर्शनीय है:—

'वृन्त बिन नभ में खिले जो।
अश्रु बरसाते हँसे जो॥
तारकों के वे सुमन।
मत चयन कर अनमोल री॥' (१७१)

यहाँ पर 'तारकों' पर 'सुमन' का आरोप किया गया है और इसीलिए 'वृन्त बिन' का प्रयोग हैं; अतः 'रूपक' और 'विभावना' का प्रयोग है। किन्तु चमत्कार रूपक में हैं न तो 'अश्रु बरसाते हँसे' विरोधाभास में और न 'विभावना' में। हाँ, 'निश्चय' का यह चमत्कार अवश्य प्रशंसनीय है :—

'पारद के मोती से चंचल।
मिटते जो प्रतिपल बन ढुल ढुल॥
हैं पलकों में करुणा के अणु।'

'पाटल पर हिमहास नहीं यह ॥
कूलहीन तम के अन्तर में ।
दमक गई छिप जो क्षण भर में ॥
हैं विषाद से बिखरी स्मृतियाँ ।
घन चपला का लास नहीं यह ॥' (१८४)

इस छन्द के विषय में यह शंका हो सकती है कि इसमें 'अपन्हुति' मानी जावे या 'निश्चय'। यदि प्रकृति का वर्णन प्रस्तुत है तो निश्चय ही 'अपन्हुति' मानी जावेगी, किंतु यदि इसमें अपने विषाद आदि का वर्णन है तो 'निश्चय' अलंकार मानना चाहिए। शायद इन गीतों को व्यक्तिगत (Subjective) मानने से अधिक चमत्कार 'अपन्हुति' में नहीं 'निश्चय' में ही है।

प्रस्तुत काव्य में उस अनन्त सौंदर्य-निधि का वर्णन होने से स्थान-स्थान पर 'व्यतिरेक' तथा 'प्रतीप' के भी दर्शन होते हैं। यदि हम इन स्थलों पर प्रस्तुत की अलौकिकता को ध्यान में रखेंगे तो काव्य की दृष्टि से अधिक सौंदर्य न दिखाई पड़ेगा, अतः वर्ण्य विषय भले ही कोई अलौकिक हो, हम उसे साधारण मानकर ही उसका वर्णन देखते हैं। नख, अधर तथा चरणों की सुन्दरता देखिए:—

'जिन चरणों पर देव लुटाते
थे अपने अमरों के लोक
नखचंद्रों की कान्ति लजाती
थी नक्षत्रों के आलोक।' (४७)

पूर्वार्ध में कोई काव्य-सौंदर्य नहीं है, किन्तु उत्तरार्ध में 'प्रतीप' का चमत्कार है। अन्यत्र भी :—

जिन चरणों की नखज्योति
ने हीरक जाल लजाये।—(११)

नखज्योति में हीरक-जाल से अधिक सुन्दरता होने के कारण प्रस्तुत से अप्रस्तुत का लज्जित होना 'प्रतीप' ही है। अधरों के वर्णन में भी इसी अलंकार का चमत्कार है—

'जिन अधरों की मन्द हँसी थी
नव अरुणोदय का उपमान।'

यहाँ उपमेय का उपमान तथा उपमान को उपमेय बनाकर प्रस्तुत की श्रेष्ठता की प्रतिष्ठा की गई है।

कुछ साधारण उपमायें भी देखने योग्य हैं। कुछ उपमान तो दूसरे

कवियों से लिए गये हैं। हाँ प्रस्तुत अपना नया रक्खा गया है। जैसा कि बिहारी के एक दोहे में भी है 'भींगे पट के समान लिपटना' वाक्य महादेवी जी को पसन्द आया है, परन्तु आपने अपना 'प्रस्तुत' पीड़ा को बनाया है प्रिय को नहीं :—

'पीड़ा मेरे मानस से
भींगे पट सी लिपटी है ॥' (२६)

एक दूसरे स्थान पर भूत और भविष्य का सुन्दर स्परूप परम्परा उपमानों द्वारा दिखाया गया है—

'कुहरे सा धुँधला भविष्य है।
है अतीत तम प्यारे ॥' (७६)

कुछ आधुनिक काल के अप्रस्तुतों का प्रयोग भी यद्यपि स्वरूपाभिव्यक्ति में अधिक सहायक नहीं होता, फिर भावाभिव्यक्ति में सफल है—

'पलक प्यालों सी पी-पी देव!
मधुर आसव सी तेरी याद ॥' (४२)

तथा—

'इन हरिक के तारों को
कर चूर बनाया प्याला।
पीड़ा का सार मिला कर
प्राणों का आसव ढाला ॥' (२३)

'आसव सी याद' तथा 'प्राणों का आसव' आधुनिक काल की देन। निम्नलिखित मालोपमा भी इसी प्रकार की है—

'मूक प्रणय से, मधुर व्यथा से।
स्वप्नलोक के से आह्वान।
वे आये चुपचाप सुनाने
तब मधुमय मुरली की तान ॥' (२)

श्रीमती वर्मा ने इन अप्रस्तुतों को तो आजकल के कवियों के समान दूसरों से ही लिया है, किन्तु उनके मौलिक अप्रस्तुत एकदम अद्‌भुत तथा मनोहर हैं—

'अवनि-अम्बर की रुपहली सीप में
तरल मोती सा जलधि जब काँपता।' (७७)

या— 'विधु की चाँदी की प्याली
मादक मकरन्द भरी सी

जिसमें उजियाली रातें
लुटती घुलती मिसरी सी ।' (१७)

ऊपर वाले उदाहरण में 'जलधि' को 'मोती' तथा 'अवनि-अम्बर' को 'सीप' मानना तो रूपाकार की दृष्टि से, सूक्ष्मनिरीक्षण होते हुए भी, असंभव नहीं लगता। किन्तु दूसरे उदाहरण में 'उजियाली रातों का उसी भाँति लुट जाना जैसे मिसरी घुल जाती है' यह विचार इतना सूक्ष्म है कि इसमें न वस्तु-साम्य है, न गुणसाम्य, न क्रिया-साम्य, केवल भावसाम्य ही दिखाई पड़ता है ।

प्रस्तुत और अप्रस्तुतों की इस मौलिकता का एक और उदाहरण देखिए—

तुम हो प्रभात की चितवन
मैं विधुर निशा बन जाऊँ
काटूँ वियोग-पल रोते
संयोग-समय छिप जाऊँ । (७५)

यहाँ पर महादेवी जी को इतना ही कहना अभीष्ट है कि प्रिय के वियोग में रोते रहने पर भी उनका मिलन नहीं होता, क्योंकि जब संयोग का समय आता है तब उनका अस्तित्व ही नहीं रहता—संयोग उसी समय होता है जब भक्त का भगवान् से पृथक् अस्तित्व नहीं रहता—'प्रभात की चितवन' और 'विधुर-निशा' इन दो अप्रस्तुतों के द्वारा उन्होंने इस अद्भुत समस्या को बड़े ही आकर्षक रूप से समझाया है ।[1] स्वर्गीय प्रसादजी ने भी एक कहानी 'दासी' में यही भाव इन्हीं शब्दों में प्रकट किया है—

'मैं जलती हुई दीपशिखा हूँ और तुम हृदय-रञ्जन प्रभात हो। जब तक देखती नहीं जला करती हूँ और तुम्हें जब देख लेती हूँ तभी मेरे अस्तित्व का अन्त हो जाता है ।' —(आँधी ८१)

कहने की आवश्यकता नहीं कि यद्यपि प्रसादजी ने इस कहानी को पहिले लिखा था; फिर भी वर्माजी के छन्द में अधिक चमत्कार है, 'दीपशिखा' और 'प्रभात' का सम्बन्ध न तो इतना स्वाभाविक है और न इतना असम्भव है

---

१. महात्मा कबीर ने भी इसी भाव को अपने एक दोहे में प्रकट किया है किन्तु उसमें वह चमत्कार नहीं है—

मूए पीछे मति मिलौ, कहै कबीरा राम ।
लोहा माटी मिलि गया, तब पारस केहि काम ॥

जितना 'प्रभात' और 'निशा' का—यद्यपि प्रभात और निशा सदा साथ रहते हैं फिर भी उनका संयोग हो ही नहीं सकता; किन्तु दीपशिखा का प्रभात से संयोग हो भी सकता है (वस्तुतः अद्वैत का ज्ञान होने पर आत्मा का स्वरूप उसी प्रकार मलिन हो जाता है जिस प्रकार सूर्यप्रकाश में दीपज्योति; किन्तु दीपशिखा का अस्तित्व नहीं मिटता)।

अन्त में श्रीमती वर्मा के उस प्रिय अलंकार समासोक्ति का एक उदाहरण देकर हम भारतीय नारी की उस असहाय अवस्था पर अवश्य आँसू बहाना चाहते हैं, कितना भावपूर्ण चित्रण है—

जन्म से मृदु कंज-उर में
नित्य पाकर प्यार लालन
अनिल से चल पंख पर फिर
उड़ गया जब गंध उन्मन।
बन गया तब सर अपरिचित
होगई कलिका विरानी।
निठुर वह मेरी कहानी॥ (१६३)

जिस घर में उसका लालन-पालन हुआ उसको छोड़ कर चले जाने पर वह किस प्रकार 'विरानी' हो जाती है, यह वस्तुतः बड़ी 'निठुर कहानी' है।

दीपशिखा

डाक्टर नगेन्द्र

['महादेवी जी के गीतों में कला का मूल्य अक्षुण्ण है। भाषा के रंगों को हल्के-हल्के स्पर्श से मिलाते हुए मृदुल-तरल चित्र आँक देना उनकी कला की विशेषता है। पंत की कला में जड़ाव और कढ़ाई है, फलतः उनके चित्रों की रेखाएँ पैनी हैं। महादेवी की कला में रंग-धुली तरलता है जैसी कि पंखड़ियों पर पड़ी हुई ओस में होती है।']

इस युग में 'दीप-शिखा' का प्रकाशन एक घटना है। महादेवी जी के ही शब्द उधार लेकर हम कहेंगे कि 'जीवन और मरण के इन तूफानी दिनों में रची हुई यह कविता ठीक ऐसी है जैसे झंझा और प्रलय के बीच में स्थित मन्दिर में जलने वाली निष्कम्प दीप-शिखा।'

इस पुस्तक का महत्व एक और दृष्टि से भी है। आज छः-सात वर्षों के बाद महादेवीजी के साधना-मन्दिर का द्वार खुला है और करुणा के स्नेह में जलती हुई इस दीपक की लौ को अब भी अपने एकाकीपन में तन्मय और विश्वास में मुस्कराती हुई देखकर हिन्दी के विद्यार्थी का सशङ्क मन उत्फुल्ल हो उठा है।

दीप-शिखा में ५१ गीत हैं, और प्रत्येक गीत का अर्थवाही एक चित्र है। इन चित्रों का कला की दृष्टि से क्या मूल्य है, यह कहने का तो मैं अधिकारी नहीं हूँ; परन्तु इस प्रकार का चित्रित गीत-प्रकाशन हिन्दी के लिए एकदम नयी चीज़ है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक गीत कवयित्री की अपनी ही हस्त-लिपि में मुद्रित है। इस मुद्रण से जहाँ नवीनता तो सचमच और भी

बढ़ गई है, वहाँ लिपि के सुन्दर न होने से पुस्तक की स्वच्छन्दता में क्षति भी अवश्य हो गई है।

हिन्दी में—विश्व के लगभग सभी साहित्यों में—गीत-परम्परा आदि-काल से ही चली आती है। या यों कहिए कि कविता का मूल रूप ही गीत है। गीत के इतिहास पर दृष्टि डालने से उसके दो प्रयोजन मिलते हैं:—

(१) आत्म-निवेदन और (२) मनोरञ्जन।

इनमें आत्म-निवेदन अधिक मौलिक है। उसको प्रयोजन के अतिरिक्त प्रेरणा भी कहना उचित है। परन्तु मनोरञ्जन भी कम प्राचीन नहीं है। आखेट-प्रिय आदिम पुरुष के वियोग में उसकी गृहिणी आदिम नारी ने आज से न-जाने कितने युग पूर्व अपने एकाकी मन और गृह-कर्म से भारी शरीर को हल्का करने के लिए गीत का आविष्कार किया था। 'कामायनी' के पाठकों को याद होगा कि मनु के मृगयार्थ वन में चले जाने पर श्रद्धा का हाथ तकली से और मन अनायास गीत की कड़ी से उलझ जाता था।

इस अवस्था में आकर गीत के दोनों प्रयोजनों का समन्वय हो जाता है। धीरे-धीरे ये ही दो प्रयोजन अनेक रूपों में बिखरते गये। आत्म-निवेदन पार्थिव और अपार्थिव अवलम्बनों के अनुसार लौकिक और अलौकिक विरह-मिलन की कविता में फूट उठा; मनोरंजन उत्सव और पर्वों के गीतों में; और कहीं-कहीं ये दोनों ही मिलकर एक हो गए।

इस प्रकार गीत मानव-मन के हर्ष-विषाद का सहज वाहक है, जो अब तक अपनी परिभाषा को अक्षुण्ण बनाये हुए है। महादेवी जी ने भी इसी से मिलती-जुलती गीत की परिभाषा की है—

'गीत का चिरन्तन विषय रागात्मिकता वृत्ति से सम्बन्ध रखने वाली सुख-दुःखात्मक अनुभूति ही रहेगा।...साधारणतः गीत व्यक्तिगत सीमा में सुख-दुःखात्मक अनुभूति का वह शब्द-रूप है जो अपनी ध्वन्यात्मकता में गेय हो सके।'

दीप-शिखा के गीतों में आत्म-निवेदन की प्रेरणा है, मनोरंजन स्पष्टतः ही उनका प्रयोजन नहीं है। परन्तु वह आत्मनिवेदन किस प्रकार का है, यह प्रश्न सरल नहीं है। साधारण रूप से यह कह देना कि इनमें अज्ञात के प्रति विरह-निवेदन है या रहस्योन्मुख प्रेम की अभिव्यक्ति है अथवा लौकिक धरा-तल पर कवि की अपनी अतृप्त वासना की प्रेरणा है—प्रश्न को और भी जटिल बना देना है। इस आत्म-निवेदन की प्रकृति को समझने के लिये तो कवि के व्यक्तित्व के विश्लेषण का सहारा लेना पड़ेगा;

दीप-शिखा के गीतों का अध्ययन करने पर हमारे मन में तीन प्राथमिक धारणाएँ बनती हैं—

(१) दीप-शिखा कवि के अपने मन का प्रतीक है।

(२) दीप-शिखा में फ़ारसी की शमअकी तरह ऐन्द्रिय वासना की दाहक ज्वाला नहीं है, वरन् करुणा की स्निग्ध लौ है जो मधुर-मधुर जलती हुई पृथ्वी के कण-कण के लिए आलोक वितरित करती है।

(३) और इस जलने के पीछे किसी अज्ञात प्रिय का संकेत है जो उसे असीम बल और अकम्प विश्वास प्रदान करता है।

महादेवी के काव्य में इसी प्रकार के संकेत मिलते हैं, और इन संकेतों की व्याख्या में हिन्दी-आलोचकों ने सारा अध्यात्म एवं वेदान्त समाप्त कर दिया है। उनकी यह व्याख्या महादेवी को परमार्थी योगी की पदवी पर भले ही प्रतिष्ठित करदे, परन्तु उनके काव्य की आत्मा अर्थात् उनकी अनुभूति के स्वरूप को समझने में अणुमात्र भी सहायक नहीं होती।

इस विषय में मैं पहिले ही निवेदन करदूँ कि मुझे आधुनिक काव्य की आध्यात्मिकता में एकदम विश्वास नहीं है। काव्य का सम्बन्ध मानव-मन से है, और मन में किसी प्रकार की अपार्थिवता नहीं है। भारतीय दर्शन ने भी उसे सूक्ष्मेन्द्रिय ही माना है। हमारे साहित्य-शस्त्र में भी जहाँ काव्य की अनुभूति-अभिव्यक्ति का विवेचन है, पार्थिव जीवन के ही स्थायी-संचारियों का वर्णन है और रस की अलौकिकता भी अन्त में लौकिक ही ठहरती है। यह बात नहीं कि मुझे अध्यात्मक की सत्ता मान्य नहीं। मैं मानता हूँ कि एक ओर चित्तवृत्ति के संयम और निरोध से और दूसरी ओर उसकी एकाग्रता के अभ्यास से आत्म-चिन्तन और रहस्यानुभूति सम्भव है—और कम-से-कम कबीर की रहस्यानुभूति कल्पना की क्रीड़ा अथवा धार्मिक दम्भ कभी नहीं थी। परन्तु बुद्धि के इस युग में, जैसा कि महादेवी जी ने स्वयं अपनी भूमिका में स्वीकार किया है, इस प्रकार की रहस्यानुभूति कम-से-कम एक नवीन शिक्षा-दीक्षा में पोषित बुद्धि-जीवी के लिए सम्भव नहीं। एक बार व्यक्तिगत चर्चा करते समय भी जब मैंने अपना यह मन्तव्य उनके सम्मुख रखा तो उन्होंने स्पष्ट रूप में इसकी सत्यता स्वीकार की थी। अतएव दीप-शिखा के गीतों की अनुभूति पार्थिव माने बिना काम नहीं चल सकता। उसका विश्लेषण करने पर तीन तत्त्व हम को मिलते हैं :

(१) जलने की भावना, (२) विश्व के प्रति गीला-करुणा-भाव, और

(३) अज्ञात प्रिय का संकेत।

इन में से तीसरे भाव के मूल में तो स्पष्टतः काम का स्पन्दन है ही; जलने की भावना में असन्तोष और अतृप्ति-भावना भी अनिवार्य है। इन दोनों को अगर संयुक्त करदें तो पहला कारण और दूसरा कार्य हो जाता है। और वास्तव में सभी ललित-कलाओं के—विशेषतः काव्य के और उससे भी अधिक प्रणय-काव्य के—मूल में अतृप्त काम की प्रेरणा मानने में आपत्ति के लिए स्थान नहीं है।

महादेवी जी का एकाकी जीवन उनके काव्य में स्पष्ट रूप से प्रतिबिम्बित है। किसी अभाव ने ही उनके जीवन को एकाकिनी बरसात बना दिया है, सुख और दुलार के आधिक्य ने नहीं। अतिशय सुख और दुलार की प्रतिक्रिया से उत्पन्न दुःख का आकर्षण यामा और दीप-शिखा की सृष्टि नहीं कर सकता। परन्तु इस अतृप्ति को स्थूल शारीरिक अर्थ में ग्रहण करना महादेवीजी के संस्कृत एवं संयत व्यक्तित्व के प्रति अपराध होगा। क्योंकि, और नहीं तो स्वभाव से ही पुरुष और स्त्री कवियों के लिखे हुए प्रणय-गीतों में उनकी प्रकृति के अनुसार अन्तर मिलना अनिवार्य है। पुरुष कवि का प्रणय-निवेदन अधिक व्यक्त, अतएव ऐन्द्रिय एवं रोमानी होगा। स्त्री का प्रणय-निवेदन संयत, अतएव गार्हस्थिक होगा। पुरुष में रोमांस की उन्मुक्तता होगी, नारी में स्थायित्व का बन्धन। अतएव स्वीकृत रूप से लौकिक तल पर स्त्री-कवि का प्रणय एकमात्र स्वकीया का घरेलू प्रणय ही हो सकता है। स्त्री अपनी प्रकृति के कारण और बहुत-कुछ अंशों में सामाजिक रीति-नीति के कारण न तो असंयत उद्गारों को ही व्यक्त कर सकती है और न स्वकीया की सौमित्रि-रेखा से बाहर ही जा सकती है। प्राचीन लोक-गीतों की गायिकाओं से लेकर सर्वश्री होमवती, 'उषा', 'चकोरी', आदि आधुनिक हिन्दी-कवयित्रियों तक यह बात अनिवार्य रूप से मिलेगी। जहाँ-कहीं भी लौकिक प्रणय की स्वीकृति है, वहाँ स्वकीया भाव ही है। मीरा के तो अपार्थिव प्रेम में भी स्वकीया-भाव का आग्रह मिलता है।

स्वकीया की भावना को छोड़कर तो स्त्री के पास सिर्फ़ एक ही उपाय रह जाता है—अपार्थिव प्रणय अथवा अज्ञात के प्रति प्रणय-निवेदन। यह प्रणय-निवेदन मूलतः पार्थिव प्रेम पर आश्रित होते हुए भी तत्त्वतः उससे भिन्न होता है। अर्थात् इसमें ऐन्द्रियता सूक्ष्म-से-सूक्ष्म होती हुई अतीन्द्रियता-सी प्रतीत होने लगती है, यानी उसका संस्कार हो जाता है। परन्तु यह निश्चित है कि इस प्रणय-निवेदन में जो स्पन्दन होगा, वह प्रच्छन्न रूप से

उसी आरम्भिक प्रेम का ही होगा।

सन्त कवियों तथा सगुण भक्तों ने अपनी अभुक्त वासनाओं को एक ओर तो भगवान के चरणों पर उँडेलकर और दूसरी ओर सचराचर में वितरित कर उनका संस्कार किया था। वह विश्वास और साधना का युग था। भगवान की प्रतीति तब आज की अपेक्षा अधिक सरल थी। आज का कवि भगवान से नाता जोड़ने में अपने को असमर्थ पाता है। उसके लिए मानव-जाति से प्रीति बढ़ाना अपेक्षाकृत सरल है। इसलिए आज वासना के संस्कार की यही पद्धति व्यवहार्य है। महादेवीजी के जीवन में सन्तों की आत्मसाधना देखना तो उपहास्य होगा; परन्तु अपनी वासना का परिष्कार करने के लिए उन्होंने साधना की है और अब भी कर रही हैं, इसको अस्वीकार करना अनुचित होगा। उन्होंने बड़ी लगन से आध्यात्मिक साहित्य का अध्ययन किया है। अपने आस-पास के प्राणियों के साथ परिवार-सम्बन्ध जोड़ा है। पीड़ित वर्ग की सक्रिय सेवा में आनन्द लिया है। मैं समझता हूँ कि उनका काफ़ी समय आध्यात्मिक साहित्य के अध्ययन और मनन में बीतता है। अतएव उनके गीतों में जो रहस्य-संकेत मिलते हैं वे पूर्णतः स्वानुभूत सत्य न होते हुए भी एक-दम छायावाद-युग के कवि-समय मात्र भी नहीं हैं। प्रत्यक्ष रूप से नहीं, तो अध्ययन के सहारे ही कवि को उनसे थोड़ा-बहुत परिचय अवश्य है।

यही बात कण-कण के प्रति बिखरी हुई उनकी स्नेह विगलित करुणा के लिए भी कही जा सकती हैं। बुद्ध के प्रति ममत्व और दर्शन के अध्ययन का प्रभाव उस पर स्पष्ट रूप से पड़ा है—'इन गीतों ने पराविद्या की अपार्थिवता ली, वेदान्त के अध्ययन की छायामात्र ग्रहण की, लौकिक प्रेम से तीव्रता उधार ली और इन सबको कबीर के सांकेतिक दाम्पत्य-भाव-सूत्र में बाँधकर एक निराले स्नेह-सम्बन्ध की सृष्टि कर डाली, जो मनुष्य के हृदय को अवलम्ब दे सका, उसे पार्थिव-प्रेम से ऊपर उठा सका तथा मस्तिष्क को हृदयमय और हृदय को मस्तिष्कमय बना सका।'

इस प्रकार दीप-शिखा के गीतों में जिन तत्त्वों की ओर निर्देश किया गया है, वे तीनों एक दूसरे से कार्य-कारण-सम्बन्ध में बँधे हुए हैं और कवि के अपने जीवन के सम्बन्ध से भी उनका पूरी तरह व्याख्यान हो जाता है।

यहाँ तक तो हुआ दीप-शिखा की प्रेरक अनुभूति का विश्लेषण, जो उसके गीतों को समझने में सहायक हो सकता है। परन्तु उसका मूल्यांकन करने के लिए अनुभूति की प्रकृति नहीं, उसकी शक्ति का विवेचन करना होगा। यानी अब हमें यह देखना है कि दीप-शिखा को जिस अनुभूति से

प्रेरणा मिली है, उसमें कितनी तीव्रता है।

इस दृष्टि से हमें निराश होना पड़ेगा। कारण स्पष्ट है। इस अनुभूति के मूल में जो काम का स्पन्दन है, उसके ऊपर कवि ने चिन्तन और कल्पना के इतने आवरण चढ़ा रखे हैं कि स्वभावत: उसकी तीव्रता दब गई है और उसको टटोलने पर बहुत नीचे गहरे में एक हल्की-सी धड़कन मिलती है। साथ ही अनुभूति को पुञ्जीभूत होने का भी अवसर नहीं मिला। उसका वितरण प्रयत्न-पूर्वक किया गया है, इसलिए वह तीव्र न रहकर हल्की-हल्की बिखर गई है। स्पष्ट शब्दों में, इन गीतों में लोक गीतों की जैसी मांस की उष्ण गन्ध प्राय: निःशेष हो गई है। दूसरी ओर बुद्धिजीवी महादेवीजी में सन्त या भक्त कवियोंका-सा विश्वास और समर्पण भी सम्भव नहीं हो सका। इसलिए उनके हृदय में अज्ञात के प्रति भी जिज्ञासा ही उत्पन्न हो सकी है, पीड़ा नहीं। कुल मिलाकर यह कहना होगा कि दीप-शिखा की प्रेरक अनुभूति छाँह-सी सूक्ष्म और मोम-सी मृदुल तो है; परन्तु हूक-सी तीव्र नहीं। एक स्थान पर स्वयं कवयित्री ने ही अपने गीत की बड़ी सुन्दर व्याख्या की है—

खोजता तुमको कहाँ से आ गया आलोक सपना
चौंक खोले पङ्ख तुमने याद आया कौन अपना
कुहर में तुम उड़ चले किस छाँह को पहचान।

स्वभावत: छाँह को पहचान कर कुहर में उड़ने वाले इन गीतों में विस्मय भरे मधुर संकेत तो स्थान-स्थान पर मिलेंगे; परन्तु लपककर हृदय को पकड़ने वाली पंक्तियाँ दुर्लभ ही हैं।

मधुर संकेतों के कुछ उदाहरण लीजिए—

(१) तम ने वर्ती को जाना है,
वर्ती ने यह स्नेह, स्नेह ने रज का अञ्चल पहचाना है
चिर-बन्धन में बाँध मुझे घुलने का वर दे जाना

(२) सुधि विद्युत् की तूली लेकर
मृदु व्योम फलक-सा उर उन्मन
मैं घोल अश्रु में ज्वाला-कण
चिर-मुक्त तुम्हीं को जीवन के बन्धन हित विकल दिखा जाती।

नीहार से लेकर दीप-शिखा तक आते-आते महादेवीजी की अनुभूति ने सूक्ष्मता और स्थिरता में जितनी वृद्धि की है, तीव्रता में उतनी क्षति भी भोगी है। इसका अर्थ यही है कि महादेवीजी का मन क्रमश: व्यक्तिगत पीड़ा

को लोक व्यापी बनाता हुआ दुख-सुख का सामञ्जस्य स्थापित करता रहा है। यह सामञ्जस्य सर्व-प्रथम हमें नीरजा में मिलता है; परन्तु फिर भी उसमें व्यक्ति की पुकार दुर्बल नहीं पड़ी। सान्ध्य-गीत में आकर जिस अनुपात से पीड़ा का अव्यक्तीकरण हुआ है, उसी अनुपात से उसमें अनुभूति की तीव्रता भी कम हो गई है। दीप-शिखा इसी दिशा में एक अगला क़दम है। सान्ध्य-गीत में जहाँ दुःख और सुख का सामञ्जस्य पूर्ण हुआ था, वहाँ दीप-शिखा में दुःख अपना दंशन खोकर सुख को समर्पण कर बैठा है। पीड़ा की ज्वाला यहाँ दीप-शिखा बन गई है, जो पृथ्वी के कण-कण को आलोक वितरित कर अपना घुल जाना ही वरदान मानती है। इस प्रकार दीप-शिखा की अनुभूति में एक तो रज के प्रति ममत्व और दूसरे विश्वासमय अबन्ध गति—ये दो नवीन तत्त्व मिलते हैं जिनके लिए हमारे युग-जीवन की प्रवृत्तियाँ उत्तरदायी हैं।

महादेवीजी के गीतों में कला का मूल्य अक्षुण्ण है। भाषा के रङ्गों को हल्के-हल्के स्पर्श से मिलाते हुए मृदुल-तरल चित्र आँक देना उनकी कला की विशेषता है। पन्त की कला में जड़ाव और कढ़ाई है, फलतः उनके चित्रों की रेखाएँ पैनी होती हैं। महादेवी की कला में रङ्ग-घुली तरलता है, जैसी कि पंखुड़ियों पर पड़ी हुई ओस में होती है।

सान्ध्य-गीत में सन्ध्या की पृष्ठभूमि होने के कारण उसके चित्रों में रङ्गों का वैभव अधिक था; परन्तु दीप-शिखा के गीतों में उसके चित्रों की ही तरह केवल दो रङ्ग हैं—हल्का नीला और सफ़ेद। जहाँ कहीं अधिक रङ्गों का प्रयोग भी है, वहाँ ये सभी रङ्ग इस प्रकार मिला दिए गए हैं कि किसी की स्वतन्त्र सत्ता न रहे—इसीलिए तो इन चित्रों में पारद के मोतियों-जैसी कोमलता आ गई है :

> रात-सी नीरव व्यथा, तम-सी अगम मेरी कहानी
> फेरते हैं दृग सुनहले आँसुओं का क्षणिक पानी
> श्याम कर देगी इसे छू प्रात की मुस्कान !

महादेवी जी के गीतों में प्रयुक्त चित्र-सामग्री अत्यन्त परिमित है। इसलिए नीरजा के बाद से ही महादेवीजी के आलोचक को उनसे पुनरावृत्ति की शिकायत है। और यह शिकायत जितनी उचित है उतनी ही सकारण भी। एक कारण तो यही है कि कवि की अनुभूति का क्षेत्र ही सीमित है। दूसरा कारण यह है कि उसने सान्ध्य-गीत और दीप-शिखा के गीतों को एक निश्चित पृष्ठभूमि दी है—सान्ध्य-गीत को सन्ध्या की, दीप-शिखा को रात्रि की। यह सच है कि दीप-शिखा तक पहुँचते-पहुँचते नीरजा और सान्ध्य-गीत की

पुनरावृत्तियों से ऊबा हुआ पाठक एकबार तो सचमुच झुँझला उठता है— वे ही दीपक और बादल के छाया-चित्रों के टुकड़े नाना प्रकार के आकार और वेश धारण कर उनके काव्य के आधार-फलक पर उड़ते-तैरते दिखाई देते हैं। बादल के चित्रों से तो कवि को बेहद मोह है। परन्तु झुँझलाहट उतर जाने पर यदि वह धैर्य-पूर्वक सूक्ष्म-दृष्टि से देखेगा तो उसे सूक्ष्म अवयवों की तरह-तरह की बारीकियाँ मिलेंगी। जैसे—

तैर तम-जल में जिन्होंने ज्योति के बुद्बुद् जगाए,
वे सजीले स्वर तुम्हारे क्षितिज-सीमा बाँध आये।
हँस उठा कब अरुण शतदल-सा ज्वलित दिनमान।

गीत की अपनी टेकनीक होती है। वह अपने जन्म से ही वन्य-कण्ठों में पला है। इसलिए उसकी गति और लय में—यहाँ तक कि उसकी शब्दावली में भी—वन्य संस्कार वर्त्तमान रहते हैं। यह असम्भव है कि एक सफल कलाकार कला-गीतों की रचना करते हुए इन वन्य गीतों की पंक्तियों को अनायास ही न गुनगुना उठे। सचमुच पाठक के संस्कार भी बिना इन स्पर्शों के गीत को गीत मानने के लिए तैयार नहीं होते। महादेवीजी इस ओर प्रारम्भ से ही सचेत रही हैं। दीप-शिखा की भूमिका में उन्होंने लोक-गीतों का प्रभाव स्वीकार भी किया है। नीरजा के कुछ गीतों की लय और शब्दावली में इस प्रकार के मधुर और मुखर संस्कार मिलते हैं। 'पथ देख बितादी रैन, मैं प्रिय पहचानी नहीं' या 'मुखर पिक हौले बोल, हठीले हौले-हौले बोल'—जैसी पंक्तियों को गुनगुनाते हुए पाठक के मन में लोक-गीतों की समानान्तर पंक्तियाँ आप से आप दौड़ जाती हैं। दीप-शिखा में भी 'मैं न यह पथ जानती री' या 'कहाँ से आए बादल काले'—जैसी पंक्तियों में कुछ ऐसा ही सौन्दर्य है, यद्यपि उतना नहीं जितना नीरजा के गीतों में है। इस प्रकार प्रचलित लोक-गीतों की वन्य गतिलय में अमूल्य काव्य सामग्री भर कर महादेवी जी ने खड़ी बोली की कविता में गीत के माध्यम को अमर कर दिया है।

गीत के आन्तरिक रूप का विश्लेषण यदि किया जाय तो वह कुछ इस प्रकार होगा :—

कभी अनायास ही कवि के मन में कोई बात चमक जाती है। और चिन्तन की हल्की-हल्की आँच से गल गल कर वह एक पंक्ति के रूप में ढल जाती है। यही गीत की पहली पंक्ति है जो प्रायः चिन्तन का परिणाम होती है। इसके उपरान्त कवि उससे सम्बद्ध अन्य धूमिल भावनाओं को रूप देने

का प्रयत्न करता है और गीत के अगले पदों की सृष्टि होती है। बस, इसी सृजन प्रक्रिया में एक साथ कवि की मूल अनुभूति व्यक्त होकर शब्दों की पकड़ में आ जाती है और सारा गीत चमक उठता है। अनुभूति-प्राण गीतों के सृजन का यही इतिहास है। बच्चन के कुछ भाव-दीप्त गीत इसके साक्षी हैं। परन्तु दीप-शिखा के अधिकांश गीतों में अनुभूति की तीव्रता के अभाव में ऐसा नहीं हो पाया। उनमें चिन्तन के प्राधान्य के कारण पहली पंक्ति के संकेत ही अधिक मधुर होते हैं।

दीप-शिखा की भूमिका का महत्व उसके गीतों से कम नहीं है। उसके विषय में सविस्तार चर्चा फिर कभी की जायगी। इस समय तो यही कहना पर्याप्त होगा कि आधुनिक तथाकथित प्रगतिशील या समाजवादी आलोचना की हलचल में काव्य के शाश्वत सत्यों के सहारे इस भूमिका में छाया-वाद की भव्य व्याख्या की गई है, जिसका स्थान हिन्दी आलोचना के इतिहास में अमर रहेगा।

मीरा और महादेवी

रघुवीर प्रसाद सिंह

मीरा

सखी मेरी नींद नसानी हो।
पिय को पंथ निहारत,
सिगरी रैण विहानी हो।'

× × ×

पपइया रे पिय की वाणी न बोल

× × ×

पतियाँ मैं कैसे लिखूँ लिखियो न जाय।
कलम धरत मेरो कर काँपत है,
नैनन है झर लाय॥

× × ×

सूली ऊपर सेज पिया की
किस विधि मिलना होय।

महादेवी

'पंथ देख बिता दी रैन
मैं प्रिय पहचानी नहीं।

× × ×

मुखर-पिक हौले-हौले बोल।

× × ×

कैसे सन्देश प्रिय पहुँचाती।
दृग-जल की सित मसि है अक्षय
मसि प्याली झरते तारक द्वय
पल-पल के उड़ते पृष्ठों पर
सुधि से लिख साँसों के अक्षर
मैं अपने ही बेसुधपन में
लिखती हूँ कुछ,कुछ लिख जाती।

× × ×

क्या हार बनेगा वह जिसने
सीखा न हृदय को बिंधवाना।

मीरा और महादेवी हिन्दी साहित्य के दो विभिन्न युगों की दो महान् कवयित्रियाँ हैं। जहाँ तक काव्यगत मूल प्रेरणा का प्रश्न है दोनों एक दूसरे से अभिन्न हैं लेकिन दो भिन्न युगों की विभिन्न परिस्थितियों में रहने के कारण

दोनों का कवि व्यक्तित्व अलग-अलग है। मीरा और महादेवी दोनों की जीवनी पर सम्यक् दृष्टिपात करने से यह मालूम हो जाता है कि दोनों पर बचपन में भगवान के भावमय भजन का पूरा प्रभाव पड़ा है। महादेवी का कथन है, 'एक व्यापक विकृति के समय, निर्जीव संस्कारों के बोझ से जड़ीभूत वर्ग में मुझे जन्म मिला है। परन्तु एक ओर साधनापूत, आस्तिक और भावुक माता और दूसरी ओर सब प्रकार की साम्प्रदायिकता से दूर कर्मनिष्ठ तथा दार्शनिक पिता से अपने-अपने संस्कार देकर मेरे जीवन का जैसा विकास दिया उसमें भावुकता बुद्धि के कठोर धरातल पर, साधना एक व्यापक दार्शनिकता पर और आस्तिकता एक सक्रिय पर किसी वर्ग या सम्प्रदाय में न बँधने वाली चेतना पर ही स्थित हो सकती थी। जीवन की ऐसी ही पार्श्वभूमि पर माँ से पूजा-आरती के समय सुने हुये मीरा, तुलसी आदि के तथा उनके स्वरचित पदों के संगीत पर मुग्ध होकर मैंने ब्रजभाषा में पद-रचना आरम्भ की थी।' मीरा के विषय में तो यह जनश्रुति प्रसिद्ध ही है कि वह बचपन में ठाकुर जी के विग्रह पर अपना तन-मन वार चुकी थी और साधुओं के समाज में सम्मिलित होकर भगवान के भजन में उसने तल्लीनता का अनुभव किया था। स्वयं मीरा के पद इस बात की साक्षी देते हैं।

मीरा अपने उपास्य गिरिधर गोपाल की प्रेमिका थी। मीरा बाई नाम का अर्थ भी विद्वानों ने परमात्मा की पत्नी लगाया है। कृष्णोपासक भक्तों की परम्परा में लोक और वेद के ऊपर प्रेम की प्रतिष्ठा ही 'प्रेम-लक्षण भक्ति' का सिद्धान्त हुआ। गोपियों का एकान्त प्रेम इसी रूप में देखा गया है। श्रीकृष्ण के मधुर स्वरूप का आकर्षण ही उसका एकमात्र कारण और उस स्वरूप के अधिक से अधिक सान्निध्य का अभिलाष उसका लक्षण है। गोपियों का प्रेम दाम्पत्य प्रेम के रूप में होने के कारण अभिलषित सान्निध्य भी पुरुष समागम के रूप में ही वर्णन किया गया है। मीरा की भक्ति-भावना भी इसी माधुर्य भाव की थी। मीरा अपने को कहती भी है परमात्मा की पत्नी।

> भाई म्हाँने सुपने में बरी गोपाल।
> राती पीती चुनरी ओढ़ी मेंहदी हाथ रसाल।।

जनश्रुति है कि मीरा पूर्व जन्म की गोपी थी और वह गोपी थी ललिता। मीरा भी कहती है—

> भाई मैं तो लिया रमैयो मोल।
> मीरा के प्रभु गिरिधर नागर

पुरब जनम को कौल ॥

महादेवी रूप की आराधिका नहीं अरूप की साधिका हैं। इसका कारण देशकालगत प्रभाव ही हो सकता है। स्वामी विवेकानन्द और रामकृष्ण परमहंस के कारण देश की चिन्ताधारा पर अद्वैतवाद का प्रभाव पड़ा और इससे छायावाद युग भी अनुप्राणित हुआ। महादेवी की कविताओं में भी उसी दार्शनिक चिन्तन का ब्रह्म उनके भावों का आलम्बन बना जिससे उन्होंने युग-युग का सम्बन्ध स्थापित कर अपना करुण-मधुर भाव काव्य के माध्यम से अर्पित किया।

बिछाती थी सपनों के जाल
तुम्हारी वह करुणा की कोर
गई वह अधरों की मुसकान
मुझे मधुमय पीड़ा में बोर।

× × ×

गये तब से कितने युग बीत
हुए कितने दीपक निर्वाण,
नहीं पर मैंने पाया सीख
तुम्हारा सा मनमोहन गान।

महादेवी अपना प्रेम दार्शनिक शब्दावली में व्यक्त करती हैं। असीम और ससीम जैसे शब्दों से वह अपना और उस मधुरतम व्यक्तित्व का सम्बन्ध जोड़ती हैं। लेकिन उनकी प्रारंभिक रचनाओं में उनका प्रेम-भाव बड़े ही सुस्पष्ट रूप से व्यंजित हुआ है।

मूक प्रणय से, मधुर कथा से,
स्वप्नलोक के से आह्वान,
वे आये चुपचाप सुनाने
तब मधुमय मुरली की तान।
चल चितवन के दूत सुना
उनके पल में रहस्य की बात,
मेरे निर्निमेष पलकों में
मचा गए क्या-क्या उत्पात!
जीवन है उन्माद तभी से
निधियाँ प्राणों के छाले,
माँग रहा है विपुल वेदना

के मन प्याले पर प्याले !

महादेवी को भी यह प्रणय-संकेत स्वप्न में ही मिलता है—

कैसे कहती हो सपना है
अलि उस मूक मिलन की बात ?
भरे हुए अब तक फूलों में
मेरे आँसू उनके हास।

आध्यात्मिक प्रेम अथवा भक्ति-भावना (विशेषकर मधुरा भक्ति अथवा कान्तासक्ति) की मूलचेतना मनोवैज्ञानिकों के अनुसार रति ही है। यह रति-भावना ही चारों ओर से सिमट कर भगवान में केन्द्रित हो जाने से उदात्त बनकर भक्ति में परिणित हो जाती है। कबीर ने भी कहा है—

काम मिलावै राम को जो कोइ जानो भेव।
कबीर बिचारा क्या करे यों कहि गया सुकदेव।

मीरा की रति-भावना में कोई दुराव नहीं है। उनकी भगवद्भक्ति स्पष्ट ही कान्तासक्ति है। मीरा खुले हृदय से अपना प्रेम गिरधर गोपाल के प्रति प्रकट करती है। वह उनके प्रेम में बावली होकर बन-बन नगर-नगर उनको ढूँढती फिरती है। उसे अपने प्रेम के सामने लोक-लाज कुल-समाज की जरा भी परवा नहीं है।

मैं तो साँवरे के रँग राँची।
साजि सिंगार बाँधि पग घुँघरू
लोक-लाज तजि नाँची।

उसका एकान्त प्रेम उसे अपने पात्र से किसी भी तरह से अलग नहीं होने देता।

हेली, मो सों हरि बिन रह्यौ न जाय।
सासू लड़ौ री, सजनी, नणद खिजौरी
पीव किन रहौ री रिसाय।
चौकी भी मेलौ, सजनी पहरा भी मेलौ,
ताला क्यूँ न जड़ाय।
पूरब जनम की प्रीति हमारी सजनी,
सो क्यूँ रहै री लुकाय।
मीराँ के तौ, सजनी, राम सनेही,
और न आवै म्हारी दाय।

मीरा की प्रेम-भावना उबलते हुए दूध की तरह बाहर छलक-छलक

पड़ती है। मीरा की इस आकुल तन्मयता पर महाप्रभु चैतन्य की कीर्तन प्रणाली का भी प्रभाव पड़ा है। चन्द्रबली पाण्डेय का कथन है 'मीराँ की पूजा-पद्धति कुछ बल्लभ कुल से भले ही प्रभावित हुई हो, किन्तु उनकी कीर्तन-प्रणाली तो सर्वथा गौराङ्ग महाप्रभु के ही अनुकूल थी और इनकी इहलीला की समाप्ति में बहुत कुछ उन्हीं के ढङ्ग पर हुई।'

मीरा की तन्मयता, बेसुधी और निरावरण प्रेम महादेवी में देखने को नहीं मिल सकता है। कारण कि युग उसके अनुकूल नहीं था। मीरा के युग ने दक्षिण भारत से फूटा हुआ प्रेम-भक्ति का स्रोत समूचे उत्तर भारत को परिप्लावित कर चुका था। बंगाल में चण्डीदास और चैतन्य, मिथिला में विद्यापति, ब्रजमण्डल में अष्टछाप मंडली और गुजरात में नरसी मेहता अपनी रचनाओं से उसे सरस, स्निग्ध तथा उज्ज्वल बना चुके थे। महादेवी के पूर्व का द्विवेदी-युग श्रृङ्गार-भावना की अभिव्यक्ति से सहमा हुआ नैतिकता का बन्धन अपनी वाणी पर लगा चुका था। रति की मूलभावना जो द्विवेदी-युग में दबी हुई थी छायावाद युग में अन्तर्मुखी होकर अपना पथ ढूँढ़ रही थी और प्रतीकों के रूप में अपनी अभिव्यक्ति भी कर रही थी। महादेवी ने भी जहाँ-तहाँ अपनी प्रेम-भावना को दूसरी वस्तुओं पर आरोपित करके अभिव्यक्त किया है। वह अपनी एक कविता में फूल को वर्ण्य वस्तु बनाकर कहती है—

> चाँदनी का श्रृंङ्गार समेट
> अधखुली आँखों की यह कोर
> लुटा अपना यौवन अनमोल
> ताकती किस अतीत की ओर?
> जानते हो यह अभिनय प्यार
> किसी दिन होगा कारागार?

इसके साथ-साथ आवेग उत्कंठा, प्रतीक्षा आदि प्रणय भावनाओं के संकेत भी महादेवी की रचनाओं में बराबर मिलते हैं—

> क्यों वह प्रिय आता पार नहीं।
> शशि के दर्पण में देख देख
> मैंने सुलझाये तिमिर-केश
> गूँथे चुन तारक पारिजात
> अवगुन्ठन कर किरणें अशेष
> क्यों आज रिझा पाया उसको

मेरा अभिनव शृंगार नहीं ?

और

रंजित करदे यह शिथिल चरण
ले नव अशोक का अरुण राग,
मेरे मंडन को आज मधुर
ला रजनीगंधा का पराग,
यूथी की मीलित कलियों से
अलि दे मेरी कबरी सँवार।

मीरा में मिलन का आवेग और विरह की छटपटाहट दोनों समान रूप से वर्तमान हैं। लेकिन महादेवी को विरह की वेदना ही इष्ट है मिलन नहीं। यह भावना दिनोंदिन इनके काव्य में तीव्रतर ही होती गई है। इसे दुःखवाद प्रभाव कहें चाहे नैतिक संकोच। लेकिन विरह की भावना मिलन के बाद ही तीव्र बनती है। महादेवी की रचनाओं में भी उस मादक मिलन की स्मृति कभी-कभी उभर आती है।

अलि अब सपने की बात
हो गया है वह मधु का प्रात !
जब मुरली का मृदु पञ्चम स्वर,
कर जाता मन पुलकित अस्थिर,
कम्पित हो उठता सुख से भर,
नव लतिका सा गात !
जब उनकी चितवन का निर्झर,
भर देता मधु से मानस-सर,
स्मित से झरती किरणें झर झर,
पीते दृग—जल जात !

लेकिन आगे चलकर महादेवी के काव्य में विरह को ही प्रधानता मिलती चली गई। अन्त में उन्होंने विरहको ही अपना अराध्य और दुःख को ही जीवन का संबल मान लिया। महादेवी का यही दुःखवाद उन्हें वैयक्तिक सुख-दुःखसे आगे बढ़ाकर लोक की ओर उन्मुख करता है। लेकिन भोली-भाली मीरा अपनी प्रणय-भावना को महादेवी की तरह बौद्धिक-संयम से नहीं बाँध सकती थी। वह तो केवल एक गिरधर गोपाल के लिए ही मरती थी और उसी के लिए जीती थी। आँखों में बसा हुआ उसका प्रियतम धीरे-धीरे उसके रोम-रोम में व्याप्त हो गया था।

साध हमारी आतमा में साधन की देह।
रोम रोम में रम रह्यो ज्यों बादर में मेह॥

प्रवृत्ति में प्रणय भावनाओं का आरोप दोनों ने किया है, और यह आरोपित भावना दोनों के प्रेम के उद्दीपन की सामग्री बन गई है। लेकिन मीरा में वह उल्लास और वेदना दोनों को जगाती है और महादेवी में अधिकतर वेदना को ही। प्रकृति के समग्र व्यापारों में वर्षाऋतु दोनों को विशेष प्रिय है। कुछ उदाहरण लीजिए :—

बरसै बदरिया सावन की,
सावन की मन भावन की।
सावन में उमग्यौ मेरो मनवा,
भनक सुनी हरि आवन की॥

—मीरा

मुस्काता संकेत भरा नभ
अलि क्या प्रिय आने वाले हैं ?
नयन श्रवणमय श्रवण नयनमय
आज हो रही कैसी उलझन
रोम-रोम में होता री सखि
एक नया उर का सा स्पन्दन।
पुलकों से बन फूल बन गये
जितने प्राणों के छाले हैं।

—महादेवी

सुनी हो मैं हरि आवन की आवाज।
म्हेल चढ़ि-चढ़ि जोऊँ मेरी सजनी
कब आवैं महाराज।
मोर पपइया बोले
कोयल मधुरे साज।
उमग्यौ इन्द्र चहूँ दिसि बरसै
दामिण छोड़ी लाज।
धरती रूप नवा-नवा धरिया
इन्द्र मिलण के काज।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर
बेगि मिलो महाराज।

—मीरा

लाये कौन सन्देश नये घन
अम्बर गर्वित
हो आया नत
चिर निस्पन्द हृदय में उसके
उमड़े री पुलकों के सावन !
चौंकी निद्रित
रजनी अलसित
श्यामल पुलकित कम्पित कर में
दमक उठे विद्युत् के कङ्कण ।

× × ×

सुख दुख से भर
आया लघु उर
मोती से उगले जल कण से
छाये मेरे विस्मित लोचन ।

—महादेवी

अथवा—

पिक की मधुमय वंशी बोली,
नाच उठी सुन अलिनी भोली,
अरुण सजल पाटल बरसाती
तम पर मृदु पराग की रोली
मृदुल अंक धर दर्पण सा सर
आँज रही निशि दृग इन्दीवर ।
जीवन जलकण से निर्मित सा
चाह इन्द्र धनु से चित्रित सा
सजल मेघ सा धूमिल है जग
चिर नूतन सकरुण पुलकित सा
तुम विद्युत बन आओ पाहुन
मेरी पलकों पर पग धर-धर ।

महादेवी की भावाभिव्यक्ति पर भी मीरा का प्रतिबिम्ब स्पष्ट देख पड़ता है । उदाहरणार्थ—

सखी मेरी नींद नसानी हो ।
पिय को पन्थ निहारत सिगरी रैण बिहानी हो । —मीरा

पथ देख बितादी रैन मैं प्रिय पहचानी नहीं।

—महादेवी

पपइया रे पिय की वाणी न बोल।

—मीरा

मुखर-पिक हौले-हौले बोल।

—महादेवी

पतियाँ मैं कैसे लिखूँ लिखियो न जाय।
कलम धरत मेरो कर काँपत है नैनन है झरलाय॥

—मीरा

कैसे सन्देश प्रिय पहुँचाती।
दृग जल की सित मसि है अक्षय
मसि प्याली झरने तारक द्वय
पल-पल के उड़ते पृष्ठों पर
सुधि से लिख साँसों के अक्षर
मैं अपने ही बेसुधपन में
लिखती हूं कुछ कुछ लिख जाती।

—महादेवी

मीरा अपनी भावाकुलता में पूछती है—

'शूली ऊपर सेज पिया की
किस विधि मिलना होय।'

महादेवी चिन्तन के द्वारा निष्कर्ष पर पहुँच जाती हैं—

'क्या हार बनेगा वह जिसने
सीखा न हृदय बिंधवाना।'

पन्त और महादेवी

—शान्तिप्रिय द्विवेदी

['पंत की कविता ने सौन्दर्य का अबोध कैशोर्य्य लिया है, महादेवी की कविता ने वेदना का दग्ध यौवन । पंतके सौन्दर्य में अनजान मधुरता है, महादेवी की वेदना में सजग दार्शनिकता । शरीर की परिधि में बँधकर भी ये निःशरीर अनुभूतियों के कवि हैं—अलौकिक आनन्द और अलौकिक वेदना के ।

महादेवी जिस समष्टि तक दुःख के माध्यम से पहुँचना चाहती हैं, पंत उस समष्टि तक सुख के माध्यम से । इसीलिए महादेवी में एक उत्फुल्ल विषाद है, पंत में एक प्रसन्न आह्लाद ।']

पन्त और महादेवी, अब तक की खड़ी बोली की कविता के सार-अंश हैं—सौन्दर्य और वेदना ।

कला के भीतर से इतिहास ने जीवन की एक परिणति ली है पन्त में, एक परिणति महादेवी में । 'युगान्त' से पूर्व पन्त मध्ययुग के सम्पन्न वर्ग की भावुकता के कवि हैं, जिसकी रीतिकालीन रसिकता आज प्रकृति के गवाक्षों में भी झाँकने लगी है—अलमोड़ा, नैनीताल, मंसूरी, शिमला । पन्त ने उस भावुक समाज को कवि-दृष्टि की उज्ज्वलता दे दी है । रीति-काल में प्रकृति के ऊपर कुहरे की तरह पड़े हुए तामसिक आवरण को हटाकर पन्त ने प्रकृति की स्वच्छ आत्मा दिखला दी है । महादेवी ने उस आत्मा में परमात्मा का आभास दिया है, भक्तिकाल के अन्तःस्पर्श से । पन्त ने व्यक्त प्रकृति का उज्ज्वल मुख दिखला दिया है, महादेवी ने उस मुख को उसके अव्यक्त हृदय की विकलता से मुखर कर दिया है ।

पन्त की आत्मा (प्रकृति) अपनी व्यथा में मूक है, उसका बाह्य क्रीड़ा-

कलरव 'मूक व्यथा का मुखर भुलाव' है, किन्तु महादेवी ने उस 'मूक व्यथा' को ही वेदना की कल्याणी वाणी दे दी है।

शृंगारिकता दोनों की ही कविता में नहीं है, बाह्य शृंगार उनके चित्र के फ्रेम मात्र हैं, जैसे कबीर या मीरा के पदों में शृङ्गारिक रूपक। पन्त की कविता ने सौन्दर्य का अबोध कैशोर्य्य लिया है, महादेवी की कविता ने वेदना का दग्ध यौवन। पन्त के सौन्दर्य में अनजान मधुरता है, महादेवी की वेदना में सजग दार्शनिकता। शरीर की परिधि में बँधकर भी ये निःशरीर अनुभूतियों के कवि हैं—अलौकिक आनन्द और अलौकिक वेदना के।

महादेवी के शब्द—'दुःख मेरे निकट जीवन का ऐसा काव्य है जो सारे संसार को एक सूत्र में बाँध रखने की क्षमता रखता है। हमारे असंख्य सुख हमें चाहे मनुष्यता की पहली सीढ़ी तक भी न पहुँचा सकें किन्तु हमारा एक बूँद भी जीवन को अधिक उर्वर बनाये बिना नहीं गिर सकता। मनुष्य सुख को अकेला भोगना चाहता है। परन्तु दुःख सबको बाँटकर—विश्वजीवन में अपने जीवन को, विश्ववेदना में अपनी वेदना को इस प्रकार मिला देना जिस प्रकार एक जल-बिन्दु समुद्र में मिल जाता है, कवि का मोक्ष है।'—महादेवी इसी मोक्ष को लेकर चली हैं। इसी प्रसंग में वे पुनः कहती हैं--'मुझे दुःख के दोनों ही रूप प्रिय हैं, एक वह जो मनुष्य के संवेदनाशील हृदय को सारे संसार से एक अविच्छिन्न बंधन में बाँध देता है और दूसरा वह जो काल और सीमा के बन्धन में पड़े हुए असीम चेतन का क्रन्दन है।' महादेवी की कविता में इस दुःख का दूसरा रूप साकार है, इसीलिए उनकी वेदना अलौकिक है। दुःख का पहला रूप अब उनके संस्मरणों में आ रहा है। ठीक इसके विपरीत पन्त आह्लाद (सौन्दर्य-प्रेम) के कवि हैं।

पन्त का सौन्दर्य जितना अबोध है, उस सौन्दर्य का प्रेम भी उतना ही अबोध है। पन्त जी ने एक बार प्रसंग-वश अपनी रचनाओं के सम्बन्ध में लिखा था—"मैं किशोर-प्रेम का ही प्रायः चित्रण करता हूं। 'लाई हूँ फूलों का हास, लोगी मोल लोगी मोल ?' में क्या लाया या लोगी नहीं लिखा जा सकता था ? 'वीणा' में ऐसी कई कविताएँ हैं। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि प्रेम की प्रारम्भिक उद्रेक पवित्र होने के कारण, उसमें यौन-तत्त्व न रहने या अव्यक्त रहने के कारण, किशोर- किशोरियों में सजातीय प्रेम ही—लड़की का लड़की के प्रति, लड़के का लड़के के प्रति—पहले उन्नत

होता है। वह प्रेम यौन-संसर्ग छोड़कर और सभी रूपों में चुम्बन, परिरम्भण, विरह आदि में अभिव्यक्त पाते देखा जाता है। उसमें न आस्कर वाइल्ड की गन्ध है न सैफो के 'Lesbianism' की।"

पन्त का यह सौन्दर्य-प्रेम विश्व की सीमा में रहकर भी अलौकिक हो गया है, जैसे जीवन की सीमा में शैशव।

पन्त का ये दृष्टिकोण 'गुन्जन' तक यत्र-तत्र चला आया है, इसके बाद 'गुन्जन' से ही परिणत वयकी अनुभूतियाँ भी कुछ-कुछ अग्रसर हो गई हैं— 'आज रहने दो यह गृहकाज' कैशोर्य्य के बाद यौवन का उद्‌बोध सूचित करता है।

पन्त में पहले जीवन के प्रति न आसक्ति थी; न विरक्ति थी; केवल सहज अनुरक्ति थी। आज वह जीवन की आसक्ति की ओर चला गया है। पन्त ने जीवन का प्रारम्भ आध्यात्मिकता से नहीं, बल्कि भौतिक सरलता से किया था, काल-क्रम से उसने यौवन की वक्रता भी स्वीकार कर ली। किन्तु उनका शैशव, उसका यौवन जड़ नहीं, चैतन्य है; इसीलिए वह पशु आकांक्षाओं में आबद्ध नहीं, बल्कि हृदय की सहज वृत्तियों के छन्दों में बँधा है। महादेवी जिस समष्टि तक दुःख के माध्यम में पहुँचना चाहती हैं, पन्त उस समष्टि तक सुख के माध्यम से। इसीलिए जब कि महादेवी में एक उत्फुल्ल विषाद है, पन्त में एक प्रसन्न आह्लाद। पन्त में महादेवी की- सी आध्यात्मिक दार्शनिकता तो नहीं है, किन्तु एक भौतिक दार्शनिकता अवश्य है। 'परिवर्तन' में एक बार उस दार्शनिकता ने एक रूढ़ आध्यात्मिकता की ओर जाने का प्रयत्न किया था, किन्तु उससे सन्तोष न होने के कारण 'युगान्त' और 'ज्योत्स्ना' से उसने भौतिक सतह पर ही एक नवीन संस्कृति की दार्शनिकता का संकेत ग्रहण कर लिया। यह संस्कृति न जड़ है, न चेतन है; दोनों का एकीकरण है। न दैवी है, न आसुरी; यह है मानुषी।

इधर महादेवी को हम 'नीहार' से देखते हैं कि उनका कवि शुरू से ही एक आध्यात्यिक दर्शन लेकर चला है। सूफी कवियों जैसा प्रणय का रूपक बाँधकर (ऐहिक सीमा से परिचय जोड़कर) जीवन को कबीर की अतीन्द्रियता और बुद्ध की करुणा के योग से असीम की ओर उन्मुख कर दिया है, लोक को लोकोत्तर बना दिया है। बुद्ध की करुणा ने उन्हें वेदना की व्यापक अनुभूति दी है, लोक-सृष्टि के साथ एक आत्मीयता स्थापित करा दी है तो कबीर की अतीन्द्रियता ने उन्हें असीम के प्रति जागरूक

भी कर दिया है। सूफी पद्धति के रूपक का कारण स्वामी रामतीर्थ का मधुर आध्यात्म है। पन्त और महादेवी की दार्शनिक दिशाओं का अन्तर हम थोड़े में बड़ी स्पष्टता से ग्रहण कर लेंगे यदि हम स्वामी विवेकानंद और स्वामी रामतीर्थ को सामने रखेंगे। विवेकानंद के लिए आध्यात्मिकता एक उच्च माध्यम है लोक-संग्रह के लिए; रामतीर्थ के लिए लोक-संग्रह एक सीमित माध्यम है आध्यात्मिक जीवन के लिए। लोकसंग्रह का पथ दोनों ने ही अपनाया है किंतु दोनों के लक्ष्य की दिशाएँ भिन्न हैं। इसके लिए हम दोनों कवियों की फिलासफी देख सकते हैं। पंत की फिलासफी 'गुञ्जन' में है, महादेवी की फिलासफी 'रश्मि' में। दोनों कवियों की ये कृतियां वह काव्य-केन्द्र हैं, जहाँ से हम इनके समस्त काव्य की आत्मा में झांक सकते हैं।

मुख्यतः 'पल्लव', अंशतः उसके बाद की कृतियों में पंत वस्तुजगत् की सूक्ष्मता (भाव-जगत) की ओर उन्मुख थे, जब कि महादेवी शुरू से ही भाव-जगत से भी आगे की सूक्ष्मता (अन्तर्जगत) की ओर उन्मुख हैं। पन्त पहिले जड़ के चैतन्य स्वरूप की ओर थे, महादेवी चैतन्य के अन्तः-स्वरूप की ओर।

कविता में महादेवी आज भी वहीं हैं, जहाँ कल थीं; किन्तु पन्त जहाँ कल थे वहाँ से आज की ओर बढ़ गये हैं। आज उन्होंने 'युगवाणी' दी है, समाजवाद की बाइबिल; महादेवी ने छायावाद की गीता दी है—'यामा'। पन्त की जो अनुभूतियाँ पहिले निःशरीर थीं वे अब शरीरस्थ हो गई हैं। पन्त ने पहिले अपने जिस चेतन (भाव-जगत्) के जड़रूप (वस्तुजगत्) को छोड़ दिया था, आज उन्होंने उसी को चेतन का आधार बना लिया है। आवश्यकता की दिशा में वे प्रगतिशील हैं, किन्तु आधार की दिशा में वे अपनी ही पूर्व-सीमा से पीछे गये हैं, यथा काव्य (भाव) से गद्य (यथार्थ) की ओर। यद्यपि जड़-चेतन के संयुक्तीकरण की तरह वे गीत और गद्य के समन्वय से गीत-गद्य लिख रहे हैं; किन्तु आज वे मुख्यतः गद्योन्मुख हैं। अपने द्वारा सम्पादित 'रूपाभ' के प्रथम अंक में इस दिक्परिवर्तन का थोड़े ही शब्दों में पन्त ने बड़ा ही मार्मिक कारण दिया था—

'कविता के स्वप्न-भवन को छोड़कर हम इस खुरदुरे पथ पर क्यों उतर आये......! इस युग में जीवन की वास्तविकता ने जैसा उग्र आकार धारण कर लिया है, उससे प्राचीन विश्वासों में प्रतिष्ठित हमारे भाव और कल्पना के मूल हिल गये हैं। श्रद्धा-अवकाश में पलनेवाली संस्कृति का वातावरण

आंदोलित हो उठा है और काव्य की स्वप्नजड़ित आत्मा जीवन की कठोर
आवश्यकता के उस नग्न रूप से सहम गई है। अतएव इस युग की कविता
स्वप्नों में नहीं पल सकती। उसकी जड़ों को अपनी पोषण-सामग्री ग्रहण
करने के लिए कठोर धरती का आश्रय लेना पड़ा है। और युगजीवन ने उसके
चिरसञ्चित सुखस्वप्नों को जो चुनौती दी है उसको उसे स्वीकार करना पड़
रहा है।'

आज पन्त ने युग की वास्तविकता का आमन्त्रण अवश्य स्वीकार कर
लिया है, किन्तु वस्तुजगत् का प्रतिनिधि न होकर अपने ही भाव-जगत् का
प्रतिनिधि रहकर।

शुरू से ही पन्त की एक ही टेक है—सौन्दर्योल्लास। 'पल्लव' के जिस
कवि ने कहा था—

अकेली सुन्दरता कल्याणि !
सकल ऐश्वर्यों की सन्धान।

'युगान्त' में उसी कवि ने यह छवि-चित्र भी दिया है—

आह्लाद, प्रेम औ' यौवन का
नव स्वर्गः सद्य सौन्दर्य्य-सृष्टि,
मञ्जरित प्रकृति, मुकुलित दिगन्त,
कूजन-गुञ्जन की व्योम-वृष्टि !

वस्तुजगत् के आधार-पट पर पन्त इसी भाव-जगत् को प्रतिफलित देखना
चाहते हैं। पहिले वे जिस जीवन-सौन्दर्य्य के कवि थे आज वे उसी सौन्दर्य
के वैरूप्य (कुरूपता) के संशोधक हैं।

पन्त ने पहिले छायावाद की ललित कला दी थी, आज वे समाजवाद
की वस्तुकला दे रहे हैं। पहिले उन्होंने 'भू-पलकों पर स्वप्नजाल-सी' छाया
का रेशमी संसार बुन दिया था, आज वे भू-पृष्ठों पर जीवन के स्थापत्य के
कठिन उपकरण चुन रहे हैं। आज वे सौन्दर्य के नये आकार और जीवन के
नये नीड़ की रचना कर रहे हैं।

हाँ, युग के द्वार पर उन्होंने जीवन-व्यस्त वैज्ञानिक होकर नहीं, बल्कि
जीवन-मुग्ध कवि होकर अपनी उपस्थिति दी है। आज उनकी भाषा बदल
गई है, अभिव्यक्ति बदल गई है, दिशा बदल गई है, किन्तु 'अभिव्यक्त' वही
है जिसे कल तक वे अपने भाव-काव्यों में देते आये हैं। पहिले जिस भाव-
जगत् में वे काव्यके माध्यम से गये थे, आज उसी भावजगत् में भूगोल, इति-
हास और विज्ञान के माध्यम से जाना चाहते हैं। कुछ अंशों में वे दर्शन को

भी अपनाते हैं, गान्धीवाद के रूप में। पन्त पहिले केवल सौन्दर्य्य को लेकर चले थे, आज वे सौन्दर्य्य और संस्कृति दोनों को लेकर चल रहे हैं। उनके सौन्दर्य्य का आधार समाजवाद (भौतिक दर्शन) है, उनकी संस्कृति का आधार गान्धीवाद (आध्यात्मिक दर्शन)। विज्ञान और ज्ञान के योग से वे जीवन का एक सन्तुलित सौन्दर्य्य देना चाहते हैं। किन्तु सम्प्रति पन्त समाजवाद की ओर ही विशेष उन्मुख हैं, कारण, जो भावजगत् आज संकट-ग्रस्त हो गया है, अभावों में जिसकी इतिश्री हो रही है, पहिले उसका उद्धार चाहते हैं, सूक्ष्म को स्थूल का आधार देकर। आज वे भावों को शब्दों में नहीं, जीवन में साकार देखना चाहते हैं; वस्तुजगत् को ही भाव-जगत् बना देना चाहते हैं। इसीलिए पन्त ने जीवन की कलात्मक व्यञ्जना के लिए वस्तुजगत् का आधार-पट ले लिया है। आज पन्त को वह सब कुछ चाहिये जिससे मनुष्य जी जाय, वस्तुजगत् खिल जाय। मनुष्य के जीने और वस्तु-जगत् के खिलने में ही जीवन और सौन्दर्य्य का अस्तित्व है। अन्यथा, आज मनुष्य मृत होता जा रहा है, वस्तुजगत् लुप्त होता जा रहा है—

'कहाँ मनुज को अवसर
देखे मधुर प्रकृति-मुख ?
भव अभाव से जर्जर
प्रकृति उसे देगी सुख ?'

—('युगवाणी')

यह उसी कवि का प्रश्न है जिसने स्वयं एक दिन हमारे काव्य-साहित्य में प्रकृति-सुषमा की चारु चित्रशाला सजा दी थी। आज वह अपनी ही सृष्टि को निराधार पा रहा है। 'पल्लव' के सुकुमारतम कवि का 'युगवाणी' की ओर आना ही युग की करालता का सबसे बड़ा प्रमाण है। कहाँ वह कोमल कलकण्ठ, कहाँ यह विकल युग ! ओस के मृदु स्पर्श से ही सिहर जाने वाले फूल को भी आज पत्थर का भार उठाना पड़ा है।

छायावाद के कवि जब कि वस्तुजगत् की विषमता में ही अपना भाव-जगत् स्थापित करना चाहते हैं, पन्त उस विषमता से जर्जरित वस्तुजगत् में एक स्वस्थ युग देखना चाहते हैं। इसीलिए वे 'आम्र विहग' (युगवाणी) शीर्षक कविता में मानो छायावादी कवियों को सम्बोधन कर कहते हैं—

हे आम्र विहग !—
तुम ताम्र सुभग
नव पर्णों में

छिप कर उँड़ेलते कणों में]
मञ्जरित मधुर
स्वर-ग्राम प्रचुर
उन्मुक्त नील...
तुम पंख ढील
उड़ उड़ सलील
हो जाते लय
निःसीम शान्ति में चिर सुखमय;—
जब नीड़-निलय में रुद्ध हृदय
हो उठता पीड़ातुर अतिशय।

❀ ❀ ❀

हे आम्र विहग!
तुम सुनो सजग,—
जग का उपवन
मानव जीवन
है शिशिर-ग्रस्त
बहु व्याधि त्रस्त
ये जीर्ण शीर्ण, चिर दीर्ण पर्ण
जो स्रस्त, ध्वस्त, श्रीहत, विवर्ण,
क्षय हों समस्त
युग सूर्य अस्त।

[२]

पन्त और महादेवी छायावाद की कविता के दो विशेष कलाधर हैं। मध्यकाल की काव्यचेतनाओं को इन्होंने नूतन रूप-रंग और वाणी दी है। प्रकृति के मनोहर व्यक्तित्व का परिचय पन्त ने दिया, प्रकृति को पुरुष पुरातन का दिव्य परिचय महादेवी ने। प्रकृति का उल्लास पंत में है; प्रकृति का उच्छ्वास महादेवी में। पन्त की कविता में प्रकृति एक बालिका की तरह खेलती है महादेवी की कविता में प्रकृति विरहिणी की तरह अपने को निवेदित करती है। एक में क्रीड़ा है, दूसरे में पीड़ा। फलतः दोनों की अभिव्यक्तियों का रुख-मुख एक दूसरे से भिन्न है। अभिव्यक्तियों में अन्तर होते हुए भी दोनों ललित कला के ही कवि हैं—चित्रकला और संगीतकला के संयोग से इन्होंने काव्य (भाव) कला की कमनीय रचना की है। यद्यपि कला का

विश्वविद्यालय दोनों का एक है, किन्तु उनके जीवन की 'थीसिस' अलग-अलग है।

खड़ी बोली को काव्योचित भाषा देने का एकच्छत्र श्रेय पन्त को है। यदि पंत का कवि नहीं आया होता तो आज छायावाद की कविता अपनी कोमल अभिव्यक्ति के लिए ब्रजभाषा को अपना लेती। ब्रजभाषा ने मध्य-युग से लेकर अभी कल तक जो कल-कोमल प्राञ्जलता, मनोहर चित्रचारुता प्राप्त की थी उसे पन्त ने अपने कुल बीस-पचीस वर्षों के काव्य-जीवन में ही खड़ी बोली को दे दिया। भाषा के परिमार्जन में पन्त का महत्त्व इसलिए और भी बढ़ जाता है कि ब्रजभाषा को मधुर बनाने के लिए अढ़ाई-तीन सौ वर्षों के बीच में एक के बाद एक सैकड़ों कवियों का सहयोग मिलता गया किन्तु पन्त को अकेले ही खड़ी बोली का सौन्दर्य-विन्यास करना पड़ा है। उन्होंने खड़ीबोली को जो व्यक्तित्व दे दिया है उसका अतिक्रम कर आज भी कोई आगे नहीं जा सका है।

पन्त ने जिस खड़ीबोली को रमणीयता दी, महादेवी ने उसे मार्मिकता देकर प्राण-प्रतिष्ठा कर दी। ताजमहल के भीतर उन्होंने दीपक जला दिया। भाषा के सौन्दर्य्य में पन्त बेजोड़ हैं, अभिव्यक्ति की मार्मिकता में महादेवी। उधर प्रसाद और निराला ने छायावाद को प्रबन्धात्मक व्यक्तित्व दे दिया है, द्विवेदीयुग के 'पद्य-प्रबन्ध' की चरम उत्कर्ष। इधर पन्त और महादेवी ने छायावाद के मुक्तक को एक निश्चित व्यक्तित्व दे दिया है। द्विवेदी-युग की 'झंकार' को इनके द्वारा सार्थकता प्राप्त हो गई है। ब्रजभाषा में जैसे मुक्तक का एक टकसाली रूप बन गया, वैसे ही पन्त और महादेवी की कविताओं से छायावाद के मुक्तक का भी। नये-नये कवि उन्हीं के मॉडल पर अपनी रचना करने लगे। द्विवेदी-युग की खड़ीबोली में यह श्रेय गुप्तजी की कविताओं को प्राप्त था। कुछ अंशों में माखनलाल, प्रसाद और निराला को भी यह श्रेय दिया जा सकता है, किन्तु इनकी कला को सम्मान देकर भी नवयुवकों ने पन्त और महादेवी की कला को ही अधिक मनोयोग से अपनाया। गुप्तजी के बाद माखनलाल, माखनलाल के बाद प्रसाद, प्रसाद के बाद पन्त, पन्त के बाद महादेवी की लोकप्रियता अधिक बढ़ी। नवयुवक भावोच्छल होते हैं, वे तरलता अधिक चाहते हैं। तरलता के लोभ में वे सुरुचि को भी छोड़ बैठते हैं, इसी कारण उर्दू शायरी को भी अपना बैठते हैं। महादेवी की तरलता में एक आश्चर्य कवित्व है, उसने नवयुवकों को रोमांस का मनोहर संयम दिया है। महादेवी की कविता उन्हें मानो अपने ही जी की गहरी बात-सी लगती

है, वे उसे अपना अन्तःकरण दे देते हैं। सच तो यह है कि महादेवी की कविताओं के कारण ही हिन्दी में उर्दू भावुकता की लोकप्रियता घट गई है।

मुक्तक के क्षेत्र में पन्त और महादेवी में उतना ही अन्तर है जितना सूर और मीरा में। पन्त मुख्यतः वर्णनात्मक है, महादेवी मुख्यतः उद्गारात्मक। साथ ही एक में सूर जैसा सख्यभाव है, दूसरे में मीरा जैसा माधुर्य्य भाव। साथ ही बड़ी कहानियों और छोटी कहानियों की तरह इनकी कविताओं को हम दीर्घ मुक्तक और संक्षिप्त मुक्तक भी कह सकते हैं। पन्त में भावों का विशद प्रसार है, महादेवी में हृदय का संक्षिप्त संकलन। पन्त ने उद्यान दिया है, महादेवी ने पुष्पस्तवक। पन्त की यह बहुत बड़ी खूबी है कि भावों का विशद क्षेत्र लेकर भी अपनी कविता के 'पल्लव' और 'गुंजन' में सौंदर्य्य (भाषा) और माधुर्य्य (रस) का ताल और स्वर की तरह सन्तुलन बनाये रखा है। यह बड़े सधे हुए हाथों का काम है। काव्यकला की यह साधना अन्यत्र दुर्लभ है, इसी साधना में पन्त की लोकप्रियता छिपी है।

छायावाद के मुक्तकों में एक नई विशेषता रिपीटीशन की आई है। इस दिशा में अधिकांश कवियों ने पुराने कवियों की-सी टेक ही अपनाई है, किन्तु पन्त ने कविता में रिपीटीशन का उपयोग विशेष कलात्मक रुप से किया है और बहुत अच्छा किया है। पन्त का रिपीटीशन उस संगीत की तरह है, जो सब कुछ बजाकर अपनी अंतिम ताल में प्रथम ताल को छू देता है। उनके रिपीटीशन से कविता में मर्मव्यंजकता आ जाती है। फिर भी संगीत पन्त का लक्ष्य नहीं है। पन्त में चित्रकला प्रधान है, महादेवी में संगीत-कला। संगीत पन्त का माध्यम है, चित्र महादेवी का पन्त की कविता चित्र की रेखाओं जैसी पुष्ट है, महादेवी की कविता-संगीत के प्रवाह जैसी तरल। पन्त की कविता आकुंचित है, महादेवी की कविता आस्फालित। निराला की कविता के पदविन्यास में तो आकुंचन है कन्तु भावों में आस्फालन है। प्रसाद की कविता में केवल एक श्लथ स्फालन।

आज तो पन्त संगीत को छोड़ चले हैं, किन्तु महादेवी उसकी टेक बनाये हुई हैं। गीतिकाव्य को महादेवी से विशेष गौरव मिला है। आचार्य शुक्ल जी के शब्दों में—'गीत लिखने में जैसी सफलता महादेवी जी को हुई वैसी और किसी को नहीं। न तो भाषा का ऐसा स्निग्ध और प्राञ्जल प्रवाह और कहीं मिलता है, न हृदय की ऐसी भाव-भंगी। जगह-जगह ऐसी ढली हुई और अनूठी व्यंजना से भरी हुई पदावली मिलती है कि हृदय खिल उठता है।'

पन्त और महादेवी की कला और जीवन में बड़ा भारी अन्तर यह है कि

शुरू से ही पन्त साकारता की ओर उन्मुख रहे हैं, महादेवी निराकारता की ओर। पन्त कहते हैं—

राशि राशि सौंदर्य, प्रेम,
आनन्द, गुणों का द्वार,
मुझे लुभाता रूप, रंग,
रेखा का यह संसार। —('युगवाणी')

महादेवी कहती हैं—

विकसते मुरझाने को फूल
उदय होता छिपने को चन्द
शून्य होने को भरते मेघ
दीप जलता होने को मन्द;
यहाँ किसका अनन्त यौवन ?
अरे अस्थिर छोटे जीवन !

पन्त कहते हैं—

सच है, जीवन के वसन्त में
रहता है पतझार,
वर्ण-गन्धमय कलि-कुसुमों का
पर ऐश्वर्य्य अपार।

'पल्लव' में भी पन्त ने कहा था—

म्लान कुसुमों की मृदु मुसकान
फलों में फलती फिर अम्लान,
महत् है, अरे, आत्मबलिदान,
जगत केवल आदान-प्रदान।

महादेवी ने जिस सत्य को 'एक मिटने में सौ वरदान' कहकर जीवन का आध्यात्मिक दर्शन दिया था, पन्त ने उसी सत्य को जीवन का भौतिक दर्शन दे दिया है। आज पन्त के कलात्मक टेकनिक भले ही बदल गये हों, किन्तु मूलतः आज पन्त का दृष्टिकोण वही है जो उनके पूर्वकाव्यों में। हाँ, उनका दृष्टिकोण पहिले भावात्मक था, अब व्यावहारिक हो गया है।

महादेवी स्थूलता से सूक्ष्मता की ओर हैं—शरीर से मूर्त्ति, मूर्ति से चित्र, चित्र से संगीत (आत्मा)। पन्त सूक्ष्मता से स्थूलता की ओर—संगीत से चित्र, चित्र से मूर्त्ति, मूर्त्ति से शरीर (माँसलता)।

पन्त पहिले जीवन का स्थूल पार्थिव दृष्टिकोण रखते हुए भी कला की

सूक्ष्मता की ओर थे, आज वे पार्थिव दृष्टिकोण के साथ ही पार्थिव कला की ओर भी आ गये हैं। आज तूलिका और लेखनी का स्थान छेनी और कुदाली ने ले लिया है, रूप-रंग का स्थान रक्त-माँस ने।

'युगान्त', 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' उनकी इस नई दिशा की काव्य-कृतियाँ हैं। इन कृतियों से पन्त की रचनाओं का उत्तरार्द्ध बनता है। इनके पूर्व की कृतियाँ ('वीणा', 'ग्रन्थि', 'पल्लव', 'गुञ्जन') उनके पूर्वार्द्ध में हैं।

पहिले उन्होंने चित्रकला दी थी, आज वे भास्कर-शिल्प भी दे रहे हैं। युग जिस माँसल मनुष्य को जन्म देने जा रहा है, वे उसी की मूर्त्ति गढ़ रहे हैं, जीवन के रूक्ष किन्तु अनिवार्य्य उपकरणों को लेकर। उनका यह शिल्प अभी प्राथमिक अवस्था में है, अभी वे नई कला की संगतराशी कर रहे हैं। जब यह कला भी मूर्तिमन्त होगी तब उसी तरह भली लगने लगेगी जैसे द्विवेदी-युग के बजाय छायावाद की कविता। इसके लिए भी कुछ समय अपेक्षित है। आज पन्त की कविता में जो रूक्षता है वह पन्त के कवि की नहीं, बल्कि काव्य के नये उपकरणों की रूक्षता है। 'घननाद' में ठङ् ठङ् ठङ् ही तो सुना जा सकता है।

जीवन के प्रहर्ष (भाव-जगत् के अबोध उल्लास) में पन्त का जो कवि सुकुमार था, आज वह जीवन के संघर्ष (युग के जागरण) में परुष हो गया है। इसीलिए जीवन के शैशव में सौन्दर्य्य-जगत् को देखने का जो दृष्टिकोण था, वह जीवन के तारुण्य में बदल गया है। आज उनकी कला बदली है, दृष्टिकोण बदला है, किन्तु लक्ष्य उनका भी एक नवीन भावजगत् है जो आज के अभावों का भावी स्वप्न है।

आज पन्त ने जीवन के कठोर सत्यों की कला ली है; आज वे लहरों पर नहीं, पत्थरों पर कला को गढ़ रहे हैं। जीवन को पन्त फिर उसके अथ से उठा रहे हैं, अब तक के इतिहासों को छोड़कर मानो एक नये प्रस्तर-युग से जीवन का प्रारम्भ कर रहे हैं, उसे अर्थ, धर्म, कला और संस्कृति का नया परिचय देने के लिए। उनकी फिलासफी, उनकी आकांक्षा, उनकी निर्माण-कला 'युगवाणी' में पुञ्जीभूत है।

[२]

'युगान्त' से पन्त हिन्दी-कविता का एक युग पीछे छोड़ते हैं, एक युग आगे शुरू करते हैं। फलतः इसमें पिछले युग के प्रतीक-स्वरूप पन्त की ललितकला की भी एकाध कविताएँ हैं और अधिकांशत: नये युग की वस्तु-कला की। 'गुञ्जन' से ही पन्त ने वस्तुकला की साधना शुरू कर दी थी

और आश्चर्य्य कि उसमें उन्हें प्रारम्भ से ही बड़ी परिष्कृत सफलता मिली। 'युगान्त' में 'गुन्जन' की ललित और वस्तुकला का संक्षिप्त। 'गुन्जन' में ये दोनों कलाएँ अलग-अलग कविताओं में अलग-अलग हैं, किन्तु 'युगान्त' में पन्त ने प्रायः इनका एकीकरण करने का यत्न किया है। सब मिलाकर 'युगान्त' में ललितकला के साथ वस्तुकला गौणरूप में सम्मिलित है। किन्तु 'युगवाणी' में इसका वैपरीत्य है, उसमें वस्तुकला की प्रधानता है, ललित कला गौणरूप में सम्बद्ध है। 'ग्राम्या' में उनकी वस्तुकला निखर गई है, उसमें भास्कर-शिल्प ने कलात्मक मूर्त्तिमत्ता पा ली है। उसमें समाजवाद की मुक्तक-कला एक अवस्थान पा गई है। 'ग्राम्या' पन्त के गन्तव्य का प्रारम्भ है. जैसे छायावाद की कला में 'वीणा'।

मूर्त्तिकला के निर्माण में पन्त का आदर्श चित्रकला है। उसी के 'मॉडल' पर वे अपनी मूर्त्तियों की रचना करते हैं। यों कहें कि छायावाद की ललित कला गाद्यिक उपकरणों को लेकर पन्त द्वारा ठोस बन रही है। कविता के बाद जिस प्रकार रविबाबू ने चित्रकला की रचना की, उसी प्रकार पन्त ने छायावाद की चित्रकला के बाद समाजवाद की मूर्त्तिकला की। चित्रकला में जिस प्रकार रविबाबू अपनी काव्यकला को नहीं भूल सके, उसी प्रकार पन्त अपनी चित्रकला को मूर्त्तिकला का आधार पाकर उनकी चित्रकला सुदृढ़ हो गई है। जिस प्रकार चित्रकला में भाव गतिशील रहते हैं, उसी प्रकार पन्त की मूर्त्तिकला में चित्र गतिशील हो गये हैं, निश्चल मूर्त्ति ही नहीं। 'युगवाणी' में 'गंगा की साँझ', 'जलद', 'प्रलय-नृत्य' इसके उदाहरण हैं। भविष्य के स्वप्नों में बैठकर 'युगवाणी' में यत्र-तत्र पन्त ने ललितकला का नवीन दृढ़ रूप भी दिया है, यथा, 'मधु के स्वप्न', 'पलाश', तथा अन्य प्राकृतिक चित्रों में।

'गुन्जन' से 'युगान्त' तक हम मुख्यतः कलाकार पन्त से ही परिचित रहे हैं। उनमें उनका विवेचक प्रच्छन्न रहा है। 'ज्योत्सना' में भी उनका कलाकार ही प्रमुख रहा है, विवेचक माध्यम। किन्तु 'युगवाणी' में विवेचक ही प्रमुख है, कलाकार माध्यम। इस भिन्नता के होते हुए भी 'युगवाणी' में वे ही भाव, विषय, आलम्बन और विचार हैं जो 'ज्योत्सना' में; दोनों के शरीरों में अन्तर है, शिराओं में नहीं;—वह रूप-नाट्य है, यह मुक्तक काव्य। उसमें गीत और गद्य हैं, इसमें गीत-गद्य। इस गीत-गद्य (युगवाणी) द्वारा पन्त की काव्यकला के कुछ नये टेकनिक सामने रखे हैं। पन्त की पिछली ललितकला में जो आकुंचन है, वही इस नई वस्तुकला में भी। पिछली कला में यदि

पन्त नवनीत की तरह जम गये हैं तो इस कला में बर्फ की तरह। पन्त में स्वभावत: आस्फालन नहीं है, यदि उनमें कहीं कुछ आस्फालन है तो वह उनकी जमी हुई तरलता का उन्मेष है। आस्फालन की कला के कवि निराला हैं। पन्त की आकुञ्चित कला छोटे से छोटे छंदों में चली गई है; निराला की स्फीत कला मुक्त छंद की ओर। पन्त की रुचि कला के 'शार्टकट' की ओर है, निराला की रुचि 'लांगडिजाइन' की ओर। पन्त एक सुस्त कलाकार हैं, निराला उद्‌बुद्ध।

'युगवाणी' में पन्त पहिली बार टेकनीशियन होकर आये हैं। अपनी ललितकला की रचनाओं में भी पन्त टेकनीशियन हैं, किन्तु उनमें काव्यात्मकता (रसात्मकता) इतनी प्रधान है कि उनके कलाकारिता को विरल करके हम नहीं देख पाते। 'युगवाणी' में काव्यात्मकता इतनी कम है कि उसमें उनका कला-प्रयोग छिप नहीं पाता।

'युगान्त' में पन्त निर्देशक कलाकार थे, 'युगवाणी' में व्याख्याता कलाकार, 'ग्राम्या' में दर्शक कलाकार। 'युगान्त' में पन्त ने अपने कवि को जगाया है, 'युगवाणी' में समुदाय को उद्‌बोधित किया है, 'ग्राम्या' में समुदाय के एक विशेष अंग को उपस्थित किया है। आगे ?

'युगान्त' में पन्त ने छायावाद की कला को अन्तिम श्री दी, 'युगवाणी' में उसको अवशेष-श्री (पतझर) दी, 'ग्राम्या' में 'युगवाणी' को चित्रवाणी दी। 'युगवाणी' में चित्रकला, मूर्तिकला का मॉडल रही है; 'ग्राम्या' में मूर्तिकला, चित्रकला में ढल गई है।

हिमालय की शोभा-श्री ने पन्त को कलाकार बनाया, काला-कॉकर के ग्राम्यजीवन ने उन्हें मानव-समाज के निकट पहुँचाया। अंशत: 'गुञ्जन' तक पन्त का एक काव्य-संस्कार पूर्ण हो जाता है, 'युगान्त' और 'युगवाणी' से नये काव्य-संस्कार, फलतः नये जीवन-संस्कार की पंत द्वारा लोकसाधना शुरू होती है। 'ग्राम्या' में आकर उस साधना ने अपनी पहिली सिद्धि प्राप्त कर ली है।

एक युग में 'पल्लव' के जिस भावप्रवण कवि को हम देख चुके हैं वही कवि इतने स्वाभाविक ग्राम्यचित्र भी दे सकता है, इस पर आश्चर्य इसलिए नहीं होता कि पंत में सभी तरह की कला की क्षमता है।

कला की दृष्टि से 'कर्मवीर' ने 'ग्राम्या' पर एक प्रकाश डाला था। उसी के शब्दों में—'ग्राम्या पके हुए धान से लहलहे खेत के समान है। उसमें ग्रामीण जीवन की आर्द्रता है। 'एस्थीट' कवि ने कई सुन्दर चित्र-राग

आलेखित किये हैं। भाषा और भी सरल, ओधवती और सजीव हो उठी है ; कई जगह ग्रामीण शब्दों का भी प्रयोग है जो 'लोकल कलर' उत्पन्न करता है।......'धोबियों का नाच', 'चमारों का नाच', 'कहारों का रुद्र-नर्तन', इफेक्ट की दृष्टि से अत्यन्त ललित चीजें हैं।......'भारतमाता' 'ग्रामवासिनी', 'अहिंसा', चरखा-गीत' सुन्दर संघगीत (कोरस) हैं।'

यद्यपि पंत 'ग्राम्या' में एक दर्शक कलाकार हैं, किन्तु 'युगवाणी' के उनके व्याख्याता व्यक्तित्व ने इसमें भी अपना कण्ठ मिला दिया है। एक चित्र देकर मानो चित्र-परिचय के रूप में कवि वक्तव्यकार हो गया है। कहीं-कहीं वह सुसंगत लगता है, किंतु कहीं-कहीं 'ग्राम्या' के चित्र-नियोजन 'मैजिक लैंटर्न लेक्चर' की सीमा में चले गये हैं। इसकी आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि चित्र अपनी सजीवता में स्वयं बोलते हैं।

पंत में जो आकार-प्रियता है वह चित्ररूप में 'ग्राम्या' में प्रकट हुई है। सार्वजनिक रूप में उनका वैयक्तिक असंतोष भी व्यक्त हुआ है।

'ग्राम्या' के नृत्य-चित्र उदयशंकर की याद दिलाते हैं। उदयशंकर के नृत्य, कला के क्षेत्र में एक पुरानी संस्कृति का प्रति करना चाहते हैं, किसी नवीन जीवन का नहीं। किंतु पंत के नृत्य-चित्र युग-सत्य का निर्देश करना चाहते हैं, एक नवीन जीवन के लिए। पुरानी क्षेत्र को लेकर पंत ने उसे देखने का अपना दृष्टिकोण स्वतंत्र रखा है, इसीलिए उन्हें वक्तव्य द्वारा अपने दृष्टिकोण को अवगत करना पड़ा है।

'ग्राम्या' की काव्यकला को हम 'युगांत' और 'युगवाणी' का संयोग कह सकते हैं, चित्र और वाणी का सहयोग। 'युगांत' में पंत ने नई कला के लिए चित्र-साधना की थी, 'युगवाणी' में उस कला के लिए शब्द-साधना। इन दोनों साधनाओं ने 'ग्राम्या' में संयुक्त होकर अपनी एक गति-विधि निश्चित कर ली है। सब मिलाकर 'युगवाणी' का वक्तव्य-प्राधान्य 'ग्राम्या' में कम हो गया। पंत कविता की ओर आ गये हैं, आगे पंत की कला इस नई कविता का क्या रूप धारण करेगी, यह अनुमेय है। ('ग्राम्या' के बाद उनकी ये पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं—'स्वर्णकिरण', 'स्वर्णधूलि', 'उत्तरा', 'युगपथ')।

[४]

'युगांत' में पंत मुख्यतः गांधीवाद की ओर थे, जीवन के चिन्तन में अंतर्मुख थे। उस समय पंत सृष्टि की सुन्दरता को आत्मा के भीतर से झाँक रहे थे, यथा,—

चित्रिणि ! इस सुख का स्रोत कहाँ
जो करता नित सौंदर्य-सृजन ?
'वह स्रोत छिपा उर के भीतर'
क्या कहती यही सुमन-चेतन ?

—('युगान्त' में 'तितली')

किंतु 'युगवाणी' से वह आत्मचिंतन आत्मा में ही केन्द्रित न रहकर शरीरधारी भी हो गया। फलतः आत्मा की कला शरीर की कला भी पा गई। किंतु 'युगवाणी' में भी पंत गांधीवाद को भूले नहीं हैं, उस पर उनकी एकांत श्रद्धा है, 'बापू' शीर्षक पहिली कविता कवि का आत्मोद्घाटन कर देती है, यद्यपि उसे 'युगवाणी' के प्रारम्भ का पूर्व-पृष्ठ देकर वे आज के द्वंदों को उसके आगे उपस्थित कर देते हैं, उसे मंदिर में छोड़कर जीवन के गृह-प्रांगण में आ जाते हैं। आज पंत सूक्ष्म चेतन (आत्मा) को सुन्दर आकार (समाजवाद) देने को अधिक उत्सुक हैं। विज्ञान ने जिस आत्मा को खण्डित कर दिया है, पंत ने उसी आत्मा को पुनर्जन्म देने के लिए नवीन मानवी मूर्तियाँ गढ़ दी हैं। आज भो वह सगुण-जगत् का ही कवि है, किंतु अब वह समाजवादी है, इसीलिए उसकी गठन बदल गई है।

आज के समाधानों को पाने के लिए कवि के 'पल्लव' में ही एक तड़फड़ाहट आ गई थी। कवि यही कहकर समाधान-हीन रह गया था—

दैव ! जीवन भर का विश्लेष, मृत्यु ही है निःशेष !!

यह कवि का पिछले आस्तिक समाज के भीतर निराश निश्वास था। 'युगान्त' से उसके भीतर एक नवीन आशा का सञ्चार हुआ, वह समाजवाद की ओर उन्मुख हुआ। 'युगान्त' के बाद 'युगवाणी' में कवि ने उसी नवीन आशा को शक्ति देने का प्रयत्न किया।

इस प्रकार युग का व्यक्तित्व ग्रहण कर लेने के बाद 'ग्राम्या' में कवि ने जीवन को समाजवादी निरीक्षण और गांधीवादी संरक्षण दिया। असल में पन्त न तो समाजवाद से विमुख हैं और न गांधीवाद से; वे दोनों के सम्मुख हैं। दोनों के भीतर जो सत्य हैं उन्हें स्वीकार करके दोनों की अपूर्णताओं की एक दूसरे से पूर्ति चाहते हैं, यों कहें, वे आत्मा की भूख भी मिटाना चाहते हैं और शरीर की भूख भी। मुख्यतः पन्त में आत्मा की भूख के लिए अधिक आस्था है, इसीलिए वे उसके प्रति प्रश्नोन्मुख होकर भी नतमस्तक हैं, ('ग्राम्या' की 'महात्माजी के प्रति' और 'बापू' शीर्षक कविताएँ इसकी सूचक हैं, साथ ही हम यह भी देखते हैं कि पन्त ने समाजवादी युग के किसी यन्त्र का स्वर न

सुनाकर 'चरखा' का स्वर ही सुनाया है)। 'युगवाणी' देकर भी पन्त 'संकीर्ण भौतिकतावादियों के प्रति' प्रश्न-सजग हैं—

'आत्मवाद पर हँसते हो रट भौतिकता का नाम ?
मानवता की मूर्त्ति गढ़ोगे तुम सँवार कर चाम ?'

पन्त शारीरिक आवश्यकताओं को स्वीकार करके भी उसी को प्रधान नहीं मान लेते, बल्कि आत्मवाद और भूतवाद के संयोजन से एक नवीन संस्कृति का उद्भव चाहते हैं, साथ ही मनुष्य की अनिवार्य्य शारीरिक भूख-प्यास के प्रति क्षमाशील दृष्टिकोण चाहते हैं—

मानव के पशु के प्रति
हो उदार नवसंस्कृति।—('युगवाणी')

पन्त जिस तरह संकीर्ण भौतिकवादियों को नहीं चाहते, उसी तरह संकीर्ण अध्यात्मवादियों को भी। ये दोनों अपने-अपने जिन सत्यों का लकीर पकड़कर चल रहे हैं, पन्त उन्हीं के ठीक अभिप्रायों का परस्पर समन्वय चाहते हैं। अभी तो ये दोनों 'अनमिल आखर' हो रहे हैं।

'ज्योत्स्ना' में पन्त ने उसी समन्वय को भविष्य के पलकों में इस प्रकार प्रत्यक्ष किया है—'पाश्चात्य जड़वाद की माँसल प्रतिमा में पूर्व के अध्यात्म प्रकाश की आत्मा भर एवं अध्यात्मवाद के अस्थिपिंजर में भूत या जड़ विज्ञान के रूपरंग भर हमने नवीन युग की सापेक्षतः परिपूर्ण मूर्ति का निर्माण किया।' और 'इसीलिए इस युग ('ज्योत्स्ना' में निर्दिष्ट भावी युग) का मनुष्य न पूर्व का रह गया है, न पश्चिम का रह गया है; पूर्व और पश्चिम दोनों मनुष्य के बन गये हैं।'

यह पन्त का सापेक्षिक दृष्टिकोण है। किन्तु पन्त का एक निरपेक्ष दृष्टिकोण भी है। वे अपनी दार्शनिक सूक्ष्मता मे बहुत ऊपर उठ जाते हैं। एक ओर तो सापेक्षिक दृष्टिकोण से वे यह कहते हैं—

'सुख दुःख के मधुर मिलन से
यह जीवन हो परिपूरन।'

दूसरी ओर उनका यह निरपेक्ष दृष्टिकोण भी है—

सुख-दुख के पुलिन डुबाकर
लहराता जीवन-सागर
सुख दुख से ऊपर मन का
जीवन ही रे अवलम्बन।

—('गुंजन')

मानव ! कभी भूल से भी क्या सुधर सकी है भूल ?
सरिता का जल मृषा, सत्य केवल उसके दो कूल ?
आत्मा औ' भूतों में स्थापित करता कौन समत्व ?
बाहिरंतर आत्मा - भूतों से है अतीत वह तत्त्व।
भौतिकता आध्यात्मिकता केवल उसके दो कूल,
व्यक्ति-विश्व से, स्थूल-सूक्ष्म से परे सत्य के मूल।
—('युगवाणी')

पन्त का यही निरपेक्ष दृष्टिकोण सापेक्षिक दृष्टिकोण को सन्तुलन देता है। सुख-दुख तथा आत्मा और भूत को पन्त का कवि निमित्त-मात्र मानता है, इसीलिए उनके प्रति अनावश्यक लोभ न रखकर उनका समुचित संकलन कर लेता है। यों कहें कि, उभय द्वन्द्वात्मक तत्त्वों के परे एक परम सत्य को पा लेने के लिए कवि अपने निरपेक्ष दृष्टिकोण में एक तटस्थ द्रष्टा है, हाँ, उसकी तटस्थता मनुष्य की आत्मसाधना की ओर अधिक ममतालु है, इसी लिए 'ग्राम्या' में 'आधुनिका' की अपेक्षा 'ग्रामनारी' को कवि ने अपनी ममता से सँवार दिया है।

[५]

अब हम फिर महादेवी की ओर मुड़ें।

आज विश्व के रंगमंच पर जो समस्याएँ चल रही हैं, उनसे महादेवी अनभिज्ञ नहीं हैं। कहती हैं—'इस भौतिकता के कठोर धरातल पर, तर्क से निष्करुण जीवन की हिंसा-जर्जरित समष्टि में आये हुए युग को देखकर स्वयं कभी-कभी मेरा व्यथित मन भी अपनी करुण भावना से पूछना चाहता है, 'अश्रुमय कोमल कहाँ तू आ गई परदेशिनी रे !'

वे आज की समस्याओं के बीच एक सूचना देती हैं—जीवन की वैयक्तिक साधना की। जीवन के नेपथ्य में उनकी कविता आकाश-वाणी है। पन्त ने 'पल्लव' में जिस नेपथ्य की ओर संकेत किया है—

न जाने नक्षत्रों से कौन
निमन्त्रण देता मुझको मौन !

महादेवी ने उसी नेपथ्य के संकेतों (रहस्यों) को गा दिया है। नि:सन्देह महादेवी की कविता न तो जीवन के प्रहर्ष में है, न जीवन के संघर्ष में। उसमें तो केवल उस चेतन की आराधना है जो जीवन के इतने हर्ष-विमर्षों का संचालक है।

महादेवी सांस्कृतिक कवि हैं। उनकी कविता शरदबाबू की सुरबाला और

राजलक्ष्मी जैसी वैष्णवी पात्रियों के अमृतकण्ठ की गीत-वाणी है। प्रसाद की राज्यश्री और देवसेना जैसी बुद्धकालीन आत्माएँ भी उस गीतवाणी में मानो अपने को पा जाती हैं।

युग-युग से भारतीय नारी ने अपनी तपस्या से जिन अश्रुओं को जोतिर्मय कर दिया है। उन्हीं अश्रुओं का आर्द्र गान ही तो महादेवी का गीतिकाव्य है।

आज 'बाजार-दर' की तरह उठते-गिरते परिवर्त्तनशील जीवन के जिन हर्ष-विमर्षों को लेकर हम लोकयात्रा कर रहे हैं, और 'बाजार दर' में सन्तुलन न होने के कारण असन्तुष्ट से उठे हैं, कभी न कभी वाञ्छित सन्तुलन पाकर हम एकसमान सुखी हो जायँगे। किन्तु सम्पूर्ण सुख-सुविधाएँ पा जाने पर भी मनुष्य के हृदय में कहीं न कहीं कोई अतृप्ति या कसक बनी रहेगी, अन्यथा मनुष्य जी कैसे सकेगा? मनुष्य अपने जीवन में अभाव और अतृप्ति लेकर ही तो जीवित है, अन्यथा उसका स्पन्दन कभी ही रुक जाय। आज की जिन सामाजिक और राजनीतिक अव्यवस्थाओं के कारण जीवन में असन्तोष का स्वर भर उठा है, कभी न कभी उसका विलय हो जायगा। तब हमारे सुखदुख ये नहीं रह जायँगे जो हमारे काव्य में करुणा और मधुरता के रस बनकर बह रहे हैं। समाजवाद के संसार में भी कहीं न कहीं वैयक्तिक रूप से किसी नवीन अतृप्ति या अभाव का रह जाना सम्भव है, उसी के द्वारा हमारे काव्य में फिर एक नया रोमान्टिसिज्म आयेगा। उसे न तो हम भविष्य का समाजवादी छायावाद कह लें। मनुष्य स्वर्ग ही क्यों न पा जाय, उसके एकान्त जगत् में कोई न कोई अतृप्ति या कसक बनी रहेगी। इसी अभावात्मक चित्तवृत्ति को भक्त कवियों ने परमात्म-बोध दे दिया था। महादेवी उसी शाखा की कवयित्री हैं।

युग की दिशा में प्रगतिशील होते हुए भी पन्त संस्कृति की ओर उदासीन नहीं हैं, बल्कि संस्कृति ही उनके युग का सम्पूर्ण निर्माण है। 'ज्योत्स्ना' और 'युगवाणी' इसका प्रमाण है।

दूसरी ओर महादेवी संस्कृति की ओर उन्मुख होते हुए भी युग की प्रगतिशीलता को स्वीकार करती हैं। किन्तु उनका कथन यह है—(अभी तो) 'वास्तव में हमने जीवन को उसके सक्रिय संवेदन के साथ न स्वीकार करके एक विशेष बौद्धिक दृष्टिकोण से छू भर दिया है। इसी से जैसे यथार्थ से साक्षात् करने में असमर्थ छायावाद का भावपक्ष में पलायन सम्भव है उसी प्रकार यथार्थ की सक्रियता स्वीकार करने में असमर्थ प्रगतिवाद का चिन्तन

में पलायन सहज है। और यदि विचार कर देखा जाय तो जीवन से भाव-जगत् में पलायन उतना हानिकर नहीं जितना जीवन से बुद्धि-पक्ष में पलायन, क्योंकि एक हमारे कुछ क्षणों को गतिशील कर जाता है और दूसरा हमारा सम्पूर्ण सक्रिय जीवन माँग लेता है।'

'यदि इन सब उलझनों को पार कर हम पिछले और आज के काव्य के एक विस्तृत धरातल पर उदार दृष्टिकोण से परीक्षा करें तो हमें दोनों में जीवन के निर्माण और प्रसाधन के सूक्ष्म तत्त्व मिल सकेंगे। जिस युग में कवि के एक ओर परिचित और उत्तेजक स्थूल था और दूसरी ओर आदर्श और उपदेशप्रवण इतिवृत्त, उसी युग में उसने भावजगत् और सूक्ष्म सौन्दर्य्य-सत्ता की खोज की थी। आज वह भावजगत् के कोने कोने और सौन्दर्य्यगत चेतना के अणु-अणु से परिचित हो चुका है अतः स्थूल व्यक्त उसकी दृष्टि को विराम देगा। यदि हम पहले मिली सौंदर्य-दृष्टि से आज की यथार्थ-सृष्टि का संयोग कर सकें, पिछली सक्रिय भावना से बुद्धिवाद की शुष्कता को स्निग्ध बना सकें और पिछली सूक्ष्म चेतना की व्यापक मानवता में प्राण-प्रतिष्ठा कर सकें तो जीवन का सामञ्जस्य-पूर्ण चित्र दे सकेंगे। परन्तु जीवन के प्रत्येक क्षेत्र के समान कविता का भविष्य भी अभी अनिश्चित ही है। पिछले युग की कविता अपनी ऐश्वर्य-राशि में निश्चल है और आज की प्रतिक्रियात्मक विरोध में गतिवती। समय का प्रवाह जब इस प्रतिक्रिया को स्निग्ध और विरोध को कोमल बना देगा तब हम इनका उचित समन्वय कर सकेंगे, ऐसा मेरा विश्वास है।'

पीछे हम देख चुके हैं कि पन्त की प्रगति भी समन्वय की ओर है। किन्तु पन्त और महादेवी के समन्वय के माध्यम में अन्तर है; पन्त का माध्यम लौकिक सौन्दर्य्य (भूतवाद) है, महादेवी का माध्यम अलौकिक वेदना (अध्यात्मवाद)। यहाँ महादेवी की काव्य-तरलता को वस्तुजगत् के स्पर्श से कुछ ठोस हो जाने की आवश्यकता जान पड़ती है तो पन्त की वाणी को वेदना से कुछ तरल हो जाने की। इस प्रकार जीवन और कला को दोनों एक सम्यकता प्रदान कर सकेंगे। महादेवी के गीतिकाव्य और पन्त के वस्तुकाव्य के समन्वय से हिन्दी-कविता को एक नई काव्यकला मिल सकती है।

जो करुणा महादेवी की कविता (भाव-पक्ष) का प्राण है, वही पन्त की सृष्टि (लोक-पक्ष) में भी जीवन-मूरि है—

'चिर पूर्ण नहीं कुछ जीवन में
अस्थिर है रूप-जगत का मद,
बस आत्मत्याग जीवन-विनिमय
इस संधि जगत में है सुखप्रद
करुणा है प्राण-वृन्त जग की,
अवलंबित जिस पर जग जीवन,
भर देती चिर स्वर्गिक करुणा
जीवन का खोया सूनापन ।
करुणा रंजित जीवन का सुख,
जग की सुन्दरता अश्रुस्नात,
करुणा ही से होते सार्थक
ये जन्म-मरण सन्ध्या-प्रभात ।'

—('युगवाणी')

किन्तु पन्त ने आज मनुष्य की अस्तित्व-रक्षा के लिए तात्कालिक कर्त्तव्य को ही प्रमुखता से आगे उपस्थित किया है । अभी तो मनुष्य विषम विष से मूर्च्छित है, वह सूक्ष्म और स्थूल दोनों ही की ओर से बेसुध है । उसमें स्थूल चेतना आ जाने पर वह सूक्ष्म चेतना को भी ग्रहण करने में समर्थ हो सकेगा। समाजवादी मनुष्य स्वस्थ मन से छायावाद को ग्रहण कर सकेगा ।

जीवन का वर्तमान संघर्ष शाश्वत नहीं है, इसका कभी न कभी अन्त होगा, उस प्रकृतिस्थ भविष्य का स्वप्न भी पन्त के पलकों में है—

मौन रहेगा ज्ञान,
स्तब्ध निखिल विज्ञान !
क्रान्ति पालतू पशु-सी होगी शान्त
तर्क, बुद्धि के वाद लगेंगे भ्रांत ।
राजनीति औ' अर्थशास्त्र
होंगे संघर्ष-परास्त ।
धर्म, नीति, आचार—
रुँधेगी सबकी क्षीण पुकार !
जीवन के स्वर में हो प्रकट महान्
फूटेगा जीवन रहस्य का गान ।
क्षुधा, तृषा, औ' स्पृहा, काम से ऊपर,
जाति, वर्ग औ' देश, राष्ट्र से उठकर

जीवित स्वर में, व्यापक जीवन गान
सद्य करेगा मानव का कल्याण।

—('युगवाणी')

पन्त केवल क्रान्तमुख नहीं, शान्तमुख भी हैं। श्री शिवदान सिंह चौहान के शब्दों में—'क्रान्ति की आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति करने वाली काव्यधारा में भी दो प्रवाह हैं, एक है जिसका नेतृत्व भगवतीचरण वर्मा और दिनकर कर रहे हैं, दूसरा है जिसके अभी एकमात्र प्रवर्तक-समर्थक पन्त हैं।'

पन्त क्रान्ति और शान्ति दोनों चाहते हैं, संहार और सृजन दोनों को युग-वाणी दे रहे हैं। दिनकर और भगवतीचरण जीवन की कोई मूर्तिमत्ता नहीं दे रहे हैं, वे प्राय: आवेशपूर्ण हैं। पन्त उन्मेषपूर्ण हैं और जीवन की मूर्तिमत्ता दे रहे हैं, उनमें कलाकारिता है।

पन्त काव्य से गीत-गद्य की ओर आये, महादेवी गीत से गद्य की ओर आ गई हैं। अपने संस्मरणों में उन्होंने वस्तुजगत् को करुणा की वाणी दे दी है। गीतिकाव्य में उन्हें जिस सुदृढ़ आधार की आवश्यकता थी, उसे उन्होंने अपने इन लोकचित्रों में पा लिया है। हाँ, समाज के आँसुओं को उन्होंने अपनी वेदना से अपना लिया है, किंतु राजनीतिक असंतोषों को काव्य बनाकर देन का प्रयत्न उन्हें अभीष्ट नहीं जान पड़ता। उनका कहना है—'विचारों के प्रसार और प्रचार के अनेक वैज्ञानिक साधनों से युक्त युग में, गद्य का उत्तरोत्तर परिष्कृत होता चलने वाला रूप रहते हुए, हमें अपने केवल बौद्धिक निरूपणों और वादविशेष सम्बन्धी सिद्धांतों के प्रतिपादन की आवश्यकता नहीं रही। चाणक्य की नीति वीणा पर गाई जा सकती है, परन्तु इस प्रकार वह न नीति की कोटि में आ सकती है और न गीति की सीमा में, इसे जानकर ही इस बुद्धिवादी युग को हम कुछ दे सकेंगे।' यहाँ यह निवेदन करना है कि चाणक्य की नीति भी अन्तरद्रवित होकर काव्य का रस बन सकती है। राष्ट्रीय कविताएँ राजनीतिक भावप्रवणता ही तो है।

किन्तु पन्त के शब्दों में स्थिति आज यह है कि मनुष्य भावप्रवण नहीं रह सकता—

अपने मधु में लिपटा पर
कर सकता मधुप न गुंजन,
करुणा से भारी अन्तर
खो देता जीवन-कम्पन। ('गुंजन')

हम देखते हैं कि आज जीवन गद्यमय ही हो गया है। क्या वह फिर काव्य की ललित संज्ञा नहीं ग्रहण करेगा ?—

कलाकाँकर में एक दिन मैंने पन्त जी से पूछा था—तो क्या आपका अभिप्राय यह है कि आज की अशान्तियों का समाधान करके भविष्य में मनुष्य अधिक तृप्ति से गा सकेगा ? पन्त जी ने कहा—तब मनुष्य बोलना छोड़ देगा, वह गाना ही गाता रहेगा। अर्थात् मनुष्य का गद्य-कठोर जीवन भविष्य में संगीतमय हो जायगा।

निःसंदेह उसी दिन पन्त का कलाकार अपने कवि को जगाकर एक बार फिर कहेगा—

स्वस्ति, जीवन के छाया काल !
सुप्त स्वप्नों के सजग-सकाल !
मूक मानस के मुखर-मराल !
स्वस्ति, मेरे कवि बाल !

महादेवी वर्मा और क्रिस्टिना रोज़ेटी

शचीरानी गुर्टू

["क्रिस्टिना की कृतियों म कुमारीत्व की अमल-धवल पावनता, भोली सरलता और यत्किंचित अल्हड़पन भी है, जिसमें विराग की धूमिल अरुणिमा यत्र-तत्र बिखरी हुई है। महादेवी के काव्य में नारीत्व का क्रन्दन, असफल पत्नीत्व की खीज और द्विविधाग्रस्त अभावजन्य उपराम है, जिसमें नारी-सुलभ समर्पण-भावना और जीवन की गुत्थी न सुलझने के कारण दुर्भेद्य सघनता व्याप्त हो गई है। क्रिस्टिना नियति के क्रूर थपेड़ों से मर्माहत हो वेदना, अविश्वास और अदृष्ट की आशंका में डूबी हुई विरह के दर्दीले गीत गाती है, जिनमें हृदय की तड़पन, भावों की लड़खड़ाहट, आकुल प्राणों की कसक और आन्तरिक आवेगों का संघात है—महादेवी के भावोद्वेगों में मीठी कचट होते हुए भी वचन-विदग्धता, अमूर्त व्यंजना और बिखरती, मचलती भावप्रवणता है, जो हृदय की गहराई में उतरती चलती है और जिसमें उठती-गिरती विपुल तरंगावलियों की सी अविराम धड़कन सुन पड़ती है।"]

'ओरे दुयार खुले देरे—
बाजा शंख बाजा।
गम्भीर राते एसेछ आज
आंधार घरेर राजा।
बज्र डाके शून्य तले
विद्युतेरि झिलिक झले
छिन्न शयन टेने एने
आङिना तोर साजा।

झड़ेर साथे हठात् ऐलो
दुःख रातेर राजा।' (टैगोर)

'ओरे, द्वार खोल दे। शंख नाद कर। गम्भीर रात्रि में आज अँधेरे घर का राजा आया है। शून्य तल में मेघ भीषण गर्जना कर रहे हैं। विद्युत कौंध रही है। बिछा दे अपनी टूटी खाट। आज अकस्मात् दुःख की रात का राजा आँधी-पानी के साथ आ पहुँचा है।'

जिस अज्ञात प्रियतम की अहर्निश बाट जोहती हुई ये कवयित्रियाँ पलक पाँवड़े बिछाए—उन्मन और उदास—उसकी निदारुण विरह-व्यथा में तिल तिल कर जल रही थीं—उससे दुर्दिन में हठात् भेंट हो गई, किन्तु न जाने किस अपरिचित गन्तव्य को उद्देश्य बना वह निर्मोही प्रणय-बन्धन विच्छिन्न करके अपनी धुँधली सी झलक दिखा चला गया और मिलन के प्रथम प्रहर में ही उससे सदैव के लिये विछोह हो गया। वे प्रिय को आँख भर देख भी तो न पाईं।

'इन ललचाई पलकों पर
पहरा जब था व्रीड़ा का,
साम्राज्य मुझे दे डाला
उस चितवन ने पीड़ा का।'

महादेवी और क्रिस्टिना रोज़ेटी की काव्य-साधना बाह्य एवं अन्तश्चेतना का एकीकरण है, जिसमें उनकी वैयक्तिक आत्मानुभूति की छाप, कल्पना की कमनीयता और ऐकान्तिक आत्म-समर्पण की भावना है। उनकी काव्यगत आत्मा रहस्यमय अन्धकार की निविड़ता से ओतप्रोत, किन्तु अरूप सौंदर्य की प्रकाश रेखाओं को यत्रतत्र छिटकाती हुई—उनकी मूक अन्तर्ध्वनि एवं विराट् भावनाओं की स्वर-लिपि से अंकित-सी जान पड़ती है, जहाँ प्रणय के मधुर भार से आक्रान्त विवश आकुलता और हृदय की छटपटाहट आँसुओं की राह बाहर छहर-छहर पड़ती है। जीवन की समस्त सुषुप्त स्मृतियाँ जाग्रत होकर मानों पार्थिव अवगुंठन से झाँक उस अपार्थिव सत्य को पा लेने को आकुल हैं, जो बाहर-भीतर, ऊपर-नीचे सौंदर्य-श्री से जगमगा रहा है, किन्तु जिसमें आत्म-साधना और स्वानुभूत-सत्य की सात्विक दीप्ति न होकर आन्तरिक वेदना का समावेश होने से हृदय-पक्ष से भी अधिक मानसिक पक्ष की प्रधानता है। महादेवी और क्रिस्टिना के काव्य में जो भावों की उत्कट तीव्रता, मर्मान्तक वेदना और अन्तर का हाहाकार व्यक्त हुआ है—वह अलौकिक अथवा आध्यात्मिक विरह-गर्भित न होकर

लौकिक प्रणय की सहजानुभूति से उद्भूत हुआ है और काल्पनिक आवरण में लिपट कर उत्तरोत्तर रहस्यपूर्ण और अविज्ञेय होता गया है। इन दोनों कवयित्रियों के हृदय निरन्तर किसी अभाव का अनुभव करते हैं और उस खोई हुई वस्तु की खोज में भटक रहे हैं, जिसके सामीप्य से उनके निस्तब्ध भाव संगीत के स्वर में मुखरित होकर आनन्द की सरस सृष्टि कर सकते हैं।

'जो तुम आ जाते एक बार !
कितनी करुणा कितने संदेश
पथ में बिछ जाते बन पराग;
गाता प्राणों का तार-तार
अनुराग-भरा उन्माद-राग;
आँसू लेते वे पद पखार।
हँस उठते पल में आर्द्र नयन,
धुल जाता ओठों से विषाद,
छा जाता जीवन में बसन्त—
लुट जाता चिर-संचित विराग;
आँखें देती सर्वस्व वार।'

जीवन-झाँकी

महादेवी और क्रिस्टिना के जीवन पर दृष्टिपात करने से एक बात सहज ही द्रष्टव्य है कि उनका काव्य, वास्तव में, उनके व्यक्तिगत जीवन में घटित घटनाओं का प्रतिबिम्ब है। माता-पिता की स्नेहच्छाया में अबोध शैशव बिताकर जीवन की कठोर वास्तविकता जब उनकी बुद्धि के सयानेपन से आ टकराई तो अनमिल भावनाओं के कारण दो भिन्न हृदय प्रेम-सूत्र में न बँध सके और तभी से उनके मानस में नीरवता, बेचैनी और धुँधलेपन की छाया परिव्याप्त हो गई। यौवन के तूफानी क्षणों में जब उनका अल्हड़ हृदय किसी प्रणयी के स्वागत को मचल रहा था और जीवन-गगन के रक्ताभ-पट पर स्नेह-ज्योत्स्ना छिटकी पड़ रही थी तभी अकस्मात् विफल प्रेम की धूप खिलखिला पड़ी और पुलकते प्राणों की धूमिलता में अस्पष्ट रेखायें सी अंकित कर गई। आत्म-संयम का व्रत लिये हुए उन्होंने जिस लौकिक प्रेम को ठुकरा कर पीड़ा को गले लगाया—वह कालान्तर में आन्तरिक शीतलता से स्नात होकर बहुत कुछ निखर तो गई, किन्तु उनके हठीले मन का उससे कभी लगाव न छूटा और वे उसे निरन्तर कलेजे से चिपटाये रखने की मानों हठ पकड़ बैठीं।

'पर शेष नहीं होगी यह
मेरे प्राणों की क्रीड़ा,
तुमको पीड़ा में ढूँढ़ा,
तुम में ढूँढ़ूँगी पीड़ा।'

जिस प्रकार महादेवी की आत्म-साधना और गम्भीर-चिन्तन की एक-रसता विवाह से भंग न हुई, उसी प्रकार क्रिस्टिना की जीवन-धारा भी प्रति-कूल परिस्थितियों की चट्टानों से टकराकर कभी निश्चित मर्यादा का उल्लंघन न करने पाई और उनकी अन्तर्मुखी प्रवृत्तियाँ अधिकाधिक व्यापक होकर अग्रसर होती रहीं। एकान्त, चिंतनरत घर के किसी शून्य-कक्ष में बैठकर जब वह अपनी सुन्दर, कोमल उँगलियों से कुछ बुनती होती और उसकी भोली, निरीह दृष्टि दूर कुछ खोजती हुई-सी क्षितिज के अन्तर्पट पर जा अटकती तो उसका रूप अत्यन्त आकर्षक हो जाता। इसी स्थिति में कौलिंसन ने सर्व प्रथम उसे बैठे देखा था और वह तत्क्षण ही उसकी आकर्षक भावभंगिमा पर मुग्ध हो उठा था। क्रिस्टिना उस समय अठारह वर्ष की थी और यद्यपि वह भी अपने बड़े भाई डी० जी० रोज़ेटी के मित्र जेम्स कौलिंसन से प्रभावित हुए बिना न रही थी, तथापि धार्मिक विचारों और आध्यात्मिक प्रवृत्ति की होने के कारण उसने इस स्वतन्त्र विचारों के नवयुवक से विवाह-सम्बन्ध अस्वीकार कर दिया था। इससे खिन्न होकर कौलिंसन ने अपना अधिकांश समय भगवद्-आराधना में व्यतीत करना प्रारम्भ कर दिया और फलस्वरूप क्रिस्टिना को बाध्य होकर विवाह के लिये उसे अपनी स्वीकृति देनी पड़ी।

उस समय क्रिस्टिना की लिखी हुई स्फुट कविताओं में जो भाव व्यक्त हुए हैं, उनमें लौकिक प्रेम से परे किसी दूरस्थ वस्तु को पाने की अतृप्त वासना है, जो वह स्वयं बताने और समझने में असमर्थ है। कौलिंसन के मिलने से पूर्व एक और प्रणय-घटना क्रिस्टिना के जीवन में घट चुकी थी, जिसकी याद वह जीवन-पर्यन्त न भुला सकी और जो रह रह कर उसके हृदय में एक मधुर टीस-सी जगा जाती थी। अपने अध्ययन-काल में जब कि वह अत्यन्त छोटी थी और अपने भाई के साथ बूढ़े पिता के तत्वावधान में पढ़ती थी तो चार्ल्स केले नाम का एक शर्मीला, प्रतिभा-सम्पन्न युवक भी वहाँ पढ़ने के लिए प्रति-दिन आया करता था, जो अत्यन्त विनम्र और चिंतनशील प्रवृत्ति का होने के कारण क्रिस्टिना का उपयुक्त जीवन-सहचर हो सकता था। क्रिस्टिना से उसकी मित्रता बढ़ती गई और वृद्ध पिता की मृत्यु के पश्चात् तो वह मित्रता प्रगाढ़ प्रेम में परिवर्तित हो गई, किंतु धार्मिक विचारों में समानता न होने के कारण

वह उसे पतिरूप में वरण न कर सकी ।

कदाचित् अपने व्यथित मन को शांत करने और हृदय के घाव को भरने के लिये ही क्रिस्टिना ने कौलिंसन से विवाह-सम्बन्ध स्वीकार किया था, किंतु जो प्राथमिक प्रेम की असफलता का करुण क्रन्दन उसके अंतर में समा गया था, वह कभी मिटने न पाया और निराशा की सघनता में ज्वलित व्यथा की शमा उसे प्रेम की शीतलता प्रदान न कर सकी । मृत्यु की-सी छाया उसके समस्त जीवन को आच्छन्न किये रही और कौलिंसन से सम्बन्ध स्थापित होने के बावजूद भी जो उसने कवितायें लिखीं—वे उसके लिये न होकर प्रथम प्रणयी को लक्ष्य में रख कर ही लिखी गईं ।

'मेरी आकांक्षा है कि मैं उस प्रथम दिन, प्रथम घड़ी और प्रथम क्षण को याद रख सकती जब कि तुम मुझे मिले थे । क्या ही अच्छा होता यदि मैं बता सकती कि उस समय मौसम कैसा था—सुहावना या उदास और शीत पड़ रहा था अथवा गर्मी, किन्तु वह तो अनबूझे ही विस्मृति के गर्त्त में समा गया । मैं तब वर्त्तमान और भविष्य की ओर देखने में कैसी अंधी थी और अपने भाग्य-वृक्ष के प्रस्फुटन को लक्ष्य रखने में कैसी मन्दबुद्धि, जो न जाने कितने ही मई-मासों में भी पल्लवित न हो सकता था ।'

("I wish I could remember that first day,
First hour, first moment, of your meeting me,
If bright or dim the season, it might be
Summer or Winter for aught that I can say;
So unrecorded did it slip away,
So blind was I to see and to foresee,
So dull to mark the budding of my tree,
That would not blossom yet for many a May.")

कौलिंसन से सम्बन्ध स्थापित होने के बाद दो-तीन महीने तक क्रिस्टिना का पत्र-व्यवहार उससे होता रहा और वह अपने मन को किसी प्रकार बहलाती रही । अगस्त मास में वह कौलिंसन की माता और बहिन से मिलने के लिये प्लीज़ले-हिल गईं, किन्तु वहाँ के उच्छृंखल वातावरण, आमोद-प्रमोद और छिछली हँसी-मज़ाक में उसका चित्त न रमा । प्लीज़ले से अपने चचेरे भाई विलियम माइकेल को एक पत्र में उसने लिखा, 'यहाँ का प्रवास बहुत बुरा नहीं है, तो भी पोस्टमैन का आना यहाँ के जीवन में एक घटना है । कभी-कभी शोर-गुल से ऊब कर मैं एकान्त में कुर्सी बिछाकर बैठ जाती हूँ और उन

दिवा-स्वप्नों में विभोर हो जाती हूँ, जो नीरव भाषा में चुपचाप मेरे कानों में कुछ कह जाते हैं।' इंग्लैंड लौट आने पर कौलिंसन से क्रिस्टिना का पत्र-व्यवहार बिल्कुल बन्द हो गया और विलियम माइकेल को एक दिन बातों के सिलसिले में उसने बताया कि धार्मिक मामले में कौलिंसन अपने विचारों को कभी नहीं बदल सकता, अत: उससे विवाह न करने का उसने निश्चय किया है।

बहुत संभव है ज्ञात अथवा अज्ञात रूप से कौलिंसन ने क्रिस्टिना के मन को आकृष्ट किया हो और उससे विवाह करने की इच्छा के मूल में मन के टूटे सपनों को पुनः साकार देखने की भावना उसके हृदय के किसी अज्ञात कोने में अन्तर्निहित हो, किन्तु इसमें किंचित् भी संदेह नहीं कि जो सांघातिक चोट उसे अपने प्रथम प्रणय के अवसर पर लग चुकी थी, उसकी पीड़ा कभी कम न हुई और जीवन के स्वर्णिम स्वप्न, जो असमय में ही दुर्भाग्य के बवण्डर से मिट्टी के घरौंदों के समान धराशायी हो चुके थे, वे उसे इतना वीरान और सूना बना गये कि वह उनकी मिथ्या कल्पना में भी विभोर न हो सकी।

११ सितम्बर, सन् १८६६ को क्रिस्टिना ने चार्ल्स केले को लिखा था, 'निःसंदेह, जो कुछ हुआ है—उसके लिये मैं स्वयं पश्चात्ताप कर रही हूँ, किन्तु मुझे यह जान कर संतोष है कि जिस स्नेह के मैं सर्वथा अयोग्य हूँ—उसका प्रतिदान मुझे अनायास ही मिल रहा है।'

क्रिस्टिना के निवासस्थान अथवा विलियम माइकेल के यहाँ केले उससे मिलने के लिये प्रायः आया करता था और कभी-कभी अत्यन्त सभीत एवं सहमा हुआ सा कोई प्रणय-उपहार अथवा उस पर लिखी हुई अपनी कोई कविता दे जाता था। क्रिस्टिना ने भी केले को सम्बोधित करके अनेक कवितायें लिखी हैं, जिनमें उसका प्रणयोन्माद उभर उभर कर व्यक्त हुआ है।

'मैं तुम्हें प्यार करती हूँ और इस अपनी समस्त वेदना के बावजूद मुझे यह जान कर प्रसन्नता है कि तुम इस बात से कम से कम अवगत तो हो।

तुम इस बात को भली-भाँति जानते हो और इस पर कभी संदेह नहीं कर सकते।

प्रेम अपने आपका चिर-भक्ष्य है।

मेरी खाई हुई शपथ अथवा धर्म-पिता का अभिनन्दन मेरे प्रेम को अधिक सुस्पष्ट या अविचल घोषित नहीं कर सकता।

ओ म्लान चन्द्र! जो क्रमशः घटता और बढ़ता है, जीवन के क्षय का

क्रम भी तो यही है और जब परिश्रांत आह्लाद की अवज्ञा कर प्रेम अपने पंख फड़फड़ा कर ऊपर उड़ जाता है तो हम उसकी ज्ञात धड़कन भी बहुत कम महसूस कर पाते हैं।

प्रिय मित्र ! हमें चिर शान्ति में सो जाना चाहिये, कुछ क्षण में ही आयु और क्लेश मिट जायँगे और थोड़ी देर बाद ही प्रेम पुनः जीवित होकर नष्ट हो जायेगा।

जीवन, क्षय और मृत्यु, पुनः सब कुछ प्रेम ही प्रेम तो है।'

("I love you, and you know it—at least,
This comfort is mine own in all my pain;
You know it, and can never doubt again,
And Love's mere self is a continual feast.
No oath of mine or blessing word of priest
Could make my love more certain or more plain.
O weary moon, still rounding, still decreased!
Life wanes; and when love folds his wings above
Tired joy and less we feel his conscious pulse,
Let us go fall asleep, dear friend, in peace;
A little while, and age and sorrow cease,
A little while, and love reborn annuls
Life and decay and death, and all is love.")

सन् १८८३ में ५ दिसम्बर की रात्रि को, जिस दिन दुर्भाग्य से क्रिस्टिना का जन्मोत्सव था, अचानक केले की मृत्यु हो गई। क्रिस्टना ने जब यह दुःखद समाचार सुना तो वह तत्काल विलियम माइकेल को सूचित करने के लिये सोमरसेट हाउस गई। विलियम माइकेल ने लिखा है, 'उसकी कातर दृष्टि और अन्तर के नीरव क्रन्दन से क्लान्त मुख का पीलापन कभी भुलाया नहीं जा सकता। उसके प्राण भीतर ही भीतर खिंचे जा रहे थे, किन्तु बाहर आह तक न निकलती थी और यह वस्तुतः उसके गम्भीर स्वभाव के अनुरूप ही था।' इसके बाद वह केले के घर गई। अंतिम बार उसने उसकी निश्चेष्ट मुखमुद्रा को सजल नेत्रों से देखा जिसके ओठों की मुस्कराहट क्रूर मृत्यु द्वारा अपहृत की गई थी और उसने अपने प्रणयी के उन निर्जीव हाथों पर श्वेत पुष्प रख दिये, जो उसके हाथों को पकड़ कर अब जीवन में कभी अपना न बना सकते थे।

केले ने अपनी वसीयत में, जो सात महीने पूर्व तैयार की गई थी, अपनी वृहद् लाइब्रेरी, लिखने का डेस्क और होमर, पेट्रार्क आदि के अनुवाद क्रिस्टिना को भेंट किये थे और उन सजीव स्मृति-चिह्नों को पाकर वह आनन्द-विह्वल हो उठी थी। केले की मृत्यु के पश्चात् वह ग्यारह वर्ष तक जीवित रही और इसमें संदेह नहीं कि वह उसकी याद को कभी भुला न सकी। मरते हुए विलियम माइकेल से वह उसके सम्बन्ध में बहुत देर तक बातें करती रही और मृत्यु के शिथिल, उदास क्षणों में अतीत स्मृतियों के उभरने के साथ-साथ अनुतापभरी आत्म-प्रतारणा की भावना भी उसमें जगी कि क्यों पहले तो केले को उसने प्रोत्साहित किया और फिर विवाह की स्वीकृति न देकर क्यों उसके जीवन को नष्ट कर दिया। केले की मृत्यु के पश्चात् क्रिस्टिना की लिखी हुई निम्न पंक्तियाँ उसके अन्तर्दाह को व्यक्त करती हैं।

'पुष्पों और काँटों की बिना पर्वाह किये
एक क्लान्त-मन कृषक अपने संचित अनाज के मध्य विश्राम कर रहा है।
कदाचित् प्रातःकाल तक मेरी भी यही स्थिति हो।

❀ ❀ ❀ ❀

दिसम्बर के ठिठुरते शीत की भाँति शिथिल
गये और बीते दिनों की भाँति विस्मृत,
जब कि वह केवल एक की स्मृति में बसा है।
और बाकी सब भूल गये हैं।
केवल एक ही उसे अभी तक याद रखता है।'

("Unmindful of the roses,
Unmindful of the thorn,
A reaper tired reposes
Among his gathered corn;
So might I, till the morn!
Cold as the cold Decembers,
Past as the days that set,
While only one remembers,
And all the rest forget—
But one remembers yet.")

आसक्ति और विरक्ति

कहने की आवश्यकता नहीं कि महादेवी और क्रिस्टिना के दिल के अरमान जो परिस्थितियों के मरुस्थल में झुलस कर क्षारवत् हो गये थे—उनके हृदय में, यंत्रणा की ज्वाला धधका गये और जीवन की सुख, शान्ति एवं सहज चापल्य को अभावों की झोली में भर न जाने कहाँ छिप गये। निराश आशा की अंतिम दवा वैराग्यपूर्ण निर्वेद की घूँट पीकर उनकी प्यार की मधुरिमा साधना की कठोरता में परिणत हो गई। एक ओर उनमें विरक्ति की अचिन्त्य भावना जगी और दूसरी ओर जीवन के बिखरे हुए मधुकणों को बटोर लेने की अतृप्त लालसा। उनके अन्तस्तल की अस्पष्ट स्वर-लहरी में अन्यमनस्कता व्याप्त हो गई और प्रिय-वियोग की दुस्सह व्यथा भीतर ही भीतर न समाकर बाहर भी श्वासों की राह सिहर-सिहर पड़ी।

'कसक-कसक उठती सुधि किसकी
रुकती सी गति क्यों जीवन की
क्यों अभाव छाए लेता विस्मृति सरिता के कूल ?'

महादेवी की उपर्युक्त पंक्तियों में अन्तर की पीड़ा मेघाच्छन्न सघनता सी अपने में ही पुंजीभूत जान पड़ती है। जब भावों के आवेग हृदय के तारों को हिला जाते हैं तो भूले हुए स्नेह की स्मृतियाँ अस्पष्ट स्वरों में झंकृत होकर असह्य वेदना और व्याकुलता की निश्छल कहानी-सी कह जाती हैं और जब हृदय का अभाव भाव से भर कर पूर्ण होना चाहता है तो आकांक्षा, विह्वलता और अपने आपको न्योछावर कर देने की उन्मत्त भावना उनके मन में जग जाती है।

'मैं पलकों में पाल रही हूँ यह सपना सुकुमार किसी का।
जाने क्यों कहता है कोई,
मै तम की उलझन में खोई
धूममयी वीथी वीथी में
लुक-छिप कर विद्युत्-सी रोई
मैं कण कण में ढाल रही अलि आँसू के मिस प्यार किसी का।
पुतली ने आकाश चुराया,
उर ने विद्युत-लोक छिपाया,
अंगराग सी है अंगों में
सीमाहीन उसी की छाया
अपने तन पर भाता है अलि जाने क्यों शृंगार किसी का!

मैं कैसे उलझूँ इति अथ में,
गति मेरी संसृति है पथ में,
बनता है इतिहास मिलन का,
प्यास भरे अभिसार अकथ में,
मेरे प्रति पग पर बसता जाता सूना संसार किसी का !'

मन में चिर-अशान्ति और जीवन की अपूर्णता का कटु-अनुभव लेकर महादेवी और क्रिस्टिना जीवन की व्यापक चेतनाओं के प्रति सजग हैं और उनकी बुद्धि अपनी भीतरी अभिव्यक्ति को संवारने में सदैव सचेष्ट रहती है। क्रिस्टिना जिस प्रणयी के लिये इतनी पीड़ा सह रही है—वह स्वयं भी उसके प्रेम में छटपटा रहा है और ऐसे हठीले साधक का पीड़ा से सहज ही छुटकारा पाना सम्भव नहीं है। एक ओर प्रेम की साधना स्वीकार करने पर भी वह प्रेमी के हठ की अवहेलना करती है और अपने जी की जलन को नारी की निर्मम ममता में लपेट उसकी दयनीय स्थिति पर संवेदना ः कट करती है।

"तब मैं उस पर ज़ोर से चिल्लाई—
ठहरो, मुझे शान्ति से रहने दो,
इस बात से न डरो कि मैं तुमसे कुछ चाहूँगी,
मुझे शान्ति से रहने दो और अधिक तंग न करो—
ऐसा न हो कि मैं भाग कर तुम्हारा पीछा करूँ और तुम. द दाजे से बाहर कर दूँ।
क्या तुम कभी मेरी जान न छोड़ोगे, जो अभी तक मुझे परेशान करते हो ?

❀ ❀ ❀ ❀

किन्तु सारी रात वह स्वर गिड़गिड़ाता रहा 'किवाड़ खोल दे।'
बार बार उसका स्वर मेरे कानों से आ टकराता था, 'उठ, मुझे अन्दर आने दे।'
अश्रुसिक्त वाणी में वह मेरी अभ्यर्थना कर रहा था—
'मेरे लिये द्वार खोल दे, जिससे मैं तेरे पास आजाऊँ।'
जबकि ओसकण बिखर गये थे और मध्य-रात्रि की सघनता शीत क जामा पहने थी तब सुन पड़ा—
'मेरे पैरों से रक्त बह रहा है, मेरा मुँह देख।
देख, मेरे हाथ, जो तुझे सुख पहुँचाना चाहते हैं, खून से लथपथ हैं।
मेरा हृदय तेरे लिये खून के आँसू बहा रहा है, द्वार खोल।'

इसी प्रकार पौं फटने तक सुनाई पड़ता रहा;
फिर निस्तब्धता छा गई ।
वह स्वर दुःखावेग से द्रवित हो मानों चुप हो गया,
तब उसके पदचाप की प्रतिध्वनि भी करुण उच्छ्वास-सी मेरे पास से गुज़री,
वे पदचाप ठहर ठहर कर पड़ते थे, जो उसकी मंद-गति के द्योतक थे ।
प्रातःकाल होने पर
मैंने घास पर देखा कि प्रत्येक पैर का निशान खून से अंकित है ।
और मेरे द्वार पर रक्त के चिह्न अमिट रूप से चिह्नित हो गये हैं ।'

("Then I cried upon him; Cease,
Leave me in peace;
Fear not that I should crave
Aught thou mayst have.
Leave me in peace, yea trouble me no more
Lest I arise and chase thee from my door.
What, shall I not be let
Alone, that thou dost vex me yet?

❀ ❀ ❀ ❀

But all night long that voice spake urgently:
'Open to me'.
Still harping in mine ears:
'Rise, let me in?'
Pleading with tears:
'Open to me, that I may come to thee.'
While the dew dropped, while the dark hours were cold:
'My feet bleed, see My Face,
See my hands bleed that bring thee grace,
My heart doth bleed for thee,
Open to me.'

❀ ❀ ❀ ❀

So till the break:
Then died away
That voice in silence as of sorrow;
Then footsteps echoing like a sigh
Passed me by,
Lingering footsteps seow to pass.
On the morrow
I saw upon the grass
Each footprint marked in blood, and on my door
The mark of blood for evermore.")

अविराम साधना में लीन जीवन के दीर्घ-पथ को अपने आँसुओं से अहर्निश धोती हुई वह आसक्त होकर भी अनासक्त है और अपने 'स्व' को मिटा कर भी अपने कर्त्तव्य को भूली नहीं है।

'विगत रात्रि को मैंने एक स्वप्न देखा,
तब न अँधेरा था और न प्रकाश
शीतल ओसकणों ने मेरे सघन बालों को भिगो कर धूल-धूसरित कर दिया था।
तुम मुझे वहाँ ढूँढने आये और तुमने कहा 'क्या तुम मेरा स्वप्न देख रही हो ?'
मेरा हृदय, जो तुम्हें देख कर उछल पड़ता था, अब मिट्टी हो चुका था।
मैंने उनींदे स्वर में उत्तर दिया,
'मेरा तकिया गीला है, मेरी चादर बदरंग है और मेरा बिस्तर पत्थर सा सख्त है।
तुम किसी और कृपालु साथी की खोज करो, जो तुम्हारे सिर के लिये कोमल तकिया दे सके और मेरे से अधिक संवेदना-मिश्रित प्रेम प्रदान कर सके।'
तुम हाथ मलते रहे, जबकि मैं कठोर धातु सी दलदली ज़मीन में धँसती रही।
तुमने हाथो को बजाया, किंतु खुशी में नहीं
तुम घिरनी की तरह घूमे, किंतु तुम शराब के नशे में न थे।
मैं सारी रात तुम्हारा स्वप्न देखती रही;

मेरी आँखें खुल गईं और मैंने अनिच्छा पूर्वक प्रार्थना की,
जब पुनः नींद आई तो तुम्हें फिर स्वप्न में देखा—
अंततः मैं उठ बैठी और मैंने घुटनों के बल बैठकर भगवान से प्रार्थना की।
जो शब्द मैंने उस समय कहे—वह मैं लिख नहीं सकती,
मेरे शब्द धीमे थे, मेरे अश्रु सूख गये थे,
किन्तु अंधकार में मेरी नीरवता वज्र की तरह कड़क उठी।
जब प्रातःकाल हुआ तो मेरा मुँह लटक गया था,
मेरे बाल सफेद हो गये थे और द्वार के प्रस्तर-खंड पर खून जम गया था, जिसमें सनी हुई मैं लथपथ पड़ी थी।'

("I dreamed last night.
It was not dark, it was not light,
Cold dews had drenched my plenteous hair
Through clay, you came to seek me there,
And 'Do you dream of me?' you said.
My heart was dust that used to leap
To you, I answered half asleep;
'My pillow is damp, my sheets are red,
There's a leaden tester to my bed;
Find you a warmer playfellow,
A warmer pillow for your head,
A kinder love to love than mine.'
You wrung your hands: while I, like lead,
Crushed downwards through the sodden earth;
You smote your hands but not in mirth,
And reeled but were not drunk with wine.
For all night long I dreamed of you;
I woke and prayed against my will,
Then slept to dream of you again.
At length I rose and knelt and prayed.
I cannot write the words I said,
My words were slow, my tears were few;

But through the dark my silence spoke
Like thunder: When this morning broke,
My face was pinched, my hair was grey
And frozen blood was on the sill
Where stifling in my struggle I lay !")

महादेवी और क्रिस्टिना की एकांत-साधना में आत्म-समर्पण और कर्त्तव्य का उच्च आदर्श होते हुए भी वैयक्तिक वासनाओं के दमन का दम्भ नहीं है, प्रत्युत् पूर्वानुभूत सुखों की स्मृति और उद्दाम यौवन उनके धैर्य और संयम के बाँध को तोड़ कर उन्हें भ्रांत सा बना जाता है और प्रिय के सामीप्य के लिये उनका हृदय मचल-मचल पड़ता है।

'सजनि कौन तम में परिचित सा, सुधि सा, छाया सा, आता ?
सूने से सस्मित चितवन से जीवन-दीप जला जाता !
छू स्मृतियों के बाल जगाता,
मूक वेदनायें दुलराता,
हृत्तंत्री में स्वर भर जाता,
बंद दृगों में; चूम सजल सपनों के चित्र बना जाता !'

जीवन का उन्मुक्त रूप अपना कर और प्रेमी के प्रति निर्मम बन कर भी क्रिस्टिना भावातिरेक में अत्यन्त दीन हो जाती है और अपनी सुध-बुध खोकर उसके दर्शन के लिये बेचैन हो उठती है।

'मेरे पास वापिस चले आओ, जो तुम्हारी प्रतीक्षा करती हुई पथ में आँखें बिछाये है।
अथवा न आओगे ? क्योंकि सब कुछ समाप्त हो जायेगा,
तुम्हारे न आने की लम्बी अवधि में कुछ भी सुख न पा सकूँगी।
जब तक कि तुम नहीं आ रहे हो, जो करना है सो करूँगी
यह सोचकर कि 'वह कब आयेगा ?' मेरे प्राण ! 'कब';
क्योंकि सब व्यक्तियों में केवल एक व्यक्ति ही मेरी दुनिया है—
इस विस्तृत भूखण्ड में ओ प्रिय ! केवल तुम्हीं से मेरा संसार बसा है।
जैसे तैसे तुमसे मिल कर भी मेरे हृदय में हूक सी उठती है—
क्योंकि मिलते ही तुमसे शीघ्र बिछुड़ने की व्यथा मुझे सताने लगती है।
अपने परस्पर सम्मिलन के स्वर्गीय दिनों का स्मरण कर मेरी आशा

चन्द्रमा की भाँति घटती और बढ़ती हुई असमंजस में अटकी है। ओ मेरे ! बताओ न ? वे गीत अब कहाँ हैं, जो कि मैं उन दिनों गाती थी जबकि जीवन मधुर था, क्योंकि तुम स्वयं भी उन्हें मधुर कहते थे।"

("Come back to me, who wait and watch for you :—
Or come not yet, for it is over then,
And long it is befcre you come again,
So far between my pleasures are and few.
While, when you come not, what I do I do
Thinking 'N w when he comes,' my sweetest 'when':
For one man is my world of all the men
This wide world holds ; O love, my world is you.
Howbeit, to meet you grows almost a pang
Bcause the pang of parting comes so soon ;
My hope hangs waning, waxing, like a moon
Between the heavenly days on which we meet:
Ah me, but where are now the songs I sang
When life was sweet because you called them sweet ? ")

भाव-जगत्

महादेवी और क्रिस्टिना के अन्तस्तल की गहराई से निस्सृत गीतों में जो निर्व्यक्त भाव व्यक्त हुए हैं—वे छाया के सदृश धुँधले और रहस्य के सदृश अदृष्ट जान पड़ते हैं। वस्तुत: उनका हृदय और जीवन स्वयं एक अबूझ पहेली है, जिससे वे अपने आपको ठीक-ठीक नहीं समझ पातीं और न अपने भाव-संकेतों को दूसरों को सरलता से समझाने में समर्थ ही हो पाती हैं। वाह्य-जीवन के घात-प्रतिघात से टकरा कर उनकी भाव-मंदाकिनी शत-शत धाराओं में उच्छल होकर दूसरों की मृदु-मधुर भावनाओं को थपकी दे दे कर गुदगुदा तो देती है, किन्तु उनके अन्तरतम प्रदेश में उतर नहीं पाती। कहना न होगा—दोनों कवयित्रियों का जीवन स्वनिर्मित विश्वासों और भावनाओं के व्यवधान में बहता है। एक ओर वैराग्य-मिश्रित हलकी प्रतिध्वनि उठती है, दूसरी ओर क्रूर-नियति के प्रति विवशता का क्रन्दन। कहीं प्रेम-श्रृंखलाओं में जकड़े मनुष्य की सी वाध्यता है, कहीं दारुण दुःख और

क्लेशों से विरत होकर अंतश्चेतना की विश्वासमय निर्बन्ध गति। उनके हृदय में व्यथा की घटाटोप सघनता है, जिसे वे अपनी आन्तरिक-स्फूर्ति और उद्दीप्त आत्मचेतना से विच्छिन्न करके अचिन्त्य आलोक से भरना चाहती हैं। कभी दीन-हीन और खोई सी वे वेदना में डूब जाती हैं—कभी गर्वीले स्वाभिमान से सजग होकर वे लौकिक प्रेम की अवज्ञा करती हुई अलौकिक भाव-जगत् में पैठने का प्रयास करती हैं।

महादेवी की आन्तरिक अनुभूतियाँ सूक्ष्म और कोमल हैं। उनके अंतर में हूक नहीं, मूक अन्तर्व्यथा है; तीव्रता और आवेश नहीं, मधुर व्यंजना है। प्रारम्भ से ही चिंतनशील प्रवृत्ति की होने के कारण उन्होंने हृदय की कोमल भावनाओं को हलके हाथों से स्पर्श करके सहलाना सीखा है और उनकी कल्पना का वैभव, आत्म-विश्वास एवं निर्विकार दृष्टि-निक्षेप उर्मिल-वृत्तियों को जगा कर उनकी अपरिमेय सूक्ष्म-दर्शिता का परिचय दे जाता है।

'दीप मेरे जल अकम्पित,
घुल अचंचल!
सिंधु का उच्छ्वास घन है,
तड़ित, तम का विकल मन है,
भीति क्या नभ है व्यथा का
आँसुओं से सिक्त अंचल!
स्वर अकम्पित कर दिशायें,
मीड़ सब भू की शिरायें,
गा रहे आँधी-प्रलय
तेरे लिये ही आज मंगल!
मोह क्या निशि के वरों का,
शलभ के झुलसे परों का
साथ अक्षय ज्वाल का
तू ले चला अनमोल सम्बल!
पथ न भूले, एक पग भी,
घर न खोये लघु विहग भी,
स्निग्ध लौ की तूलिका से
आँक सबकी छाँह उज्ज्वल!'

महादेवी की संवेदना इतनी तीव्र है कि जहाँ कोई भावना उनके अन्तर में जगी कि उन्होंने अपने कलामय पाश में आबद्ध कर लिया। वातायन के से

सौरभश्लथ उच्छ्वास उमड़ उमड़ कर समस्त वातावरण में मधुर सिहरन-सी जगा जाते हैं। कहीं कसक अधिक गहरी है, कहीं प्रणय-प्रकम्पित हृदय की धड़कन; कहीं शिशु का सा सारल्य है और कहीं हठीली प्रेमिका का गर्वीला दम्भ। उनकी अन्तर्दृष्टि सूक्ष्मतम रहस्यों के अंतर में प्रवेश कर जाती है। इन्द्रधनुष के से विविध-रंग कुछ धूमिल से घूँघट-पट से झाँकते हुए तुहिन-कणों की सी आभा बिखेर जाते हैं और गीतों की छाँह से करुणा-विगलित भाव जलते हुए दीपक को मंद लौ के सदृश मुस्कराते से प्रतीत होते हैं। किन्तु इसके विपरीत क्रिस्टिना के काव्य में जो अंधड़ की सी दुर्दमनीय प्रचण्डता है—वह उसकी कोमल-भावनाओं को दबा कर उसे भी अपने वेग में मानों साथ उड़ाये ले जा रही है।

'प्राण-शक्ति और प्रकाश लुप्त होने से मेरे जीवन का मध्याह्न
बीत गया।
आनंद-बेला समाप्त हो गई, सदैव के लिये चली गई।
जब दिन अवशेष था तभी सूर्य छिप गया और मेरे लिये रात्रि
की चिर-सघनता छोड़ गया।
हे प्रभु! कब तक, कितने दिनों तक इस निराश पीड़ा को
पालती रहूँ?
क्या मैं रोती रहूँ और प्रतीक्षा करती रहूँ?
क्या चिरकाल तक आँसू बहाती हुई इसी प्रकार मर मिटूँ?
क्या तेरी कृपा नष्ट हो गई? क्या तेरा प्रेम मेरे लिये विनष्ट
हो गया?
कितने दिनों तक मैं व्यर्थ ही इच्छा कर करके मरूँ?'

("My noon is ended, abolished from life and light,
My noon is ended, ended and done away,
My sun went down in the hours that still were
day,
And my lingering day is night.
How long, O Lord, how long in my desperate pain
Shall I weep and watch, shall I weep and long for
Thee?
Is Thy grace ended, Thy love cut from me?
How long shall I long in vain?")

महादेवी अपनी अभिव्यक्तियों में उस सतह पर पहुँच गई हैं, जहाँ मर्मघाती बेकल स्वर उन्हें प्रतिकम्पित नहीं कर पाते। उन्हें पीड़ा भी प्रिय है और विरहाग्नि भी जलाकर शीतलता प्रदान करती है। प्रिय की दी हुई पीड़ा होने के कारण वे अपने मर मिटने के अधिकार को खोना नहीं चाहतीं।

'क्या अमरों का लोक मिलेगा
तेरी करुणा का उपहार ?
रहने दो हे देव ! अरे
यह मेरा मिटने का अधिकार !'

वे प्रणय के स्वप्निल संसार में विचरण करती हुई अतृप्ति को अधिक महत्त्व देती हैं।

'मेरे छोटे जीवन में
देना न तृप्ति का कण भर,
रहने दो प्यासी आँखें
भरती आँसू के सागर।'

किन्तु क्रिस्टिना के हृदय के सन्नाटे में जो करुणा-स्रोत काँटों से बिंध कर फूटे हैं—उनसे एकात्म-भाव स्थापित करने के लिये उसकी अंतरात्मा मानों संघर्ष-सा करती है, किन्तु उसकी छटपटाहट और परवशता का भाव उभर-उभर कर फफोलों-सा फूल जाता है, जिसमें ज़रा-सी ठेस लगते ही रक्त-स्राव होने लगता है।

'मैंने एक एकाकिनी चिड़िया देखी, जो अपने घोंसले में सूनी बैठी थी।
क्योंकि उसका साथी मर गया था या उड़ गया था।
यद्यपि अभी वसंत का आरम्भ ही था
और समीप ही पुष्प-कलिकायें प्रस्फुटित हो रही थीं।
अनाज का खेत भी अभी बोया ही गया था,
किंतु वह, जो कभी खुशी के गीत गाती थी, अब बैठ कर रोने के अतिरिक्त क्या करती ?
दुःख में मूर्छित सी अकेली बैठे रहना,
कितना कष्टदायक है, कितना भयावह !'

('I saw a bird alone,
In its nest it sat alone,

For its mate was dead or flown
Though it was early spring.
Hard by were buds half-blown,
With cornfields freshly sown;
It could only perch and moan
That used to sing;
Droop in sorrow left alone;
A sad sad thing.")

महादेवी के काव्य में कल्पना की रंगीन बारीकियाँ मन को बरबस मुग्ध कर लेती हैं। उनकी रंगीन-कल्पना भावुकता के साथ ऐसी घुल-मिल गई है कि उनके स्वच्छ अन्तर पट पर मनोज्ञ चित्र उतरते चलते हैं और वे अपनी सूक्ष्मग्राहिणी प्रतिभा द्वारा उनका ज्यों का त्यों चित्रण कर देती हैं। भाव-मूर्त्त होते ही मानों रंग छलक पड़ते हैं और शब्दों में न समा कर सजल चित्रों की स्निग्धता में फैल जाते हैं। उनकी कविता में रहस्य-प्रवृत्ति का प्राधान्य है। अधिक चिंतनशील होने के कारण उनकी भावनायें उड़ते बादलों की-सी सघनता से ओतप्रोत हृदय के करुणतम उच्छ्वास और आँसुओं के तुहिन-कणों की धूमिलता में सहज अविज्ञेय बन गई हैं। अंतर्मुखी अनुभूति, अशरीरी-भावना और रहस्य-चिंतन के आवरण उनके काव्य की आत्मा को इतना आच्छन्न कर लेते हैं कि उनके भावों में अस्पष्टता और क्लिष्ट कल्पना का अंश अधिक आ जाता है, जिससे अभीप्सित माधुर्य की व्यंजना नहीं हो पाती। 'नीहार', 'रश्मि', 'नीरजा', 'सांध्यगीत', 'यामा' और 'दीपशिखा' आदि पुस्तकों में सूक्ष्म-कल्पनाओं की सघनता और स्वनिर्मित अनेकरूपता के साथ-साथ भावात्मक प्रवृत्तियों का संघर्ष है। कहीं कल्पना-बाहुल्य होने से उनके गीतों के पद भाराक्रान्त होकर लिथड़ते से हैं और कहीं शब्द उभर-उभर कर भावों की सहज गति में व्यवधान उत्पन्न करते हैं, किंतु इसके विपरीत क्रिस्टिना का अंतर्दाह सच्चा है और उसकी लगन स्वाभाविक है। उसके हृदय में जो निर्झर की भाँति भाव उमड़ते हैं—वे अनुकूल स्थल पाकर प्रकट हो जाते हैं और कहीं भी कृत्रिमता का आभास नहीं हो पाता।

'अकेली और पगली सी रोती रह,
अपने हृदय को आँसुओं से भर ले।
क्योंकि तेरी व्यथा और आँसुओं का रहस्य कोई भी नहीं जान सकता।

जब तक प्रात:काल न हो और सुखद ओसकण दिखाई न पड़ें, तब तक रोती रह।'

अथवा

'यह निरर्थक धारणा कि मैं क्या से क्या बन सकती थी, जो मेरे मस्तिष्क पर रात-दिन छाई रहती है, वह ज़रा भी चैन नहीं लेने देती। उत्तर की शीतल वायु ने मेरी सारी हरियाली उजाड़ दी, मेरा सूर्य पश्चिम में छिप गया।'

('Weep, sick anb lonely,
Bow thy heart to tears,
For none shall guess the secret
Of thy griefs and tears,
Weep, till the day dawn,
Refreshing dew.'

Or

'The fruitless thought of what I might have been
Haunting me ever will not let me rest;
A cold north wind has withered all my green,
My sun is in the west.')

'रिमेम्बर मी' (Remember Me), 'स्वीट डेथ' (Sweet Death), 'माई ड्रीम' (My dream), 'साउण्ड स्लीप' (Sound Sleep) आदि कतिपय स्फुट गीतों में क्रिस्टिना के छटपटाते हृदय की निराशा और वेदना अंतर्निहित है। सन् १८६२ में 'गोब्लिन मार्केट' और सके तीन वर्ष पश्चात् 'दि प्रिंग्रेस् प्रोग्रेस, नाम की क्रिस्टिना की प्रमुख कृति सचित्र काशित हुई। 'गोब्लिन मार्केट', में दो ऐसी लड़कियों की कथा वर्णित है, जो एक सुनसान जंगल में घूमती हुई जलस्रोत के समीप पिशाचों के झुण्ड से मिलती है और अपने सुनहरी बालों के एक लट के बदले में कुछ जादू के फल खरीद लेती हैं। उनमें से एक लड़की तो इन फलों को चखने का साहस नहीं करती, किन्तु दूसरी उन्हें खा लेती है और तत्क्षण ही जर्जरित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ती है। उसकी बहिन अत्यंत भयभीत होते हुये भी पुन: उन पिशाचों से मिलती है और कोई ऐसी विषनाशक जड़ी उनसे लेने में समर्थ होती है, जो मृत लड़की को पुन: जीवित कर देती है।

'दि प्रिंसेस् प्रोग्रेस' में एक राजकुमार का आख्यान है, जो अकेला अपनी

पत्नी से मिलने के लिये चल पड़ता है। उसकी पत्नी–राजकुमारी–बहुत दूर है और पति के विरह में पागल-सी क्षण-प्रतिक्षण पथ में आँखें बिछाये उसकी प्रतीक्षा करती रहती है। मार्ग में राजकुमार को अनेक कष्ट उठाने पड़ते हैं— प्रथम तो वह एक जादूगरनी द्वारा बंदी बना लिया जाता है, पुनः वहाँ से किसी प्रकार छूटने पर वह एक वृद्ध द्वारा, जो एक गुफा में आयुवर्द्धक रसायन पका रहा था, भट्टी में आग झपकने के लिये रोक लिया जाता है। वहाँ से विमुक्त होने के पश्चात् जब वह आगे बढ़ता है तो एक भयानक पर्वत-निर्झर में डूबते-डूबते किसी प्रकार बच जाता है और अनेक विघ्नों को पार करके अत्यंत कठिनाई से जब वह महल के समीप पहुँचता है तो उसे अपनी पत्नी का सामने से आता हुआ शव का जलूस दीख पड़ता है, जो उसके वियोग में प्रतीक्षा करते-करते अंत में प्राण छोड़ देती है।

कहते हैं—'प्रिंसेस् प्रोग्रेस' का कथानक क्रिस्टिना के अपने व्यक्तिगत जीवन पर घटित होता है, जिसमें प्रिय-वियोग का हाहाकार और प्यार की पीर के दंश की छटपटाहट है। राजकुमारी मरते हुये जो करुण-गीत गाती है,---वह क्रिस्टिना के अंतर में निगूढ़ प्रणय की व्यथित अभिव्यक्ति है।

'मेरे प्रिय! जब मैं मर जाऊँ तो मेरे लिये व्यथा भरे गीत न गाना
मेरे ऊपर गुलाब के पुष्प अथवा शोक-बेल न लगाना,
वरन् ओस-कण और वर्षा की फुहार से भीगी घास मेरे ऊपर
उगने देना।
तुम चाहे तो मुझे याद रखना—चाहे भूल जाना।
अब मैं छाया के दर्शन न कर सकूँगी,
अब मैं वर्षा की अनुभूति से वंचित रहूँगी,
अब मैं बुलबुल का करुण गीत, जो वेदना में डूबा हुआ होता
है, न सुन सकूँगी।
सम-स्थिति वाली गोधूलि–वेला में स्वप्न-विभोर होने की बात
न जाने
मैं याद रख सकूँगी अथवा भूल जाऊँगी'

('When I am dead, my dearest,
Sing no sad songs for me;
Plant thou no roses at my head,
Nor shady cypress tree;
Be the green grass above me

With showers and dew drops wet,
And if thou wilt, remember,
And if thou wilt, forget.
I shall not see the shadows,
I shall not feel the rain ;
I shall not hear the nightingale
Sing on, as if in pain ;
And dreaming through the twilight
That doth not rise nor set,
Haply I may remember
And haply may forget. ")

कहने की आवश्यकता नहीं कि क्रिस्टिना की कृतियों में कुमारीत्व की अमल-धवल पावनता, भोली सरलता और यत्किंचित् अल्हड़पन भी है, जिसमें विराग की धूमिल अरुणिमा यत्र-तत्र बिखरी हुई है। महादेवी के काव्य में नारीत्व का क्रंदन, असफल पत्नीत्त्व की खीज और द्विविधाग्रस्त अभावजन्य उपराम है, जिसमें नारी-सुलभ समर्पण-भावना और जीवन की गुत्थी न सुलझने के कारण दुर्भेद्य सघनता व्याप्त हो गई है। क्रिस्टिना नियति के क्रूर थपेड़ों से मर्माहत हो वेदना, अविश्वास और अदृष्ट की आशंका में डूबी हुई विरह के दर्दीले गीत गाती है, जिनमें हृदय की तड़पन, भावों की लड़खड़ाहट, आकुल-प्राणों की कसक और आंतरिक आवेगों का संघात है,— महादेवी के भावोद्वेगों में मीठी कचट होते हुए भी वचन-विदग्धता, अमूर्त्त व्यंजना और बिखरती, मचलती भावप्रवणता है, जो हृदय की गहराई में उतरती चलती है और जिसमें उठती-गिरती विपुल तरंगावलियों की-सी अविराम धड़कन सुन पड़ती है। इन सब विषमताओं के बावजूद इन दोनों के ही काव्य विषाद की हल्की, झीनी धूमिलता से आच्छन्न हैं, जो उत्तरोत्तर सघन होती जाती है और जिसके अतल में न जाने कितने अंतःस्वर आवाक् होकर उनके अंतर के मूक हाहाकार में एकाकार होने के लिये छटपटा रहे हैं।

महादेवी वर्मा और आलोचना-साहित्य की समस्याएँ

डॉक्टर रामविलास शर्मा

['महादेवी जी अपने गीतों में 'देवी' के रूप में नहीं, एक 'मानवी' के रूप में दर्शन देती हैं। वे अपनी भाव-व्यंजना में इस धरती पर काम करने वाली मनुष्य नामक प्राणी ही नहीं हैं, वरन् उसका एक भेद नारी भी हैं। उनका नारीत्व सामाजिक सीमाओं के अन्दर विकास के लिए पंख फड़फड़ाता है; उसकी यह व्याकुलता अनेक सांकेतिक रूपों में उनकी कविताओंमें प्रकट होती है।

महादेवी जी की नारी-प्रकृति की एक सरस विशेषता उनका हठ है। उनके प्राण 'पागल' हैं तो हठीले भी हैं।

'अध्यात्मवादी' महादेवी का अभिमान देखने योग्य है जो निजत्त्व देने में असमर्थ होकर प्रिय से मिल नहीं सकतीं।

'मिलन-मन्दिर में उठा दूँ जो सुमुख से सजल 'गुंठन,
मैं मिटूँ प्रिय में मिटा ज्यों तप्त सिकता में सलिल-कण,
सजनि मधुर निजत्त्व दे
कैसे मिलुँ अभिमानिनी मैं !'—]

श्रीमती महादेवी वर्मा के साहित्य पर इतना लिखा जा चुका है और उन्होंने स्वयं साहित्य की समस्याओं पर इतना लिखा है कि आज उनके संबन्ध में और कुछ लिखना आलोचना-साहित्य की समस्याओं का उल्लेख किए बिना संभव नहीं है। महादेवी जी छायावाद के मध्याह्नकाल से और अपने जीवन के उष:काल से साहित्य-रचना करती आई हैं; छायावाद और

महादेवी जी के साहित्य में घनिष्ठ संबन्ध होना स्वाभाविक है। इस संबन्ध की रूपरेखा क्या है, किस हद तक महादेवी जी छायावाद का प्रतिनिधित्व करती हैं और किस हद तक छायावाद उनके साहित्य से बल-संबल पा सका है या निर्बल हो गया है, यह आधुनिक आलोचना-साहित्य की नगण्य समस्या नहीं है। इस समस्या पर हिन्दी के गण्य-मान्य आलोचक एकमत हैं—ऐसा भी नहीं कहा जा सकता। इस संबन्ध में यहाँ एक-दो उदाहरण देना अप्रासंगिक न होगा।

छायावादी साहित्य और महादेवी जी की रचनाओं के परस्पर सम्बन्ध पर प्रकाश डालते हुए नगेन्द्र जी कहते हैं—

'जैसा मैंने एक और स्थान पर भी कहा है, महादेवी के काव्य में हमें छायावाद का शुद्ध अमिश्रित रूप मिलता है। छायावाद की अन्तर्मुखी अनुभूति, अशरीरी प्रेम जो बाह्य-तृप्ति न पाकर अमांसल सौंदर्य की सृष्टि करता है, मानव और प्रकृति के चेतन संस्पर्श, रहस्य-चिन्तन (अनुभूति नहीं), तितली के पंखों और फूलों की पंखड़ियों से चुराई हुई कला, और इन सबके ऊपर स्वप्न सा पुरा हुआ एक वायवी वातावरण—ये सभी तत्व जिसमें घुले मिलते हैं, वह है महादेवी की कविता। महादेवी ने छायावाद को पढ़ा नहीं है, अनुभव किया है। अतएव साहित्य का विद्यार्थी उनकी विवेचना का आप्त वचन के समान ही आदर करेगा।' (विचार और अनुभूति; पृ० १३०)

इस धारणा के विपरीत श्री नन्ददुलारे वाजपेयी का विचार यह है—

'हिन्दी में महादेवी जी का प्रवेश छायावाद के पूर्ण ऐश्वर्यकाल में हुआ था, किन्तु आरंभ से ही उनकी रचनाएँ छायावाद की मुख्य विशेषताओं से प्रायः एकदम रिक्त थीं। मानव अथवा प्रकृति के सूक्ष्म किन्तु व्यक्त सौंदर्य में आध्यात्मिक छाया का भान मेरे विचार से छायावाद की एक सर्वमान्य व्याख्या होनी चाहिए। इस व्याख्या में आये 'सूक्ष्म' और 'व्यक्त' इन अर्थगंभीर शब्दों को हम अच्छी तरह समझ लें। यदि वह सौंदर्य सूक्ष्म नहीं है, साकार होकर स्वतन्त्र क्रियाशील है और किसी कथा या आख्यायिका का विषय बन गया है तो हम उसे छायावाद के अन्तर्गत नहीं ले सकेंगे।' ('यामा' का दार्शनिक आधार)।

नगेन्द्र जी और वाजपेयी जी की धाराओं का अन्तर स्पष्ट है। नगेन्द्र जी को महादेवी जी के काव्य में छायावाद का शुद्ध रूप मिलता है; वाजपेयी जी

को उनकी रचनाएँ छायावाद की मुख्य विशेषताओं से प्रायः रिक्त दिखाई देती हैं।

इसे हम साधारण मतभेद कहकर टाल नहीं सकते।

वाजपेयी जी ने छायावाद की जो व्याख्या की है, उसके अनुसार अंग्रेज़ कवि स्कॉट और बायरन छायावाद के एक सीमान्त पर दिखाई देते हैं तो वर्ड्स्वर्थ भी छायावादके दूसरे सीमान्त पर ठहरा हुआ प्रकृत छायावादी नहीं मालूम होता। अंग्रेज़ी साहित्य में, वाजपेयी जी के अनुसार, प्रकृत छायावादी केवल शेली है जो 'प्राकृतिक सूक्ष्म सौंदर्य-भावना का एकमात्र अधिष्ठाता' है। (उपयुक्त)। लेकिन वाजपेयी जी ने जिस कारण स्कॉट और बायरन को छायावाद के सीमान्त पर रखा है, उस पर विचार करने से शैली का भी आधे से ज्यादा साहित्य उसी सीमान्त पर ठहरेगा।

बाइरन और स्कॉट छायावाद के सीमान्त पर इसलिए हैं कि उनका सौन्दर्य सूक्ष्म नहीं है बल्कि 'साकार होकर स्वतन्त्र क्रियाशील है और किसी कथा या आख्यायिका का विषय बन गया है।' इस दृष्टि से शेली की अनेक कथाएँ और आख्यायिकाएँ भी छायावाद के सीमान्त पर ठहरेंगी।

अंग्रेज़ी साहित्य के इतिहासकार रोमाण्टिक साहित्य की परिधि इससे ज्यादा विशद आँकते आये हैं। इतिहास ने रोमाण्टिक साहित्य की विशेषताएँ निश्चित कर दी हैं; अब यह माँग करना दुराग्रह होगा कि रोमाण्टिक-साहित्य हमारी धारणा के अनुसार यों होना चाहिए था।

अंग्रेज़ी के रोमाण्टिक साहित्य और हिन्दी के छायावादी साहित्य में महत्वपूर्ण भेद है। शेली और वर्ड्स्वर्थ के रचनाकाल से पहले १६-१७ वीं सदी में शेक्सपियर, मिल्टन आदि सामन्ती विचारधारा के ख़िलाफ़ एक क्रान्ति कर चुके थे। १६वीं सदी के आरम्भ में औद्योगिक पूँजीवाद के प्रसार से मज़दूर-वर्ग का जीवन-संघर्ष तीव्र हो उठा था और उस समय की प्रगतिशील विचारधारा पूँजीवादी शोषण से टक्कर लेने लगी थी। रोमाण्टिक-साहित्य में जहाँ पलायन है, वहाँ वह इस पूँजीवादी शोषण से संघर्ष न करने या उससे समझौता करने का फल है। हिन्दी का छायावादी साहित्य सामन्त-विरोधी औद्योगिक क्रांति के बाद का साहित्य नहीं है। वह साम्राज्यवाद और सामन्तवाद के विरुद्ध भारतीय जनता के संघर्षकाल का साहित्य है। उसमें सबसे सशक्त स्वर देश की स्वाधीनता और जनतन्त्र प्राप्त करने की आकांक्षा का स्वर है।

अंग्रेज़ी रोमाण्टिक-साहित्य के सबसे प्रगतिशील कवि शेली की विचार-

धारा अपना अग्रसर रूप मज़दूरों का आह्वान करते हुए प्रकट करती है कि वे पूँजीवादी सत्ता के बदले अपनी सत्ता स्थापित करें। 'मास्क ऑफ अनार्की' नाम की रचना में शेली कहता है—

'Rise like lions from your slumber,
In unvanquishable number,
Shake to earth your chains like dew,
Which in sleep had fallen on you,
Ye are many, they are few.'

('नींद छोड़कर शेरों की तरह उठो; अजेय संख्या में उठो। नींद में जो ज़ंजीरें पहन ली थीं, उन्हें झटक कर ओस कणों की भाँति धरतीपर गिरा दो। तुम बेशुमार हो; वे मुट्ठी भर हैं।')

शेली की चेतना समाजवाद की ओर उन्मुख थी जैसा कि मार्क्स ने शेली के बारे में लिखा था—वह जीवित रहता तो समाजवादी होता।

हिन्दी के छायावादी कवियों में सबसे आगे बढ़ी हुई चेतना साम्राज्य-विरोधी सामन्त-विरोधी क्रान्ति की ओर उन्मुख है। निराला के 'बादल-राग' में वह यों प्रकट हुई है—

'रुद्ध कोष, है क्षुब्ध तोष,
अङ्गना-अङ्ग से लिपटे भी
आतङ्क-अङ्क पर काँप रहे हैं
धनी, वज्र-गर्जन से बादल!
त्रस्त नयन-मुख ढाँप रहे हैं।
जीर्ण बाहु, है शीर्ण शरीर,
तुझे बुलाता कृषक अधीर,
ऐ विप्लव के वीर!
चूस लिया है उसका सार,
हाड़मात्र ही है आधार,
ऐ जीवन के पारावार!'

अंग्रेज़ी रोमाण्टिक-साहित्य का एक सीमान्त समाजवादी विचारधारा को छूता है तो दूसरा आदर्शवाद (Idealism) की विभिन्न धाराओं में डूबा हुआ है। हिन्दी के छायावादी साहित्य का एक सीमान्त साम्राज्य-विरोधी सामन्तविरोधी विचारधारा को छूता है तो दूसरी ओर सामन्तवाद का समर्थन करने वाली अनेक आदर्शवादी धाराओं में डूबा हुआ है। इनके

अतिरिक्त छायावादी या रोमाण्टिक साहित्य के दूसरे सीमान्त निर्धारित करना एक इतिहास-विरोधी कार्य होगा।

वाजपेयी जी ने अंग्रेज़ी के रोमाण्टिक-साहित्य और हिन्दी के छायावादी साहित्य के महत्वपूर्ण भेद का उल्लेख नहीं किया। उन्होंने जो सीमान्त निश्चित किये हैं, वे भी विज्ञान-सम्मत नहीं। ऐसी दशा में उनका यह सन्देह अस्वाभाविक नहीं है—'मुझे आशा नहीं है कि छायावाद की मेरी यह व्याख्या निकट भविष्य में सर्वमान्य हो सकेगी।'

नगेन्द्र जी के लिये सीमान्तों का झगड़ा नहीं है। अन्तमु`खी अनुभूति, अमांसल सौंदर्य, मानव और प्रकृति के चेतन संस्पर्श, रहस्य-चिन्तन, पंखों और पंखड़ियों से चुराई हुई कला, वायवी वातावरण—ये महादेवी जी के काव्य की विशेषताएँ हैं।

ये विशेषताएँ किस तरह उत्पन्न हुईं, इस सम्बन्ध में नगेन्द्र जी लिखते हैं—'सामयिक परिस्थितियों के अनुरोध से जीवन से रस और मांस न ग्रहण कर सकने के कारण वह एक तो वांछित शक्ति का संचय नहीं कर पायीं, दूसरे एकान्त अन्तमु`खी हो गईं। इस प्रकार उसके आविर्भाव में मानसिक दमन और अतृप्तियों का बहुत बड़ा योग है, इसको कैसे भुलाया जा सकता है?'

अगर मानसिक दमन और अतृप्तियों से ऐसी कविता रची जा सके जो सुन्दर हो और साथ ही शुद्ध छायावादी भी, तो दमन और अतृप्तियों का स्वागत क्यों न किया जाय?

अगर छायावादी कविता की विशेषताएँ मानसिक दमन और अतृप्तियों से उत्पन्न हुई हैं, तो छायावादी आलोचना की विशेषताओं का क्या कोई दूसरा स्रोत है?

नगेन्द्र जी पहले तो यह मानते हैं कि महादेवी जी की कविता के आविर्भाव में मानसिक दमन और अतृप्तियों का बहुत बड़ा योग है। फिर उनकी धारणा यह भी है कि महादेवी जी के काव्य में हमें छायावाद का शुद्ध अमिश्रित रूप मिलता है। तीसरे इस अतृप्तिवाद को और विराट् रूप देते हुए वह समस्त काव्य और ललित-कलाओं को उसी के अन्दर समेट लेते हैं। अतृप्त काम-वासना और साहित्य के सम्बन्ध में उनकी उक्ति है—

'और वास्तव में सभी ललित-कलाओं के—विशेषतः काव्य के और उससे भी अधिक प्रणयकाव्य के—मूल में अतृप्त काम की प्रेरणा मानने में आपत्ति के लिये स्थान नहीं है।' ('दीपशिखा')

इस तरह नगेन्द्रजी के लिये न सिर्फ़ 'दीपशिखा' न सिर्फ़ महादेवी जीका साहित्य, न सिर्फ़ छायावादी काव्य, वरन् तमाम ललित-कलाएँ और समूचा प्रणय-काव्य अतृप्त काम प्रेरणा से उत्पन्न होता है।

योरप में एक वर्ग ऐसे अवकाशभोगी लोगों का है जो जीवन में कर्म करने से विमुख है। उसका अधिकार दूसरों के कर्मफल पर है; कर्म करने का उत्तरदायित्व वह अपने लिये नहीं मानता। इस वर्ग ने ऐसा जीवन-दर्शन उत्पन्न किया है जिसके अनुसार मनुष्य की तमाम सामाजिक और साहित्यिक क्रियाएँ काम-वासना से प्रेरित दिखाई देती हैं। यह वर्ग सामाजिक विकास की शक्तियों और उत्पादन करने वाले श्रमिक वर्ग का ऐसा वैरी बन गया है, श्रम से वह इतनी दूर जा पड़ा है कि सिवाय कामवासना और उसकी तृप्ति के उसके लिये जीवन में कोई महान् उद्देश्य नहीं रह गया। हिन्दुस्तान में साम्राज्यवाद के समर्थक वर्गों द्वारा पोषित लेखक योरप की इस पतित पूँजीवादी विचारधारा को यहाँ के सामन्ती नायिकाभेद से मिला देते हैं और कहते हैं—देखिये, दोनों में कितना गहन मनोविज्ञान है! अतृप्त काम वासना से सत्यं, शिवं, सुन्दरं सुलभ होते हैं। सब तज हरि भज! अतृप्ति के बिना साहित्य का निर्माण असंभव है!

इस व्याख्या में लगे हाथ एक और लाभ यह है कि वह शाश्वत है और साम्राज्यवाद, सामन्तवाद—इस तरह के किसी अशाश्वत वाद-विवाद के झमेले में पड़ने की ज़रूरत भी नहीं रहती।

निस्सन्देह अतृप्ति की भावना छायावादी कविता में मिलती है और वह महादेवी जी की रचनाओं में भी विद्यमान है लेकिन क्या छायावादी काव्य की मूल-प्रेरणा वही है? यदि मूल प्रेरणा वही हो और छायावादी कविता वायवी वातावरण के स्वप्न बुनने के अलावा और कुछ न दे तो वह अवकाश भोगी वर्गों के अलावा कामकाजी जनता के लिये ज्यादा लाभदायक सिद्ध न होगी। क्या महादेवी जी की समूची कविता इसी तरह की है?

महादेवी जी के काव्य-साहित्य का मूल्याङ्कन करते हुए हिन्दी आलोचकों ने साधारणतः उसके पीड़ावादी, पलायनवादी तत्वों पर दृष्टि केन्द्रित की है। कोई इन तत्वों को शाश्वत काव्य-वस्तु सिद्ध करता है, कोई उन्हें लोकमंगल के अनुकूल बतलाता है, कोई उन्हें समाज-विरोधी कहता है। उन तत्वों के मूल्याङ्कन में अन्तर है, लेकिन इस बारे में सभी एकमत मालूम होते हैं कि महादेवी जी की काव्यवस्तु का निर्माण इन्हीं पीड़ावादी, पलायनवादी तत्वों से हुआ है।

श्री विनयमोहन शर्मा महादेवी जी की अन्तर्मुखी वृति का उल्लेख करते हुए लिखते हैं—

'छायावाद ने महादेवी को जन्म दिया और महादेवी ने छायावाद को जीवन। प्रगतिवाद (साम्यवाद) के नारे से प्रभावित हो जब छायावाद के मान्य कवियों ने अपनी आँखें पोंछ कर भीतर से बाहर झाँकना प्रारंभ कर दिया और अनन्त की ओर से दृष्टि फेर कर मार्क्स पर उसे केन्द्रित कर दिया तब भी महादेवी की आँखें भीगती रहीं, हृदय सिहरन भरता रहा, ओठों की ओट में आहें सोती रहीं और मन 'किसी निष्ठुर' की आरती उतारता ही रहा। दूसरे शब्दों में वे अखंड भाव से अन्तमुंखी बनी रहीं।'

('नई धारा', वर्ष २ अंक १)

विनयमोहन जी के अनुसार महादेवी जी की काव्यवस्तु का निर्माण भीगी आँखों, सिहरन भरते हृदय, सोती हुई आहों और निष्ठुर की आरती से हुआ है। दूसरे शब्दों में महादेवी-काव्य का मतलब है— पीड़ा और पलायन। इसके सिवा वहाँ दूसरी वस्तु नहीं है।

श्री देवराज का मत है—'महादेवी जी ने अपनी कविता में कहीं भी युगजीवन अथवा स्वयं जीवन के सम्बन्ध में विचार प्रकट करने की चेष्टा नहीं की है, उनके आलोचक के लिये यह बड़े सन्तोष की बात है। (साहित्य-चिन्ता, पृ०२०२)

इसका यही अर्थ हो सकता है कि महादेवी जी की कविता जीवन और युग-जीवन दोनों से परे है। ऐसी हालत में या तो वह मृत्यु का प्रतिबिंब होगी या ऐसे किसी तत्व का जो न जीवन है न मृत्यु!

श्री लक्ष्मी नारायण सुधांशु महादेवी जी के रहस्यवाद को जीवन से परे नहीं मानते। दोनों का परस्पर संबन्ध दिखलाते हुए वे कहते हैं— 'महादेवी वर्मा ने अपनी सारी मनोभावनाओं को एक अप्राप्तव्य आराध्य के उपलक्ष्य से अभिव्यक्त करने की चेष्टा की है। अतृप्त इच्छाएँ ही प्रलुब्ध होती हैं। इतना होने पर भी जगत और जीवन के संबन्ध को हम विध्वंस नहीं कर सकते। उसी के अंतर्गत रहकर हम जीवन में उत्तीर्ण हो सकते हैं और वस्तुतः जीवन की यही सच्ची साधना है। क्षुद्र से विराट् तथा नश्वर से शाश्वत होने के लिए अंश में ही पूर्णता तथा सीमा में ही असीमता उपलब्ध करना पड़ेगा। अपनी सारी चेतना के साथ देखने से बद्ध भी अबद्ध मालूम पड़ता है। जीवन के विषाद तथा अवसाद चेतना की

अन्तर्ज्योति से स्वत: दीप्तिमय होकर आनन्द तथा उल्लास में परिवर्तित हो जाते हैं।' (जीवन के तत्व और काव्य के सिद्धांत, पृ० ३२१-२२)

सुधांशु जी के अनुसार महादेवी जी का आराध्य अप्राप्तव्य है। आराध्य अप्राप्तव्य तभी हो सकता है जब वह जीवन से परे हो। इच्छाएँ अतृप्त हैं; इसलिये प्रलुब्ध हैं। शायद अतृप्त इच्छाएँ कभी भी तृप्त नहीं हो सकतीं, क्योंकि आराध्य अप्राप्तव्य है। सारी 'चेतना' के साथ देखने से बद्ध भी अबद्ध मालूम पड़ेगा। इस प्रकार महादेवी जी की काव्यवस्तु अबद्ध और अप्राप्तव्य की अतृप्तिजन्य साधना ठहरती है।

श्री अमृतराय महादेवी जी के काव्य का परिचय इस प्रकार देते हैं—

'महादेवी ने स्वयं अपनी कविता का सबसे अच्छा परिचय दिया है:

मैं नीरभरी दुख की बदली

उनकी इसी एक पंक्ति को मन में रखे हुए आप उनके सम्पूर्ण काव्य-साहित्य का अवलोकन कर डालिये और तब आप तुरन्त जान लेंगे कि यही भाव-शिराओं में बहने वाले रक्त के समान उसमें सर्वत्र प्रवाहित हो रहा है।'

('नया-साहित्य', भाग ४)

महादेवी जी की काव्य-वस्तु का निरूपण करने में श्री अमृतराय और दूसरे आलोचकों में कोई अन्तर नहीं है। अमृतराय जी भी और सभी आलोचकों की तरह उस काव्य-वस्तु को पीड़ावादी पलायनवादी तत्त्वों से निर्मित मानते हैं। अन्तर है, उन तत्त्वों के मूल्याङ्कन और उनके विवेचन में। लेकिन यदि महादेवी वर्मा के काव्य-साहित्य में कहीं कोई सामन्त-विरोधी, जनवादी, स्वस्थ, जीवन के पोषक तत्त्व आये हैं, तो अमृतराय जी उतनी ही दृढ़ता से उन्हें अस्वीकार करते हैं जितनी दृढ़ता से नगेन्द्र जी या देवराज जी।

एक दूसरे लेख में वह कहते हैं—'महादेवी वर्मा की कविता की पंक्ति-पंक्ति आँसुओं से गीली है, यहाँ तक कि उनका एक 'आँसुओं का देश' ही है, सबसे अलग। उनकी सारी कविताओं को एक में पिरोने वाली लड़ी आँसुओं की लड़ी ही हो सकती है। उन्हें आँसुओं से मोह है और उनसे वे अपना सिंगार करती हैं क्योंकि उन्हें अपनी व्यथा से मोह है।'

('नयी-समीक्षा', पृ० १४७)

एक बार यह निश्चय कर लेने पर कि महादेवी जी का काव्य पीड़ावादी पलायनवादी तत्त्वों से ही निर्मित है, आलोचक इसका विश्लेषण आरंभ करते हैं कि ये तत्त्व उनके काव्य में क्यों मौजूद हैं। नगेन्द्र जी का मत हम

ऊपर देख चुके हैं जिसके अनुसार ये तत्त्व अतृप्त कामवासना का फल है। कुछ लोग अतृप्ति को मानते हुए उसे अध्यात्म-चिन्तन अथवा आध्यात्मिक अनुभूति से जोड़ देते हैं। जो लोग काव्य को सामाजिक परिस्थितियों से परे मानते हैं, वे स्वभावतः इस पलायन का कारण सामाजिक सम्बन्धों में न देखकर कवयित्री के व्यक्तिगत जीवन में ढूँढ़ते हैं या उनके व्यक्तिगत जीवन को ही आध्यात्मिक स्तर पर प्रतिष्ठित मान लेते हैं।

श्री गंगाप्रसाद पांडेय उनके व्यक्तित्व के बारे में लिखते हैं—'महादेवीजी का व्यक्तित्व आध्यात्मिक है, इसमें सन्देह नहीं।' और—'महादेवी जी के व्यक्तित्व से तुलना करने के लिए हिमालय ही सबसे अधिक उपयुक्त भी जान पड़ता है। उनके व्यक्तित्व का वही उन्नत और दिव्य रूप, वही विराट् और विशाल-प्रसार, वही अमल-धवल तथा अचल-अटल धीरता-गंभीरता, वही करुणा एवं तरलता और सबसे बढ़ कर वही सुखकर शुभ्र हास। यही तो महादेवी हैं।'

('आजकल' जुलाई, १९५१)

इसके विपरीत 'सुधांशु' जी का मत है—'महादेवी वर्मा के जीवन की शुष्कता ने उन्हें लोक-विमुख वैराग्य देकर लोकोत्तर आलम्बन की ओर प्रेरित किया है, जिसके अनुसन्धान में कभी तृप्ति नहीं।'

('जीवन के तत्त्व और काव्य के सिद्धान्त', पृ० ३२०)

और नगेन्द्र जी का विचार है—'महादेवी जी का एकाकी जीवन उनके काव्य में स्पष्ट रूप से प्रतिबिंबित है। किसी अभाव ने ही उनके जीवन को एकाकिनी बरसात बना दिया है, सुख और दुलार के आधिक्य ने नहीं।'

('दीपशिखा')

एकाकीपन की चर्चा करते हुए श्री अमृतराय 'दीपशिखा' के बारे में लिखते हैं—'इस तरह पुस्तक की एक टेक है—एकाकीपन और दूसरी एक ज़िच। किसी भी साहित्यिक रचना के दो पक्ष होते हैं—एक सामाजिक और दूसरा वैयक्तिक और इसी नाते प्रकारान्तर से सामाजिक। पहले पक्ष के विवेचन के लिये फ्रायडीय प्रणाली का उपयोग आलोचना के क्षेत्र में होता है। इस कविता के एक सुसंबद्ध फ्रायडीय विवेचन के लिए पुस्तक में अकूत सामग्री मिलेगी।'

('नयी समीक्षा' पृ० १४७)

अमृतराय जी कविता के दो पक्ष करते हैं—सामाजिक और वैयक्तिक। वैयक्तिक पक्ष 'प्रकारान्तर से' सामाजिक ठहरता है। पहले पक्ष के विवेचन

के लिये (उनका मतलब वैयक्तिक पक्ष के विवेचन से है) आलोचना-क्षेत्र में फ्रायडीय प्रणाली का उपयोग होता है। यहाँ पर यह कह देना ज़रूरी है कि फ्रायडीय प्रणाली के अलावा भी व्यक्ति और उसके व्यक्तित्व की परख की वैज्ञानिक पद्धतियाँ मौजूद हैं और जो लोग फ्रायडीय प्रणाली का उपयोग करके व्यक्ति की समस्याओं को परखते हैं, वे कम-से-कम साहित्य के क्षेत्र में क्रान्ति-विरोधी साबित हुए हैं।

अमृतराय जी एकाकीपन और ज़िच का ज़िक्र करने के बाद इनका सामाजिक विश्लेषण इस तरह करते हैं:—

'अब हम एकाकीपन के सामाजिक पक्ष पर विचार करेंगे।

'पूँजीवाद व्यक्ति और व्यक्ति के बीच के सहज मानवोचित रिश्ते को हटा कर उसके स्थान पर एक ऐसे सम्बन्ध की प्रतिष्ठा करता है जिसमें मनुष्य एक पण्य-वस्तु के सिवा और कुछ नहीं रह जाता। और इस प्रकार मानव और मानव के बीच का संबन्ध एक नये बिन्दु पर पहुँच जाता है जहाँ मानव संबन्धों में फिर किसी प्रकार का रस नहीं रह जाता। इस तरह एक ऐसी सामाजिक परिस्थिति पैदा होती है जिससे सहृदय व्यक्तियों के मन को ठेस लगना स्वाभाविक है। यह ठेस ही उन्हें मानसिक इच्छापूर्ति (Wish fulfilment) का मार्ग ढूँढ़ने पर विवश करती है। श्रीमती महादेवी वर्मा का वेदनामूलक रहस्यवाद भी ऐसी ही मानसिक इच्छा-पूर्ति है।' ('नयी समीक्षा'; पृ० १४८)

ये वाक्य पढ़ने पर मन में कई प्रश्न उठते हैं। पूँजीवाद मनुष्यों के सहज मानवोचित रिश्तों को हटाता है। पूँजीवाद से पहले के सामन्ती संबन्ध क्या सहज मानवोचित रिश्ते हैं?

पूँजीवादी संबन्धों से उत्पन्न होने वाली सामाजिक परिस्थिति में सहृदय व्यक्तियों के मन को स्वाभाविक रूप से ठेस लगती है और ठेस लगने पर वे मानसिक इच्छापूर्ति का मार्ग ढूँढ़ने पर 'विवश' होते हैं। पूँजीवाद जिस पलायनवादी साहित्य का नशा जन-साधारण में बाँटता है, क्या वह ठेस और विवशता का साहित्य है? यह साहित्य व्यक्ति की मानसिक इच्छापूर्ति का साहित्य है या एक वर्ग की भौतिक इच्छाओं—मज़दूर वर्ग को गुलाम बना रखने की इच्छाओं—का साहित्य है?

यदि महादेवी जी का साहित्य योरप के मानसिक इच्छापूर्ति वाले साहित्य जैसा है तो क्या हिन्दुस्तान में वही परिस्थितियाँ मौजूद हैं जो योरप में हैं?

अथवा उन परिस्थितियों के अभाव में क्या यह योरप के साहित्य का प्रभाव मात्र है ?

ये प्रश्न करते ही मालूम हो जाता है कि श्री अमृतराय के विश्लेषण में शब्दावली समाज-शास्त्रीय हैं; उसका तत्व दरअसल कोई ठोस विश्लेषण प्रस्तुत नहीं करता।

उसी निबन्ध में वे आगे कहते हैं।

'जैसा हमने अभी ऊपर देखा कि पूँजीवादी सामाजिक प्रणाली में हर व्यक्ति दूसरे को मनुष्य नहीं बल्कि एक वस्तु समझता है जिसका वह क्रय-विक्रय कर सकता है, क्योंकि पूँजीवादी उत्पादन प्रणाली में हर व्यक्ति को यह बुनियादी आजादी होती है कि वह अपनी उत्पादक शक्ति को मोल पर चढ़ाये। इस तरह सामाजिक बन्धन रोज़-बरोज़ ढीले होते जाते हैं क्योंकि वे अब व्यक्ति और व्यक्ति के संबन्ध नहीं हैं, और उनका आधार भी सहयोग न होकर होड़ है। होड़ पर टिकने वाले संबन्ध स्थायी नहीं हो सकते। इसी आत्मीयता की कमी के कारण कल्पना-विलासी व्यक्ति को स्वनिर्मित आत्मीयों का पल्ला पकड़ना पड़ता है। महादेवी जी ने व्यथा में ऐसा आत्मीय पाया है।'

(उप० पृ० १४८-४९)

यदि पूँजीवादी प्रणालीमें हर व्यक्ति दूसरे को पण्य-वस्तु समझे जिसका वह क्रयविक्रय कर सके तो ऐसे समाज में हर व्यक्ति एक साथ ही पूँजीपति भी होगा और मज़दूर भी। वास्तव में इस प्रणाली के अन्तर्गत एक 'वर्ग' खरीदने वालों का होता है और दूसरा 'वर्ग' खरीदे जाने वालों का होता है। इसीलिये पूँजीवादी प्रणाली जहाँ पूँजीपतियों में होड़, एक दूसरे को हड़पने और विनाश की ओर बढ़ने की वृत्ति उत्पन्न करती है, वहाँ वह मज़दूरों में—खरीदे जाने वालों में—ऐसी ज़बर्दस्त आत्मीयता उत्पन्न करती है जिसकी मिसाल पहिले के इतिहास में नहीं मिलती। श्री अमृतराय ने अपने अवैज्ञानिक विश्लेषण से वर्गों के संबन्ध को मनुष्य-मात्र का संबन्ध बना दिया है और मज़दूर वर्ग की आत्मीयता, परस्पर भाईचारे को भुला दिया है। कहना न होगा कि यह समूचा विश्लेषण अपने में सही भी हो तो भी हिन्दुस्तान की परिस्थितियों में बहुत ही आंशिक रूपसे वह लागू हो सकेगा।

इसमें सन्देह नहीं कि महादेवी जी के काव्य में पीड़ावादी पलायनवादी तत्व मौजूद हैं, लेकिन इनकी उत्पत्ति और स्थिति का सही कारण तब हम

अच्छी तरह जान सकेंगे जब हम इनके विरोधी तत्वों पर भी दृष्टिपात करेंगे और दोनों के परस्पर संबन्ध को जानने की कोशिश करेंगे।

महादेवी जी और उनकी कविता का परिचय नीर भरी दुःख की बदली या एकाकिनी बरसात कह कर नहीं दिया जा सकता। उन्हीं के शब्दों में उनका परिचय देना हो तो मैं यह पंक्ति उद्धृत करूँगा—

'रात के उर में दिवस की चाह का शर हूँ।'

निराला को छोड़ कर किसी भी छायावादी कवि में जीवन की इतनी चाह नहीं है, जितनी महादेवी में। निराशावाद की अँधेरी रात में जीवन-प्रभात की यह चाह महादेवी की रचनाओं में बार-बार दीप्त हो उठती है। और जितना ही यह अँधेरा घना होता है, उतना ही यह चाह और भी तीव्र हो जाती है। महादेवी जी ने अलंकृत शब्दावली और मनोहर रूपकों में जीवन और सौंदर्य की इस आकांक्षा को बारबार व्यक्त किया है।

'कंटकों की सेज जिसकी आँसुओं का ताज,
सुभग ! हँस उठ, उस प्रफुल्ल गुलाब ही सा आज,
बीती रजनि प्यारे जाग !'

क्या जीवन से पराङ्मुख कोई भी व्यक्ति ऐसी सुन्दर पंक्तियाँ लिख सकता है? क्या स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह कहने से उस ठोस जीवन-आकांक्षा—मानवीय-प्रेम, मानवीय-सौंदर्य की आकांक्षा—की व्याख्या हो जाती है जो इन पंक्तियों में व्यक्त हुई है?

महादेवी जी अपने गीतों में 'देवी' के रूप में नहीं, एक 'मानवी' के रूप में दर्शन देती हैं। वे अपनी भाव-व्यञ्जना में इस धरती पर काम करने वाली मनुष्य नामक प्राणी ही नहीं हैं, वरन् उसका एक भेद नारी भी हैं। उनका नारीत्व सामाजिक-सीमाओं के अन्दर विकास के लिये पंख फड़फड़ाता है। उसकी यह व्याकुलता अनेक सांकेतिक रूपों में उनकी कविताओं में प्रकट होती है। नारीत्व के इन तत्वों को निकाल दीजिये, उनका काव्य-साहित्य उतना ही नीरस और निर्जीव हो जायगा जैसा उन कवियों का जो पुरुष होकर रमणी-कंठ की नकल करते हुए कहते हैं—

'लाई हूँ फूलों का हास,
लोगी मोल, लोगी मोल।'

महादेवी जी की नारी-प्रकृति की एक सरस विशेषता उनका हठ है। उनके प्राण 'पागल' हैं तो हठीले भी हैं।

'उन्हीं तारक फूलों में देव !
गूँथना मेरे पागल प्राण—
हठीले मेरे छोटे प्राण !'

'अध्यात्मवादी' महादेवी का अभिमान देखने योग्य है जो निजत्व देने में असमर्थ होकर प्रिय से मिल नहीं सकतीं ।

'मिलन-मन्दिर में उठा दूँ जो सुमुख से सजल 'गुंठन,
मैं मिटूँ प्रिय में मिटा ज्यों तप्त सिकता में सलिलकण,
सजनि मधुर निजत्व दे
कैसे मिलूँ अभिमानिनी मैं !'

जीवन से पराङ्मुख कहलाने वाली इस कवयित्री की शृंगार-भावना अद्भुत है। 'कुमारसंभव' के रचयिता ने सुन्दरियों के चरण-स्पर्श की राह न देखकर स्वयं खिलनेवाले जिस अशोक का वर्णन किया था, मानो उसी को याद करके महादेवी जी लिखती हैं—

'रंजित कर दे यह शिथिल चरण ले नव अशोक का अरुण राग,
मेरे मण्डन को आज मधुर ला रजनी गन्धा का पराग,
यूथी की मीलित कलियों से
अलि दे मेरी कवरी सँवार!'

इतनी शृंगारप्रियता, फिर भी असफलता ! एक बार उनकी समझ में नहीं आता कि शृंगार में कौन सी त्रुटि रह गई जिससे वह विफल मनोरथ रहीं।

'क्यों आज रिझा पाया उसको
मेरा अभिनव शृंगार नहीं ?'

और जब उन्हें भासित होता है कि मिलन-क्षण आ पहुँचा, तब उनकी विह्वलता और भाव-व्यंजना नारी-सुलभ शंका और उत्सुकता से चित्रमय हो उठती है ।

'नित सुनहली साँझ के पद से लिपट आता अँधेरा;
पुलक-पंखी विरह पर उड़ आ रहा है मिलन मेरा;
कौन जाने है बसा उस पार
तम या रागमय दिन !'

महादेवी जी की कविता में नारी सुलभ शृंगार-भावना ही नहीं है, प्रेम की विह्वलता और कष्ट सहने का साहस भी है। वह अपने एकाकीपन को चुनौती देते हुए कहती हैं—

'जिसको पथशूलों का भय हो
वह खोजे नित निर्जन, गह्वर;
प्रिय के सन्देशों के वाहक
मैं सुख-दुख भेटूँगी भुजभर;
मेरी लघु पलकों से छलकी
इस कण-कण में ममता बिखरी !'

जो अपनी भुजाओं में सुख-दु:ख भेंटने के लिये समान रूप से तत्पर हो, उसके लिये यह नहीं कहा जा सकता कि उसकी हर पंक्ति आँसुओं से गीली है। कभी-कभी दु:ख और सुख का अनुपात ही बदल जाता है और दु:ख घेरने वाला न बनकर स्वयं सुख से घिर जाता है।

'सुख की परिधि सुनहली घेरे
दुख को चारों ओर
भेंट रहा मृदु स्वप्नों से
जीवन का सत्य कठोर !
चातक के प्यासे स्वर में सौ सौ मधु रचते रास !'

कहने वाले कह सकते हैं कि यह सब सौंदर्य और जीवन की कल्पना है; वास्तव में इस कल्पना का स्रोत तो अतृप्ति ही है। यह भी एक तरह की मानसिक इच्छापूर्ति है जो कुंठित व्यक्तित्व से उत्पन्न हुई है।

यदि जीवन और सौंदर्य को चाह प्रकट करने वाली कविता दमित इच्छाओं के ही कारण हो तो जितने भी जीवन और सौंदर्य के कवि हैं वे सब दमित इच्छाओं के शिकार साबित हों और जितने भी मृत्यु और कुरूपता के कवि हैं, वे सब तृप्त-इच्छाओं वाले समझे जायें।

महादेवी जी के व्यक्तित्व में नारी-हठ के साथ कहीं पत्थर जैसी दृढ़ता भी छिपी है, यह उनके कई गीतों से स्पष्ट हो जाता है। उनके अन्दर यह क्षमता है कि वह पीड़ा और आँसुओं के व्यापार को ही समाप्त न कर दें, बल्कि तितलियों के परों की रंगीनी और मधुर की गुनगुन छोड़ कर वीर-नारी के समान दर्प के साथ चुनौती दें।

'बाँध लेंगे क्या तुझे यह मोम के बन्धन सजीले ?
पन्थ की बाधा बनेंगे तितलियों के पर रँगीले ?
विश्व का क्रन्दन भुला देगी मधुप की मधुर गुनगुन,
क्या डुबा देंगे तुझे यह फूल के दल ओस-गीले ?

तू न अपनी छाँह को अपने लिये कारा बनाना !
जाग तुझको दूर जाना !'

क्या यह कोरी डींग है ? क्या यह भी एक तरह की सांकेतिक शब्दावली है जिसका सार-तत्व पलायन है और बाहरी अलंकार ही संघर्ष के हैं ? क्या महादेवी वर्मा को जीवन में कठिनाइयों का, विशेषकर सामाजिक विरोध और अपवाद का सामना नहीं करना पड़ा ? मेरी समझ में ऐसी बात नहीं है। महादेवी जी की कर्मठता, समाज-सुधार और जनसंपर्क की सीमाएँ हैं लेकिन इनका एकान्त अभाव हो,ऐसी बात नहीं है। 'शृंखला की कड़ियाँ,' 'स्मृति की रेखाएँ,' 'अतीत के चलचित्र' आदि पुस्तकें इस बात का प्रमाण हैं। महादेवी जी का कवि और गद्यकार एक दूसरे से जुड़े हुए हैं, वे दो बिखरी हुई विरोधी इकाइयाँ नहीं हैं।

महादेवी जी के व्यक्तित्व को अध्यात्मवादी मानने वाले उनके सबसे अधिक प्रशंसक गंगाप्रसाद जी पांडेय की यह भौतिकवादी बात सही मालूम होती है—

'परित्यक्त तथा उपेक्षित नारियों के पीत-क्रीतमुख भारतीय-समाज में, काले हिन्दू लॉ के समक्ष उन्होंने स्व-स्वीकृति के बिना विवाह को, डंके की चोट के साथ समाज तथा संसार के कटुतम व्यंग-प्रहार सहते हुए भी चुनौती देकर ही अपने जीवन क्रम की नींव धरी है। उन्होंने जो उचित समझा सो किया, हठ के साथ किया। संसार का कोई भी प्रलोभन या भय उससे उन्हें विमुख नहीं कर सकता।"

('आजकल', जुलाई ४१)

महादेवी जी की अनेक रचनाओं से उनके सम्बन्ध में पांडेय जी की यह धारणा पुष्ट होती है। उसमें सन्देह करने का कोई कारण नहीं दिखाई देता। उनके व्यक्तित्व के बारे में इससे भिन्न एक पराजित नारी की कल्पना विशेष आधार पर टिकी नहीं जान पड़ती।

फिर क्या कारण है कि उनकी रचनाओं में पीड़ा का इतना बाहुल्य है, वे छायावाद की परिधि लाँघ कर नये साहित्यिक और सामाजिक आन्दोलनों से घनिष्ठ संबन्ध कायम नहीं कर सकीं ?

इसका कारण यह है कि संसार के प्रति उनका दृष्टिकोण विज्ञान-सम्मत नहीं है और उनके मनोबल और कर्म-सम्बंधी इच्छाशक्ति की अपनी सीमाएँ हैं। इस पर कुछ और कहने के पहले यह यहाँ प्रश्न करना अनुचित न होगा कि अधिकांश आलोचकों ने महादेवी जी के साहित्य में पीड़ावाद

ही क्यों देखा है और उसे बढ़ा चढ़ाकर अध्यात्मवाद का रूप क्यों दिया है ? आज के भारतीय-समाज में नारी परतंत्र है, यह कहने की बात नहीं है। उसकी परतंत्रता का कारण सामन्ती सम्बंधों के अवशेष और समाज-संचालकों के सामन्ती संस्कार हैं। नारी की पराधीनता को यदि पीड़ावाद का रूप दे दिया जाय तो इससे सामन्ती बन्धनों और सामन्ती संस्कारों की रक्षा होती है। नारी की दासता और परवशता के सहारे जिस 'अध्यात्मवाद' की रचना हुई है, वह ढह पड़े अगर नारी इन सामन्ती बन्धनों को तोड़ने के लिये कटिबद्ध हो जाय। आज हिन्दुस्तान में सामन्ती अवशेष साम्राज्यवादी हितों के साथ घनिष्ठ रूपसे जुड़े हुए हैं; इसीलिये नारी की स्वाधीनता का प्रश्न भारतीय जनसाधारण की स्वाधीनता की समस्या का ही एक अंग है। इसीलिये जो लोग सेक्स में क्रान्ति की बातें करते हैं, वे इस समस्या को सुलझाने के बदले और उलझाते हैं और सामन्ती हितों को पुष्ट करते हैं। भारतीय नारी सदियों की सामन्ती दासता से तभी मुक्त हो सकेगी जब वह शेष जनता के साथ साम्राज्य-विरोधी, सामन्त-विरोधी स्वाधीनता आन्दोलन में आगे बढ़ कर हिस्सा लेगी। इससे इतर मार्ग से उसकी मुक्ति संभव नहीं है।

सामन्ती संबन्धों की परिधि में पुरुष का एक अपना निहित स्वार्थ होता है। मज़दूर वर्ग से बाहर अन्य वर्गों का पुरुष—जिनमें नारी स्वतंत्र श्रमिक नहीं है—सामन्ती-साम्राज्यवादी बन्धनों से पीड़ित होते हुए भी स्वयं नारी का स्वामी बन कर उसके श्रम का फल आत्मसात कर लेता है। इसीलिये ऐसे लेखक, जो सामन्त-विरोधी सामाजिक और सांस्कृतिक आन्दोलनों से दूर हैं, स्वभावतः पीड़ावाद के समर्थक बन जाते हैं। यही कारण है कि इस पीड़ा-वाद के खिलाफ़ जहाँ किसी नारी की रचनाओं में प्रेम, सौंदर्य, जीवन और विद्रोह के तत्व 'उभर' आते हैं, वे एक बार उन्हें देखकर भी नहीं देखते।'

यह आकस्मिक बात नहीं है कि जहाँ प्राय: सभी पुरुष आलोचकों ने महादेवी जी के काव्य में पीड़ावादी-पलायनवादी तत्वों को ही देखा है—उनका नामकरण भले ही भिन्न-भिन्न हो—वहाँ एक स्त्री-आलोचिका ने उसके द्वन्द्व को—परस्पर-विरोधी भावधाराओं के संघटन को—बड़ी खूबी से निर्दिष्ट किया है। अंग्रेज़-कवयित्री क्रिस्टिना रोज़ेटी और महादेवी जी की तुलना करते हुए श्री शचीरानी गुर्टू अपनी पुस्तक 'साहित्य-दर्शन' में लिखती हैं—

'एक ओर वैराग्य-मिश्रित हल्की प्रतिध्वनि उठती है, दूसरी ओर क्र

नियति के प्रति विवशता का क्रन्दन। कहीं प्रेम-शृङ्खलाओं में जकड़े मनुष्य की सी बाध्यता है, कहीं दारुण दुःख और क्लेशों से विरत होकर अंतश्चेतना की विश्वासमय निर्बंध गति। उनके हृदय में व्यथा की घटाटोप सघनता है, जिसे वे अपनी आन्तरिक स्फूर्ति और उद्दीप्त आत्मचेतना से विच्छिन्न करके अचिन्त्य आलोक से भरना चाहती हैं। कभी दीन हीन और खोई सी वेदना में डूब जाती हैं—कभी गर्वीले स्वाभिमान से सजग होकर वे लौकिक प्रेम की अवज्ञा करती हुई अलौकिक भावजगत में पैठने का प्रयास करती हैं।' (पृ० २३४)

इस द्वन्द्व से निकलने का एक ही मार्ग है—भारत में सामन्ती अवशेषों और साम्राज्यवादी हितों को समाप्त करना। इस मार्ग की तरफ बढ़ने में उनका वह दृष्टिकोण बाधक होता है जिसपर बौद्ध दर्शन, गान्धीवाद और अन्य ऐसी विचार-धाराओं का प्रभाव है जो सामन्तवाद से समझौता करना सिखाती हैं।

महादेवी जी में जनसाधारण के प्रति बौद्धिक सहानुभूति ही नहीं है, उन्हें पीड़ित जनता से हार्दिक सहानुभूति है। पन्त जी 'ग्राम्या' में बौद्धिक सहानुभूति की रेखा तक आकर वापस लौट गये। महादेवी जी अपने गद्य में इस ओर उनसे कहीं अधिक आगे बढ़ी हैं। छायावादी कवियों में केवल 'चतुरी चमार' और 'बिल्लेसुर बकरिहा' का रचयिता निराला उनसे इस बात में आगे है। महादेवी जी की यह सहानुभूति बड़ी मूल्यवान है। उसके बल पर वे समाज में पीड़ित जनों के अनेक मर्मस्पर्शी चित्र दे सकी हैं। फिर भी इस सहानुभूति की सीमाओं को न पहचानना और नारी-समस्या के प्रति उनके दृष्टिकोण की लेनिन के दृष्टिकोण से तुलना करना अपने को और दूसरों को धोखा देना है। (देखिये, श्री अमृतराय का लेख—'गद्यकार महादेवी और नारी-समस्या,' नया-साहित्य, भाग ४)। लेनिन ने नारी समस्या को हल करने में सोवियत सफलता का रहस्य एक वाक्य में यों बतलाया था—"रूस में हमें स्त्री और पुरुष की समता स्थापित करने में सफलता केवल इसलिये मिली कि ७ नवम्बर १९१७ को हमारे यहाँ मजदूरों का राज्य स्थापित हुआ।"(उप०)महादेवीजी—और उनके साथ अमृतराय जी भी अपने लेख में—इस निष्कर्ष पर नहीं पहुँचे कि भारत में नवीन जनवादी प्रजातन्त्र कायम हुए बिना नारी समस्या हल नहीं हो सकती।

महादेवी जी छायावाद की प्रतिनिधि कवि हैं। उनमें छायावाद का निराशावादी पलायनवादी पक्ष है तो जीवन और सौंदर्य की आकांक्षा का

स्वस्थ मानववादी पक्ष भी है। उनके अन्दर एक विद्रोही आत्मा सोती है जो दृष्टिकोण और मनोबल की सीमाओं के कारण अपना पूरा चमत्कार नहीं दिखा सकी। उन्हें जनता से हार्दिक सहानुभूति है और वे उससे संपर्क स्थापित करती रही हैं—यह उनका सबसे बड़ा संबल है। जिस दिन यह सहानुभूति सक्रिय रूप लेगी, उनके द्वन्द्व का भी उस दिन अन्त हो जायगा। महादेवी जी अपने साहित्यिक रचनाकाल में मध्याह्न वेला तक पहुँच गयी हैं। यदि वे पंत जी की तरह पीछे कदम हटा कर अन्तश्चेतनावाद की तरफ लौट चलती हैं, तो उनके कृतित्व का अन्त इस तरह होगा जिससे भविष्य में नारी-जाति क्षोभ के साथ उनका स्मरण करेगी। यदि वे अपनी सहानुभूति को तर्कसंगत परिणाम तक ले जाती हैं और सक्रिय रूप से नारी स्वाधीनता और जन-साधारण की स्वाधीनता के आन्दोलन के साथ आगे बढ़ती हैं, तो उनकी वाणी सतेज होकर वैसे ही मुखर हो उठेगी जैसे 'वंगदर्शन' की भूमिका में या 'सांध्य-गीत' की उन अनुपम पंक्तियों में ('जाग तुझको दूर जाना' आदि)। महादेवी जी का भावी उज्ज्वल कृतित्व उन्हीं के हाथ है। उनकी काव्य-साधना से भारत-भाग्य काँटों की सेजपर सोतेहुए गुलाब की तरह जागे, आलोचक यही मंगलकामना कर सकता है।

'कंटकों की सेज जिसकी आँसुओं का ताज,
सुभग! हँस उठ, उस प्रफुल्ल गुलाब ही सा आज,
बीती रजनि प्यारे जाग!'

लेखक-परिचय

जैनेन्द्रकुमार : प्रमुख कहानीकार, उपन्यासकार, सुचिन्तक और गंभीर प्रवचनकर्ता।

देवेन्द्र सत्यार्थी : कवि, कहानीकार, पर्यटक, संस्मरण-लेखक और लोक-गीतों के व्याख्याकार, 'आजकल' के सम्पादक।

शिवचन्द्र नागर : कहानी, संस्मरण, रेखा-चित्रकार।

भानुकुमार जैन : यात्रा-संस्मरण लेखक।

सावित्री वर्मा : बाल-साहित्य और पारिवारिक जीवन-साहित्य की लेखिका, 'बाल-भारती' की उपसम्पादिका।

लक्ष्मीनारायण सुधांशु : 'जीवन के तत्व और काव्य के सिद्धान्त' के लेखक, समालोचक, बिहार प्रान्तीय कांग्रेस के अध्यक्ष, राजनीति और साहित्य-के प्रतिनिधि नेता।

विनयमोहन शर्मा : कवि, प्रमुख आलोचक, नागपुर विश्वविद्यालय में हिन्दी-विभाग के अध्यक्ष।

देवराज उपाध्याय : आलोचक, यशवन्त कॉलेज, जोधपुर में हिन्दी-विभाग के अध्यापक।

प्रकाशचन्द्र गुप्त : प्रगतिशील लेखक, निबन्धकार, आलोचक, प्रयाग-विश्वविद्यालय में अंग्रेजी के अध्यापक।

विश्वम्भर 'मानव' : कवि, आलोचक, ऑल इंडिया रेडियो के सम्मानित कलाकार।

डॉ० इन्द्रनाथ मदान : पंजाब विश्वविद्यालय के प्रकाशन-विभाग के अध्यक्ष, आलोचक।

अमृतराय : प्रगतिशील लेखक, निबन्धकार, समालोचक, कहानीकार, 'हंस' के प्रधान सम्पादक।

रामचरण महेन्द्र : आलोचक, एकांकी नाटक-साहित्य के समीक्षक, हरबर्ट कॉलेज कोटा में अंग्रेजी के अध्यापक।

पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' : कवि, आलोचक, संस्मरण, रेखा-चित्रकार, आगरा कॉलेज, आगरा में हिन्दी के अध्यापक।

प्रभाकर माचवे : कवि, कहानीकार, आलोचक, एकांकी-नाटककार, ऑल इंडिया रेडियो के पदाधिकारी।

मन्मथनाथ गुप्त : कहानीकार, उपन्यासकार, आलोचक, सामयिक समस्याओं के लेखक, 'बालभारती' के सम्पादक।

गोपालकृष्ण कौल : कवि, आलोचक, 'नवयुग' के संयुक्त सम्पादक।

विजयेन्द्र स्नातक : आलोचक, दिल्ली विश्वविद्यालय में हिन्दी के अध्यापक

नन्ददुलारे वाजपेयी : प्रमुख समालोचक, सागर विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष।

डॉ० नगेन्द्र : कवि, प्रमुख आलोचक, ऑल इंडिया रेडियो में हिन्दी-समाचार विभाग के अध्यक्ष।

डॉ० रामविलास शर्मा : मार्क्सवादी विचारों के प्रमुख आलोचक, बलवन्त राजपूत कॉलेज में अंग्रेजी विभाग के अध्यक्ष।

शान्तिप्रिय द्विवेदी : आलोचक, काशी-निवासी।

ओमप्रकाश : नई पीढ़ी के स्वस्थ आलोचक।

रघुवीरप्रसाद सिंह : नई पीढ़ी के स्वस्थ आलोचक।

शचीरानी गुर्टू : प्रस्तुत ग्रन्थ की सम्पादिका।